ओ३म्

अभिनव संस्कार विधिः।

वेदानुकूलैर्गर्भाधानाद्यन्त्येष्टि पर्यन्तैः षोडश संस्कारै समन्वितः।

PART-01 (Page 1 to 209)

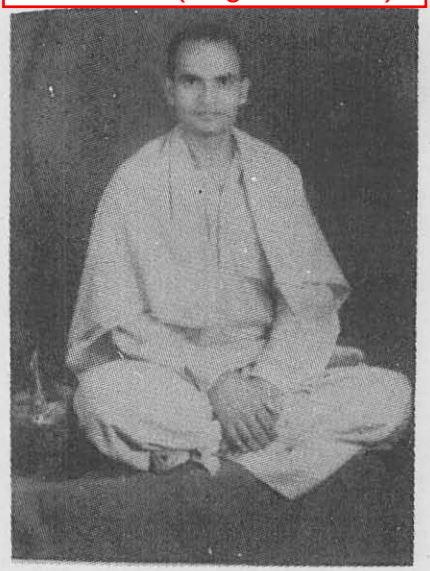

लेखक

श्री मत्परमहंस परिव्राजकाचार्य

श्री स्वामी आत्मानन्द तीर्थ।

(ग्रन्थस्य सर्वाधिकारः लेखकाधीनः।)

प्रकाशकः-

धर्म संस्थान, आर्ष योगाश्रम,

खरखौदा, मेरठ, उ०प्र०

सम्वत् २०५३ वि०

मूल्य ७५ रु०

क्रम संख्या	अभिनव संस्कार विधेर्विषय सूची पत्रम्	पृष्ठ संख्या
१.	विषय सूची पत्रम्।	१
२.	भूमिका।	३
३.	ईश्वर स्तुति प्रार्थनोपासना प्रकरणम्।	५
४.	स्वस्ति वाचनम्।	९
५:	शान्ति करणम्।	२२
६.	वेद मन्त्रों के ऋषि, देवता तथा स्वर	३४
७.	सामान्य प्रकरणम्।	३६
८.	यज्ञ पात्र विवरण।	४०
९.	यज्ञ प्रकरणम्।	४८
१०.	यज्ञ विधिः (विशेष)।	६२
११.	वामदेव्य गान।	६४
१२.	गर्भाधान प्रकरणम्।	६६
१३.	पुंसवन प्रकरणम्।	९४
१४.	सीमन्तोन्नयन प्रकरणम्।	१००
१५.	जातकर्म प्रकरणम्।	१०८
१६.	नामकरण्प्रकरणम्।	१२४
१७.	निष्क्रमण प्रकरणम्।	१३२
१८.	अन्न प्राशन प्रकरणम्।	१३६
१९.	चूड़ाकर्म प्रकरणम्।	१४१
२०.	कर्ण वेध प्रकरणम्।	१५०
२१.	उपनयन प्रकरणम्।	१५३
२२.	वेदारम्भ प्रकरणम्।	१६८
२३.	समावर्त्तन प्रकरणम्।	१९८
२४.	विवाह प्रकरणम्।	२१०

२५.	गृहाश्रम प्रकरणम् ।	२८९
२६.	सन्ध्या प्रकरणम् ।	३१४
२७.	पञ्च महायज्ञ प्रकरणम् ।	३३२
२८.	पक्षेष्टि प्रकरणम् ।	३४२
२९.	नव सम्वत्सरेष्टि प्रकरणम् ।	३४३
३०.	नवशष्येष्टि प्रकरणम् ।	३४३
३१.	शाला निर्माण विधि प्रकरणम् ।	३४६
३२.	ब्राह्मणादि वर्ण व्यवस्था प्रकरणम् ।	३६२
३३.	गृहाश्रमे विभिन्न कर्त्तव्य प्रकरणम् ।	३६६
३४.	वानप्रस्थ प्रकरणम् ।	३८०
३५.	संन्यास प्रकरणम् ।	३८९
३६.	अन्त्येष्टि प्रकरणम् ।	४४०

भूमिका

जीवन के निर्माण में संस्कारों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सभी प्राणियों में अपने-अपने प्रकार से संस्कारवान् करने का प्रयत्न देखा जाता है। संस्कारों के द्वारा ही स्वभाव का निर्माण होता है तथा स्वभाव के अनुरूप ही गुण तथा कर्म होते हैं। संस्कारों से परिमार्जित स्वभाव सुख तथा शान्ति प्राप्ति का एकमात्र कारण है। वेदोक्त व्यवस्था द्वारा व्यवस्थित एवम् निर्देशित संस्कार मनुष्य जीवन का निर्माण कर उसे अभ्युदय तथा निश्रेयस की प्राप्ति कराते हैं।

महाभारत काल से पूर्व तथा उपरान्त गृह्यसूत्रों द्वारा संस्कार सम्पन्न किये जाते थे। विभिन्न आचार्यों द्वारा पृथक्-पृथक् गृह्य सूत्रों की रचना के फलस्वरूप संस्कारों के करने में भिन्नता आ गई। यद्यपि आधुनिक काल में संस्कृत हिन्दी मिश्रित ग्रन्थों की रचना हुई। परन्तु उन सभी ग्रन्थों में प्रायः संस्कृत के मन्त्रों एवम् संस्कृत भाग की हिन्दी का अभाव या। अनेकों स्थलों पर कर्मकाण्ड परक व्यवस्था भी क्लिष्ट थी। अतः सामान्य मनुष्य से लेकर विद्वत् जन पर्यन्त सभी संस्कार परक ग्रन्थों का अपने-अपने प्रकार से प्रतिपादन कर संस्कार सम्पन्न कराते हैं। इस विभिन्नता के कारण नैत्यिक कर्मकाण्ड से लेकर संस्कारों तक, सभी की एकरूपता पूर्णतः नष्ट हो गई है।

"अभिनव संस्कार विधिः" ग्रन्थ के प्रणायन से पूर्व पर्याप्त अध्ययन कर अनेकरूपता के कारणों को भली भांति निर्णय कर "अभिनव संस्कार विधिः" ग्रन्थ लिखा। निरन्तर शारीरिक अस्वस्थता तथा नाना प्रकार के निरन्तर आने वाले व्यवधानों के होते हुए भी परमपिता परमात्मा की कृपा से यह ग्रन्थ लिखा जा सका।

"अभिनव संस्कार विधिः" नैत्यिक कर्मकाण्ड से लेकर समस्त संस्कारों के मन्त्रों तथा संस्कृत की हिन्दी से युक्त है। इसलिये सर्व साधारण भी इसे भली भांति समझ सकता है।

भूमिका

"अभिनव संस्कार विधिः" लिखे जाने का उद्देश्य, कर्मकाण्ड विषयक एकता तथा पुरोहितों को कर्मकाण्ड विषयक ज्ञान से सम्पन्न कराकर संस्कार मय समाज का निर्माण करना है। संस्कार सम्पन्न व्यक्ति ही सुख शान्ति तथा आनन्द प्राप्त कर अन्त में मोक्ष प्राप्त करता है। संस्कार सम्पन्न समाज ही विश्व में सुख, शान्ति, व्यवस्था तथा सर्वप्रकार की उन्नति का मूल है।

परमपिता परमात्मा की असीम कृपा के लिये, जिनकी महान कृपा से मैं "अभिनव संस्कार विधिः" लिख सका, अत्यन्त आभारी हूँ।

—स्वामी आत्मानन्द तीर्थ

ओ३म्

ईश्वस्तुति प्रार्थनोपासना प्रकरणाम्

१. मन्त्र के आरम्भ में जहाँ-जहाँ ओम् लिखा गया है, वहाँ-वहाँ ही ओम् का उच्चारण करना चाहिये।

२. सब संस्कारों के आरम्भ में ईश्वर स्तुति प्रार्थनोपासना के मन्त्रों का अर्थ सहित पाठ एक विद्वान् अथवा बुद्धिमान स्थिर चित्त होकर परमात्मा में ध्यान लगाकर करे और अन्य सब उसमें ध्यान लगाकर सुनें और विचारें।

अथेश्वर स्तुति प्रार्थनोपासनाः।

नारायण ऋषिः। सविता देवताः। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः।
ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव।
यद्भद्रन्तन्न आसुव ॥१॥ *(यजु० अ० ३० । मं० ३)*

अर्थ—है (सविता) सकल जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता, समग्र ऐश्वर्ययुक्त (देव) शुद्ध स्वरूप, सब सुखों के दाता परमेश्वर। आप कृपा करके (नः) हमारे (विश्वानि) सम्पूर्ण (दुरितानि) दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को (परासुव) दूर कर दीजिये (यत्) जो (भद्रम्) कल्याण कारक गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ हैं।(तत्) वह सब हमको (आ सुव) प्राप्त ~~करइये~~ ॥१॥

हिरण्यगर्भः ऋषिः। प्रजापतिर्देवताः। निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः।
धैवतः स्वरः।
हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
सदाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मैदेवाय हविषा विधेम ॥२॥

(य०अ० १३१ मं०४)

अर्थ—जो (हिरण्यगर्भः) स्वप्रकाश स्वरूप और जिसने प्रकाश करने हारे सूर्य चन्द्रादि पदार्थ उत्पन्न करके धारण किये हैं, जो (भूतस्य) उत्पन्न हुए सम्पूर्ण जगत् का (जातः) प्रसिद्ध (पतिः) स्वामी (एकः) एक ही चेतन स्वरूप (आसीत्) था, जो (अग्रे) सब जगत् के उत्पन्न होने से पूर्व (समवर्तत) वर्तमान था (सः) वह (इमाम्) भूमि और (द्याम्) सूर्यादि को (दाधार) धारण कर रहा है, हम लोग

उस (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) शुद्ध परमात्मा के लिए (हविषा) ग्रहण करने योग्य योगाभ्यास और अति प्रेम से (विधेम) विशेष भक्ति किया करें ॥२ ॥

प्रजापतिऋषिः । परमात्मा देवताः । निचत् त्रिष्टुप छन्दः ।
धैवतः स्वरः ।
य आत्मदा बलदायस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्यस्व देवाः ।
यस्यच्छाया अमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषां विधेम ।

३ ॥(य०अ० २११मं०१३) ॥

अर्थ—(यः) जो (आत्मदा) आत्मज्ञान का दाता (बलदा) शरीर आत्मा और समाज का बल का देने हारा (यस्य) जिसकी (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान लोग (उपासते) उपासना करते हैं, और (यस्व) जिसका (प्रशिवम्) प्रत्यक्ष सत्य स्वरूप शासन, न्याय अर्थात् शिक्षा को मानते हैं (यस्य) जिसका (छाया) आश्रय ही (अमृतम्) मोक्ष सुखदाय है (यस्य) जिसका न मानना अर्थात् भक्ति न करना ही (मृत्युः) मृत्यु आदि दुःख का हेतु है, हम लोग उसे (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) सकल ज्ञान के देने हारे परमात्मा की प्राप्ति के लिये (हविषा) आत्मा और अन्तःकरण से (विधेम) भक्ति अर्थात् उसी की आज्ञा पालन में तत्पर रहें ॥३ ॥

प्रजापतिः ऋषिः । परमेश्वरो देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवत्: स्वरः ।
यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव ।
यईशेऽअस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषाविधेम ॥

४ ॥(य० अ० २३१ मं० ३) ॥

अर्थ—(यः) जो (प्राणातः) प्राणवाले और (निमिषतः) अप्रणिरूप (जगतः) जगत् का (महित्वा) अपने अनन्त महिमा से (एक इत्) एक ही (राजा) राजा (बभूव) विराजमान है (यः) जो (अस्या) इस (द्विपदः) मनुष्यादि और (चतुष्पदः) गौ आदि प्राणियों के शरीर की (ईशे) रचना करता है, हम लोग उस (कस्मै) सुखस्वरूप (देवायः) सकलैश्वर्य के देने हारे परमात्मा की उपासना अर्थात् (हविषा) अपनी सकल उत्तम सामग्री को उसकी आज्ञा पालन करने में समर्पित करके (विधेम्) विशेष भक्ति करें ॥४ ॥

स्वयम्भु ब्रह्मा ऋषिः ।परमात्मा देवताः । निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः
येन द्यौरूग्रा पृथिवीचदृढा येनस्वः स्तभितं येननाकः ।
योऽअन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मैदेवाय हविषाविधेम ।

५ ॥य०अ० ३२१ मं० ६७ ॥

अर्थ—(येन) जिस परमात्मा ने (उग्राः) तीक्ष्ण स्वभाव वाले (द्यौः) सूर्य आदि (च) और (पृथिवी) भूमि को (दृढ़ा) धारण (येन) जिस जगदीश्वर ने (स्वः) सुख को (स्तमितम्) धारण और (येन) जिस ईश्वर ने (नाकः) दुःख रहित मोक्ष को धारण किया है (यः) जो (अन्तरिक्षे) आकाश में (राजसः) सबलोक लोकान्तरों को (विमानः) विशेष मान युक्त अर्थात् जैसे आकाश में पक्षी उड़ते हैं, वैसे सब लोकों का निर्माण करता और भ्रमण कराता है, हम लोग उस (कस्मै) सुखदायक (देवाय) कामना करने के योग्य पर ब्रह्म की प्राप्ति के लिये (हविषा) सब सामर्थ्य से (विधेम्) विशेष भक्ति करें ॥५ ॥

प्रजापते ऋषिः । कः देवताः । विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।
प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातनि परिता बभूव ।
यत्कामास्तेजुहुमस्तन्नोऽअस्तु वयं स्याम् पतयोरयीणाम् ॥ ६ ॥

(ऋग्वेद मं० १०१ सं० १२११ मं० १०)

अर्थ—हे (प्रजापते) सब प्रजा के स्वामी परमात्मा ! (त्वात्) आप से भिन्न (अन्यः) अन्य दूसरा कोई (ता) उन (एतानि) इन (विश्वा) सब (जातानि) उत्पन्न हुए जड़ चेतनादिकों को (न) नहीं (परिबभूव) तिरस्कार करता है, अर्थात् आप सर्वोपरि हैं (यत्कामाः) जिस जिस पदार्थ की कामना वाले हम लोग (ते) आपका (जुहुमः) आश्रय लेवें और वाञ्छा करें (तत्) वह कामना (नः) हमारी सिद्ध (अस्तु) होवे जिससे (वयम्) हम लोग (रयीणाम्) धनैश्वर्यों के (पतयः) स्वामी (स्याम) होवें ॥६ ॥

स्वयंभु ब्रह्म ऋषिः । परमात्मा देवताः । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ।
स नो बन्धुर्जनिता सविधाता धामानिवेद भुवनानि विश्वा ॥
यत्रदेवा अमृतं मानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥ ७ ॥

(य०अ० ३२१ मं० २०)

अर्थ—हे मनुष्यो (सः) वह परमात्मा (नः) अपने लोगों को (बन्धुः) भ्राता के समान सुखदायक (गनिता) सकल जगत् का उत्पादक (सः) वह (विधाता) सब कामों का पूर्ण करने हारा, (विश्वा) सम्पूर्ण (भुवनानि) लोकमात्र और (धामानि) नाम, स्थान और जन्मों को (वेद) जानता है और (यत्र) जिस (तृतीये) सांसारिक सुख दुःख से रहित नित्यानन्द युक्त (धामन्) मोक्ष स्वरूप धारण करने हारे परमात्मा में (अमृतम्) मोक्ष को (आनशानाः) प्राप्त होके (देवाः) विद्वान् लोग (अध्यैरयन्त) स्वेच्छापूर्वक विचरते हैं, वही परमात्मा अपना गुरू, आचार्य राजा और न्यायाधीश है, अपने लोग मिलके सदा उसकी भक्ति किया करें ॥७॥

दीर्घतमा ऋषिः। आत्मा देवताः। निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः।
अग्ने नय सुपथा रायेऽअस्मान् विश्वानिदेव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्य स्मज्जुहुराण मेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम ॥८॥

(य०अ० ४०१ मं० १६)

अर्थ—हे (अग्ने) स्वप्रकाश ज्ञानस्वरूप सब जगत् के प्रकाश करने हारे (देव) सकल सुखदाता परमेश्वर। आप जिससे (विद्वान्) सम्पूर्ण विद्यायुक्त हैं, कृपा करके (अस्मान्) हम लोगों को (राये) विज्ञान वा राज्यादि ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये (सुपथा) अच्छे धर्मयुक्त आप्त लोगों के मार्ग से (विश्वानि) सम्पूर्ण (वयुनानि) प्रज्ञान और उत्तमकर्म (नय) प्राप्त कराइए और (अस्मत्) हम से (जुहुराणाम्) कुटिलता युक्त (एनः) पापरूप कर्म को (धुयोधि) दूर कीजिये, इस कारण हम लोग (ते) आपकी (भूयिष्ठाम्) बहुत प्रकार की स्तुति रूप (नमउक्तिम्) नम्रतापूर्वक प्रशंसा (विधेम) सदा किया करें और सर्वदा आनन्द में रहें ॥८॥

इतीश्वर स्तुति प्रार्थनोपासना प्रकरणम् ॥

मङ्गल कार्यों के आरम्भ में सर्वत्र, अर्थ सहित ईश्वर स्तुति प्रार्थनोपासना, स्वस्ति वाचन तथा शान्ति करण के मन्त्रों का पाठ अवश्य करना चाहिये।

मन्त्र में आये अनुस्वार का उच्चारण "ग्वँ" अथवा "म्" नहीं है। अनुस्वार दीर्घ "ँ" तथा ह्रस्व "ॐ" दो प्रकार का होता है।

स्वस्ति वाचनम्।

अथ स्वस्ति वाचनम्।

मधुच्छन्दा ऋषिः। अग्निर्देवताः। गायत्रीछन्दः। षड्जः स्वरः।

अग्निमीळे पुरोहितम् यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम्॥१॥ *(ऋ० मं० १ ।सू० १। मं० १)॥*

अर्थ—(यज्ञस्य) हम लोग विद्वानों के सत्कार सङ्गम महिमा और कर्म के (होतारम्) देने तथा ग्रहण करने वाले (पुरोहितम्) उत्पत्ति के समय से पहिले परमाणु आदि सृष्टि के धारण करने और (ऋत्विजं) वारम्वार उत्पत्ति के समय में स्थूल सृष्टि के रचने वाले तथा प्रत्येक ऋतु में उपासना करने योग्य (रत्नधातमम्) और निश्चत करके मनोहर पृथिवी वा सुवर्ण आदि रत्नों के धारण करने वा (देवम्) देने तथा सब पदार्थों के प्रकाश करने वाले (अग्निम्) परमेश्वर की (ईळे) स्तुति करते हैं॥१॥

मधुच्छन्दा ऋषिः। अग्निर्देवताः। विराड् गायत्रीछन्दः। षड्जः स्वरः।

सनः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव। सचस्वा नः स्वस्तये॥२॥
(ऋ०मं० १ ।सू० । मं० ९)॥

अर्थ—हे (सः) वह (अग्ने) ज्ञान स्वरूप परमेश्वर! (पितेव) जैसे पिता (सूनवे) अपने पुत्र के लिये उत्तम ज्ञान का देने वाला होता है वैसे ही आप (नः) हम लोगों के लिये (सूपायनः भव) शोभन ज्ञान जोकि सब सुखों का साधक और उत्तम-उत्तम पदार्थों का प्राप्त कराने वाला है उसके देने वाले होकर (नः) हम लोगों को (स्वस्तये) सब सुख के लिये (सचस्व) संयुक्त कीजिये॥२॥

आत्रेय ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः

स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः स्वस्तिदेव्यदितिरनर्वणः।
स्वस्ति पूषा असुरो दधातुनः स्वस्ति द्यावा पृथिवी सुचेतुना॥३॥
(ऋ० मं० ५ ।सू० ५१। मं० ११)॥

अर्थ—हे मनुष्यो जैसे (अश्विना) अध्यापक व उपदेशक जन (अनर्वणः) अश्वरहित का (शअवस्ति) सुख (मिमीताम्) रचें और (भगः) ऐश्वर्य को करने

वाला वायु (नः) हम लोगों के लिये (स्वस्ति) सुख (देवी) प्रकाशित (अदितिः) अखण्ड विद्या (नः) हम लोगों के लिए (स्वस्ति) सुख (सुचेतुना) उत्तम विज्ञान से (द्यावा पृथिवी) प्रकाश और भूमि हम लोगों के लिये (स्वस्ति) सुख और (पूषा) पुष्टि करने वाला दुग्धादि पदार्थ और (असुरः) मेघ हम लोगों के लिए सुख को (दधातु) धारण करे वैसे आप लोगों के लिए भी वे सुख को धारण करें ॥३ ॥

आत्रेय ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ।
स्वस्तये वायु मुप ब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः ।
बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्या सोभवन्तु नः ॥

॥४ ॥(ऋ०मं० ५ ।सू ५१ । मं० १२) ॥

अर्थ—हे मनुष्यो जैसे हम लोग (स्वस्तये) सुख के लिए (वायुम्) वायु विद्या और (सोमम्) ऐश्वर्य का (उप, ब्रवामहै है) उपदेश देवैं वैसे सुनकर आप लोग अन्यों के प्रति उपदेश दीजिये और (यः) जो (भुवनस्य) लोक का (पतिः) स्वामी है वह (स्वस्तये) उपद्रव दूर होने के लिये (सर्वगणम्) सम्पूर्ण समूह जिसमें उस (बृहस्पतिम्) बड़ी वेद वाणियों के स्वामी को और (नः) हम लोगोंके लिये (स्वस्ति) सुख को धारण करे और जैसे (आदित्यासः) अड़तालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य पूर्वक किया विद्याभ्यास जिनने तथा जो मास के सदृश सम्पूर्ण विद्याओं में व्याप्त वे हम लोगों के अर्थ (स्वस्तये) अत्यन्त सुख के लिए (भवन्तु) होवें वैसे आप लोगों के लिये भी हों ॥४ ॥

आत्रेय ऋषिः । विश्वे देवादेवताः । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।
विश्वेदेवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये ।
देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्तिनो रुद्रः पात्वंहसः ॥५ ॥

(ऋ०मं० ५ ।सू० ५१ ।मं० १३) ॥

अर्थ—हे मनुष्यो जैसे (अद्या) आज (विश्वेदेवाः) समस्त विद्वत्जन (स्वस्तये) सुख के लिये (नः) हम लोगों की (अवन्तु) रक्षा करें और (स्वस्तये) सुख के लिये (वैश्वानरेः) समस्त मनुष्यों में प्रकाशमान (वसुः) सर्वत्र वसने वाला (अग्निः)

अग्नि रक्षा करें और (ऋभवः) बुद्धिमान् (देवाः) विद्वत्जन (स्वस्तये) विद्या सुख के लिये रक्षा करें और (रूद्रः) दुष्टों को दण्ड देने वाला (स्वस्ति) सुख की भावना करके (नः) हम लोगों की (अंहसः) । अपराध से (धातु) रक्षा करे ॥५ ॥

आत्रेय ऋषिः । विश्वेदेवादेवताः । पङ्क्तिश्च्छन्दः । पंचमः स्वरः ।
स्वस्ति मित्रा वरूणा स्वस्ति पथ्ये रेवति ।
स्वस्ति न इन्द्रयश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि ॥६ ॥

(ऋ०मं० ५ ।सू०५१ । मं०१४) ॥

अर्थ—हे (अदिते) अखण्ड विद्या से सम्पन्न (रेवति) बहुत धन से युक्त आप (पथ्ये) मार्ग युक्त कर्म में जैसे (मित्रा वरूणा) प्राण और उदान (नः) हम लोगों के लिए (स्वस्ति) सुख (इन्द्र च) और वायु (स्वस्ति) सुख को (अग्निःच) और बिजली (स्वस्ति) सुख (नः) हम लोगों के लिए करती है वैसे (स्वस्ति) सुख (कृधि) करिये ॥६ ॥

आत्रेय ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धार स्वरः ।
स्वस्ति पन्था मनुचरेम सूर्या चन्द्रमसाविव ।
पुनर्ददताघ्नता जानता सं गमेमहि ॥ ७ ॥

(ऋ०मं० ५ ।सू०५१ ।मं० १५) ॥

अर्थ—हम लोग (सूर्या चन्द्रमसाविव) सूर्य और चन्द्रमा के सदृश (स्वस्ति) सुख (पन्थाम्) मार्गों के (अनु चरेम) अनुगामी हों और (पुनः) फिर (वदता) दान करने (अघ्नता) और नाश न करने वाले (जानता) विद्वान् के साथ (सम्गमेमहि) मिलैं ॥७ ॥

वशिष्ठ ऋषिः । विश्वे देवा देवताः । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ।
ये देवानां यज्ञिया यज्ञियानां मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
ते नो रासन्तामुरूगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ८ ॥

(ऋ०मं० ७ ।सू० ३५ । मं०१५) ॥

अर्थ—(ये) जो (देवानाम्) विद्वानों के बीच विद्वान् (यज्ञियानाम्) यज्ञ करने योग्य (मनोः) विचारशील के (यजत्राः) संग करने (अमृताः) अपने स्वरूप से नित्य

वा जीवन्मुक्त रहने (ऋतज्ञाः) और सत्य के जानने वाले हैं (ते) वे (अद्य) आज (नः) हम लोगों के लिए (उरूगायम्) बहुतों द्वारा गाये हुए विद्या बोध को (रासन्ताम्) देवैं हे विद्वानों (यूयम्) तुम (स्वस्तिभिः) विद्यादि दानों से (नः) हम लोगों की (सदा) सर्वदा (पात) रक्षा करो ॥८॥

गय प्लातः ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। पाद निचृज्जगती छन्दः। निषाद स्वरः।

येभ्यो माता मधुमत्पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः।
उक्थशुष्मान् वृषभरान्त्स्वप्नसस्तां आदित्यां अनुमदा स्वस्तये ॥

॥९॥

(ऋ०मं० १० ।सू० ६३। मं० ३)॥

अर्थ—हे स्त्री व पुरूषो। (येभ्यः) जिनके लिये (माता) माता (मधुमत्पयः) मधुर दूध और (अदितिः) अखण्ड व्रती (अद्रिबर्हा) ऊँचे आदर्शों वाला (द्यौः) पिता (पीयूष) ज्ञानामृत का (पिन्वते) सिञ्चन करते हैं, उन (उक्थ शुष्मन्) माने हुए बलशाली (वृषभरान्) धर्मात्मा, कर्मकाण्डी (स्वप्नसः) शुभ कर्म करने वाले (आदित्याम्) अखण्ड ब्रह्मचारी, विद्याभ्यासी, विद्वानों का (स्वस्ति) सुख प्राप्त्यर्थ (अनुमदा) अनुसरण करो ॥९॥

गयः प्लातः ऋषिः। विश्वे देवा देवताः। निचृज्जगती छन्दः। निषाद स्वरः।

नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा बृहद्देवासो अमृतत्वमानशुः।
ज्योतीरथाअहिमाया अनागसो दिवो वर्ष्माण वसते स्वस्तये

॥१०॥

(ऋ०मं० १० ।सू० ६३। मं० ४)॥

अर्थ—(नृचक्षसः) मनुष्य मात्र के योगक्षेम के द्रष्टा (अनिमिषन्तः) सदैव सजग रहने वाले (अर्हणा) पूज्य (देवासः) विद्वान् जो (बृहत्) महान (अमृतत्वम्) अमृत स्वरूप परमात्मा को (आनशुः) प्राप्त हो चुके हैं (ज्योतीरथा) और आत्मज्ञान से युक्त हैं ऐसे (अहिमाया) निर्भ्रान्त (अनागसः) निष्पाप (दिवः) उच्च स्थानं पर (स्वस्तये) सुख के लिये (वर्ष्माणं) प्रतिष्ठित होते हैं ॥१०॥

गय प्लातः ऋषिः । विश्वे देवा देवताः । निचृज्जगती छन्दः ।
निषाद स्वरः ।

सम्राजो ये सुवृधो यज्ञमाययुर परिह्वृता दधिरे दिविक्षयम् ।
ताँ आ विवास नमसा सुवृक्तिभिर्महो आदित्यां अदितिं स्वस्तये ॥
॥११ ॥

(ऋ०मं० १० ।सूक्त ६३ ।मं० ४) ॥

अर्थ—सब स्त्री पुरूषों को योग्य है कि (सम्राजः) सब ओर से प्रकाशित, तेजस्वी (ये) जो (सुवृधः) ज्ञानवृद्ध (देवाः) विद्वान् लोग (यज्ञम्) उत्तम कर्मों को (आययुः) प्राप्त होते हैं (अपरिह्वृता) ऐसे व्रतों का निरन्तर पालन करने वाले (दिविक्षयम् दीधरे) मोक्ष में अखण्ड सुख को प्राप्त करते हैं, (तां) उन (महः आदित्यान्) महान आदित्य ब्रह्मचारियों को (अदितिं) अखण्ड आनन्द के प्राप्त्यर्थ (नमसा) आदर सहित (सुवृक्तिभिः) उत्तम स्तवन द्वारा (स्वस्तये) सुख के लिये (आ विवासते) स्मरण करते हैं ॥११ ॥

गयः प्लातः ऋषिः ।विश्वे देवा देवताः । विराड्जगती छन्दः ।
निषाद स्वरः ।

को वः स्तोमं राधति यं जुजोषथ विश्वेदेवासो मनुषो यतिष्ठन ।
कोवोऽध्वरं तुविजाता अरं करद्योनः पर्षदत्यंहः स्वस्तये ॥१२ ॥

(ऋ०मं० १० ।सू० ६३ ।मं० ५) ॥

अर्थ—(विश्वेदेवासः) समस्त विद्वानो । (यं जुजोषय) जिस स्तुति समूह का तुम सेवन करते हो उस (स्तोमं) सामवेदोक्त स्तुति समूह को (वः) तुम्हारे मध्य में (कः) कौन (राधति) रचता है और हे (तुविजाताः) नाना प्रकार के जन्म वाले (मनुषः) मननशील लोगो (यतिष्ठन) जितने तुम हो उन (वः) तुम सब के बीच में (अध्वरम्) यज्ञ को कौन (अरंकरत्) अलंकृत करता है (यः) जो यज्ञ (नः) हमारे (अंह) पाप को (अति) हटाकर (स्वस्तये) कल्याणार्थ (पर्णत्) पालन करता है ।

गयः प्लातः ऋषिः । विश्वे देवा देवताः । पाद निचृज्जगती छन्दः ।
निषाद स्वरः ।

येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुः समिद्धाग्निर्मनसा सप्त होतृभिः ।
त आदित्या अभयं शर्म यच्छत सुगानः कर्त्त सुपथा स्वस्तये ॥१३ ॥

(ऋ०मं० १० ।सू० ६३ । मं० ६) ॥

अर्थ—(समिद्धाग्निः) विद्युत् सूर्यादि तेजस्वी पदार्थों के प्रकाशक (मनुः) मनस्वी परमात्मा ने (येभ्यः) जिनके लिये (मनसा सप्तहोतृभिः) मन बुद्धि नेत्र श्रोत्र, नासिका, जिह्वा तथा त्वचा रूप सात होताओं से (होत्रां) यज्ञ का (आयेजे) आयोजन किया है (त) वे (आदित्या) अखण्ड ब्रह्मचर्यव्रती विद्वान् (अभयं शर्म) निर्भय होकर सुख (यच्छत) देवैं और (नः) हमारे (स्वस्तये) हित के लिये (सुगा) सुप्राप्य (सुपथा) उत्तम मार्ग (कर्त्त) प्रशस्त करें ॥१३ ॥

गयः प्लातः ऋषिः । विश्वेदेवाः देवताः । विराड्जगती छन्दः ।
निषाद स्वरः ।
य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च मन्तवः ।
ते नः कृतादकृतादेन सस्पर्यद्या दैवासः पिपृता स्वस्तये ॥१४ ॥

(ऋ०मं १० ।सू० ६३ । मं० ७) ॥

अर्थ—(ये देवासः) जो विद्वान्लोग (प्रचेतसः) श्रेष्ठ ज्ञानी जन (भन्तवः) सबके जानने वाले (स्थातुः) स्थावर (च) और (जगतः) जङ्गम (विश्वस्य) सब (भुवनस्य) लोकों के (ईशिरे) स्वामी होते हैं (ते) वे (स्वस्तये) कल्याण के लिये (अद्य) आज (कृतात्) कृत और (अकृतात्) अकृत (एनसः) पापों से (परि पिपृत) निवृत करें ॥१४ ॥

गयः प्लातः ऋषिः । विश्वे देवा देवताः । आर्ची स्वराड् जगती छन्दः ।
निषाद स्वरः ।
भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहेंऽहोमुचं सुकृतं दैव्यं जनम् ।
अग्निं मित्रं वरूणं सातये भगं द्यावा पृथिवी मरूतः स्वस्तये
॥१५ ॥

(ऋ०मं० १० ।सू० ६३ ।मं० ९) ॥

अर्थ—(अंहोमुचम्) पापों से बचाने वाले (सुहवं) अच्छे प्रकार बुलाने योग्य (इन्द्रम्) ऐश्वर्यशाली परमात्मा का (भरेषु) अपने सुख प्राप्त्यर्थ (हवामहे) आह्वान

करते है (सुकृतम्) उत्तम कर्म करने वाले (दैव्यं जनम्) ज्ञानी जनों को (सातयेभगं) अन्नादि ऐश्वर्य प्राप्त्यर्थ, तथा (स्वस्तये) सुख प्राप्त्यर्थ (अग्निम्) अग्नि विद्या के लिये (मित्रम्) प्राण विद्या के लिये (वरूणम्) जल विद्या के लिये तथा (मरूतः) वायु विद्या के लिये (द्यावा पृथिवी) अन्तरिक्ष तथा पृथिवीलोक में ॥१५॥

गयः प्लातः ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। पाद निचृज्जगती छन्दः। निषाद स्वरः।

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम्।
दैवीं नावं स्वरित्रा मनागसमस्त्रवन्तीमा रूहेमा स्वस्तये॥१६॥

(ऋ० मं० १० ।सू० ६३। मं० १०)

अर्थ—हे शिल्पिजनों। जैसे हम (स्वस्तये) सुख के लिए (सुत्रामाणाम्) अच्छे रक्षण आदि से युक्त (पृथिवीम्) विस्तार और (द्याम्) शुभ प्रकाश वाली (अनेहसम्) अहिंसनीय (सुशर्माणाम्) जिसमें घर विद्यमान् उस (अदितिम्) अखण्डित (सुप्रणीतिम्) बहुत राजा और प्रजाजनों की पूर्ण नीति से युक्त वा (स्वरित्राम्) जिसमें बल्ली पर बल्ली लगी हैं उस (अनागसम्) अपराध रहित और (अस्त्रवन्तीम्) छिद्ररहित (दैवीम्) विद्वान् पुरूषों की (नावम्) प्रेरणा करने हारी नाव पर (आ, रूहेम) चढ़ते हैं वैसे तुम लोग भी चढ़ो॥१६॥

गयः प्लातः ऋषिः। विश्वे देवा देवताः। विराड्जगती छन्दः। निषाद स्वरः।

विश्वेयजत्रा अधिवोचतोतये त्रायध्वं नोदुरेवाया अभिह्रुतः।
सत्यया वो देवहूत्या हुवेम श्रृण्वतो देवा अवसे स्वस्तये॥१७॥

(ऋ० मं० १० । सू० ६३। मं० ११)

अर्थ—(विश्वेयाजत्रा) हे पूज्य विद्वानों। आप (ऊतये) हमारे हित के लिये (अधिवोचत) उपदेश किया करें और (दुरेवाया) दुर्भति से (नः) हमारी (त्रायध्वम्) रक्षा करें (देवाः) हे विद्वानों। (भृण्वतः) हमारे द्वारा स्तुति सुनने वाले (सत्ययां) सत्य से युक्त (वः) आपकी (देवहूत्या) देवताओं के योग्य स्तुति (अबसे) शत्रुओं से रक्षा एवम् (स्वस्तयें) सुख के लिये (हुवेम) बुलाया करें॥१७॥

गयः प्लातः ऋषिः । विश्वे देवा देवताः । विराड् जगती छन्दः । निषाद स्वरः ।

अपामी वामप विश्वामनाहुतिमपारातिं दुर्विदत्रा मघायतः ।
आरे देवा द्वेषो अस्मद्युयोतनोरूणः शर्म यच्छता स्वस्तये ॥१८ ॥

(ऋ०मं० १० ।सू०६३ ।मं०१२)

अर्थ—(देवाः) हेविद्वानों ! आप हमसे अभीवाम् रोगादि को (विश्वाम्) समस्त (अनाहुतिम्) यज्ञ न करने वालों को (अरातिम्) लोभियों को (अधायतः) पाप करने वालों को (दुर्विदयाम्) दुष्ट बुद्धि वालों को (अप) दूर करो (द्वेषः) द्वेष करने वालों को (अस्मत्ः) हमसे (आरे) दूर करो तथा (नः) हमारे लिये (उरूशर्म) सुखदायक तथा (स्वस्तये) कल्याणकारी हो ॥१८ ॥

गयः प्लानः ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । विराड् जगती छन्दः ।
निषाद स्वरः ।

अरिष्टः समर्तो विश्वएधते प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि ।
यमादित्यासो नयथा सुनीतिभिरति विश्वानि दुरिता स्वस्तये ॥१९ ॥

(ऋ०मं० १०. ।सू० ६३ । मं० १३)

अर्थ—(आदित्यासः) हे अखण्ड परमेश्वर । आप (यं) जिनको (सुनीतिभिः) उत्तम शिक्षाओं द्वारा (विश्वानि) समस्त (दुरिता) दुर्गुण दुर्व्यसन और दुःखों को दूर करके (नयथ) सन्मार्ग में प्रवृत्त करते हो (सः विश्व मर्त्तः) वे सब प्राणी (अरिष्टः) किसी से पीड़ित न होकर (एधते) बढ़ते हैं और (धर्मयाः) धर्मानुष्ठान के द्वारा (परि) अनन्तर (प्रजाभिः) पुत्र पौत्रादिकों से (प्रजायते) अच्छी तरह प्रकट होते हैं ॥१९ ॥

गयः प्लातः ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । पादनिचृद् जगती छन्दः ।
निषाद स्वरः ।

यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं शूरसातामरूतो हितेधने ।
प्रातर्यावाणं रथमिन्द्र सान सिमरिष्यन्तमा रूहेमा स्वस्तये ॥२० ॥

(ऋ०म०१० ।सू० ६३ । मं० १४) ॥

अर्थ—(मरूतः देवासः) हे वायु विज्ञान वेत्ताओ। आप सब (नः) हमारे लिये (वाजसातौ) ऐश्वर्य प्राप्त्यर्थ (यंरथम्) जिन वायुयान आदि की (अवथ) रक्षा करते हो (इन्द्र सानसिम्) विद्युत् विद्या के विद्वानों द्वारा सेवित (प्रातः यावाणम्) प्रातःकाल से ही गमन करने वाले (रिष्यन्तम्) निर्दोष रथ पर (स्वस्तये) सुख के लिये (आरुहेम) चढ़े ॥१४॥

गयः प्लातः ऋषिः पथ्यास्वस्तिः देवताः। जगती त्रिष्टुप् वाछन्दः। निषादो धैवतोवास्वरः।

स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु स्वस्त्यप्सु वृजने स्वर्वति।
स्वस्ति नः पुत्र कृथेषु योनिषु स्वस्ति राये मरूतो दधातन ॥२१॥

(ऋ०मं० १० ।सू० ६३। मं० १५)

अर्थ—(मरूतः) हे ऐश्वर्यशाली परमात्मन्। आप (पथ्यासु) पथ्यदि से पूर्ण देशों में (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) सुख देने वाले हों (धन्वसु) धन देने वाले हों (अप्सु) जलादि (स्वस्ति) तथा सुख देने वाले हों (स्वर्वति) समस्त आयुध (बृजने) चलने पर (स्वस्ति) कल्याण कर हों (पुत्र कृरोषु) पुत्रादिक तथा (योनिषु) निवास स्थल भी कल्याणंकारी हों (राये) धनादि ऐश्वर्य को (स्वस्तिः) सुख के लिये (दधातन) धारण करें ॥२१॥

गयः प्लातः ऋषिः। पथ्या स्वस्तिः देवताः।
आर्चीस्वराड् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः।

स्वस्तिरिद्धि प्रपथे श्रेष्ठारेक्ण स्वस्त्यभि या वाममेति।
सा नो अमा सो अरणेनिपातु स्वावेशा भवतु देव गोपा ॥२२॥

(ऋ० मं० १० ।सू० ६३। मं० १६)

अर्थ—(स्वस्तिः) सुखदायक हो (इत्हि) निश्चित रूप से (श्रेष्ठा) उत्तम (प्रपथे) मार्ग (रैक्ण) धनयुक्त (वामम्) सेवनीय मार्ग (स्वस्ति) सुख को (अभिएति) प्राप्त होते हैं (सा नः) वह मार्ग (अमा) हमारे गृहों की (निपातु) रक्षा करें (सानः) वही मार्ग (स्वावेशा) श्रेष्ठ व्यवस्था युक्त (देवगोपा) विद्वानों द्वारा रक्षित (भवतु) हो ॥२२॥

स्वस्ति वाचनम् ।

परमेष्ठी प्रजापतिः ऋषिः । सवितादेवताः क स्वराड्बृहती छन्द, रब्राह्म्युष्णिक छन्दः । क मध्यमः स्वरः ऋषभः स्वरः ।

इषे त्वोर्ज्जे त्वा वायवस्थ देवो वः सविता
प्रार्पयतु श्रेष्ठ तमाय कर्मणा आप्यायध्वमघ्न्या
इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवाअयक्ष्मा मा
व स्तेन ईशत माघशँ सो ध्रुवाऽअस्मिन्
गो पतौ स्यात ब्रह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि ॥२३ ॥

(यजु० अ० १ ।मं० १) ।

अर्थ—हे मनुष्यो ! जो (सविता) सकल जगत् का उत्पत्तिकर्त्ता समग्र ऐश्वर्य युक्त (देवः) सकल सुखदाता परमेश्वर (वः) हमारे (वायवः) प्राण इन्द्रिय तथा अन्तःकरण को (स्थः) स्थिर रूप से (श्रेष्ठतमाय) उत्तम (कर्मणो) कर्मों में (प्रार्पयत) अच्छी प्रकार संयुक्त करे, हम लोग (इवे) अन्नादि उत्तम उत्तम पदार्थों और विज्ञान की इच्छा करें और (ऊर्ज्जे) पराक्रम अर्थात् उत्तम रस की प्राप्ति के लिये (भागं) सेवाकरने के योग्य धन और ज्ञान के भरे हुये (त्वा) उक्त गुशावाले और (त्वा) श्रेष्ठ पराक्रमादि गुशों के देने हारे आपका सब प्रकार से आश्रय करते हैं, हे मित्र ! लोगों तुम भी ऐसे होकर (आप्यायध्वम्) उन्नति को प्राप्त हो तथा हम भी हों, हे भगवान जगदीश्वर ! हम लोगों के (इन्द्राय) परम ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये (प्रजावती) जिसके बहुत सन्तान हैं तथा जो (अनमीवाः) व्याधि और (अयक्ष्मा) जिसमें राजयक्ष्मा आदि रोग नहीं हैं, वे (अध्या) जो जो गो आदि पशु वा उन्नति करने के योग्य हैं, जो कभी हिंसा करने योग्य नहीं हैं कि जो इन्द्रिया या पृथ्वी आदि लोक हैं उनमें सदैव निवास कीजिये । हे जगदीश्वर ! आपकी कृपा से हम लोगों में से दुःख देने के लिये कोई (अघशंसः) पापी वा (स्तेनः) चोर डाकू (माईशन) मत उत्पन्न हों तथा आप इस (यजमानस्य) परमेश्वर और सर्वोपकार धर्म के सेवन सेवन करने वाले मनुष्य के (पशून्) गौ, घोड़े और हाथी आदि तथा लक्ष्मी और प्रजा की (पाहि) निरन्तररक्षा कीजिये जिससे इन पदार्थों के हरने को पूर्वोक्त कोई दुष्ट मनुष्य (मा) समर्थन हो (अस्मिन) इस धार्मिक (गौयजो) पृथवी आदि पदार्थों की रक्षा चाहने वाले सज्जन मनुष्य के समीप (वह्वीः) बहुत से उक्त पदार्थ (ध्रुवाः) निश्चल सुख के हेतु (स्यात) हों ॥२३ ॥

प्रजापतिः ऋषिः । यज्ञोदेवताः । निचृज्जगती छन्दः । निषाद स्वरः ।

आनोभद्राः क्रतवोयन्तु विश्वतोऽदब्धासोऽअपरीतास उद्भिदः ।
देवानोयथा सदमिद्वृधे असन्न प्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे ॥२४ ॥

(य० अं० २५ ।मं० २८)

अर्थ—हे परमात्मन् !आप की कृपा से (नः) हमारे (कृतवः) कर्म (भद्राः) कल्याणकारी (आ यन्तु) हों (विश्वतः) समस्त (अदब्धासः) निर्विघ्न (अपरीतासः) सब कामों से उत्तम (उद्भिदः) जो दुःखों का विनाश करते वे (क्रतवः) यज्ञ वा बुद्धि बल (आ यन्तु) अच्छे प्रकार प्राप्त हों (यथा) जैसे (नः) हम लोगों की (सदम्) उस सभा को कि जिसमें स्थित होते हैं प्राप्त हुए (अप्रायुवः) जिनकी व्यवस्था नष्ट नहीं होती वे (देवाः) पृथिवी आदि देवों के समान विद्वान्जन् (दिवे दिवे) प्रतिदिन (वृधे) वृद्धि के लिये (रक्षितारः) पालना करने वाले (असन्) हों, वैसा आचरण करो ॥२४ ॥

(य०अ० २५ । मं. १४)

प्रजापतिः ऋषिः । विद्वांसः देवताः । जगती छन्दः । निषादः स्वरः ।
देवानांभद्रा सुमति ऋजूयतां देवानाꣳ रातिरभि नो निवर्त्तताम् ।
देवानाꣳ सख्यमुपसेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे ॥२५ ॥

(य०अ० २५ ।मं० १५ ।)

अर्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (देवानाम्) विद्वानों की (भद्रा) कल्याण करने वाली (सुमतिः) उत्तम बुद्धि हम लोगों को और (ऋजूयताम) कठिन विषयों को सरल करते हुए (देवानाम्) देने वाले विद्वानों का (रतिः)विद्यादि पदार्थों का देना (नः) हम लोगों को। (अभि निः वर्त्तताम्) सब ओर से सिद्ध करें, सब गुणों से पूर्ण करें (वयम्) हम लोग (देवानाम्) विद्वानों की (सख्यम्) मित्रता को (उपसेदिमा) अच्छे प्रकार पावें (देवाः) विद्वान (नः) हमको (जीवसे) जीने के लिये (आयुः) जिससे प्राण का धारण होता है उस आयु को (प्रतिरन्तु) पूरी भुगावें वैसे तुम्हारे प्रतिवर्त्ताव रखें ॥२५ ॥

गोतमो ऋषिः । ईश्वरो देवताः । निचृज्जगती छन्दः । निषाद स्वरः ।
तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम् ।
पूषानो यथा वेद सामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥२६ ॥

(य०अ० २५ ।१८) ॥

अर्थ—हे मनुष्यो ! (वयम्) हम लोग अवसे) रक्षा आदि के लिये (जगतः) चर और (तस्थुषः) अचर जगत् के (पीतम्) रक्षक (धियं जिन्वम्) बुद्धि को तृप्त,

प्रसन्न वा शुद्ध करने वाले (तं) उस अखण्ड (ईशानम्) सब को वश में रखनेवाले सबके स्वामी परमात्मा की (हूमहे) स्तुति करते हैं, वह (यथा) जैसे (नः) हमारे (वेदसाम) धनों की (वृधे) वृद्धि के लिये (पूषा) पुष्टिकर्त्ता तथा (रक्षिता) रक्षा करने हारा (स्वस्तये) सुख के लिये (पायुः) सबका रक्षक (अदब्धः) न मारने वाला (असत) होये वैसे तुम लोग भी उसकी स्तुति करो और वह तुम्हारे लिये भी रक्षा आदि का करने वाला होवे ॥२६ ॥

गोतमो ऋषिः । ईश्वरो देवताः । स्वराट् बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ।

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्ताक्ष्यों अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥२७ ॥

(य०अ० २५ ।मं०१९)

अर्थ—हे मनुष्यो !जो (वृद्धश्रवाः) बहुत सुनने वाला (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् ईश्वर (नंः) हमारे लिए (स्वस्ति) उत्तम सुख जो (विश्ववेदाः) समस्त जगत् में वेद ही जिसका धन है वह (पूषा) सबका पोषण करने वाला (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) सुख को (तार्क्ष्य) घोड़े के समान (अरिष्टनेमिः) सुखों की प्राप्ति कराता हुआ (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) उत्तम सुख तथा जो (बृहस्पतिः) महतत्त्व आदि का स्वामी वा पालन करने वाला परमेश्वर (नः) हमारे लिए (स्वस्ति) उत्तम सुख को धारण करे वह तुम्हारे लिये भी सुख को धारण करे ॥२७ ॥

गोतम ऋषिः विद्वांसो देवताः । निचृदत्रिष्टुप् छन्दः । धैवत् स्वरः ।

भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवा ꣳ सस्तनूभि र्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥२८ ॥

(य०अ०२५ ।मं० २१)

अर्थ—हे (यजत्राः) संग करने वाले (देवा) विद्वानों आप लोगों के साथ सेहम (करौभिः) कानों से (भद्रम) जिससे सत्यता जानी जावे उस वचन को (श्रृणुयाम) सुनें (अक्षभिः) आंखों से (भद्रम) कल्याण को देखें (स्थरे) दृढ़ (अङ्गैः) अवयवों से (तुष्टुवांसः) स्तुति करते हुए (तनुभिः) शरीरों से (यत्) जो (देवहितम्) विद्वानों के लिये सुखप्रद (आयुः) जीवन है उसको (वि, अशेमहि) अच्छे प्रकार

भरद्वाज ऋषिः। अग्निर्देवताः। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः

अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्य दातये!
नि होता सत्सि बर्हिर्षि ॥२९॥ *(सा० छ० आ० प्र० १ । मं० १ ।)*

अर्थ—हे (अग्ने) विद्वन्! जिस कारण से आप (गृणानः) स्तुति करते हुए (होता) दाता (बर्हिषि) उत्तम सभा में (वीतये) विद्या आदि श्रेष्ठ गुणों की उन्नति के लिए और (हव्यदातये) देने योग्य के दान के लिए (निसत्सि) उत्तम प्रकार जानते हो उससे हम लोगों की उत्तम दीप्ति को (आ, याहि) सब प्रकार प्राप्त होओ ॥२९॥

भरद्वाज ऋषिः। अग्निर्देवता। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः।

त्वमग्ने यज्ञाना होता विश्वेषां हितः।
देवेभिर्मानुषेजने ॥३०॥ *(सा० छं० आ० प्र० १ । मं० २)*

अर्थ—हे (अग्ने) जगदीश्वर! जिस कारण से (त्वम्) आप (यज्ञानाम्) प्राप्त होने वाले व्यवहारों के (होता) देने वाले और (विश्वेषाम्) सबके (हितः) हितकारी हो (देवेभिः) विद्वानों के साथ (मानुषे) मनुष्य सम्बन्धी (जने) मनुष्य में प्रेरणा करने वाले होओ ॥३०॥

अथर्वा ऋषिः। वाचस्पतिर्देवताः। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धार स्वरः।

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि विभ्रतः।
वाचस्पति र्बला तेषां तन्वो अद्यदधातु मे ॥३१॥ अ०, का० १, सू० १, मं० १॥

अर्थ—(ये) जो (त्रि सप्ताः) तीन और सात अर्थात् सत रजतम पृथिवी जल अग्नि वायु तथा आकाश प्राण पञ्च ज्ञानेन्द्रियां पञ्च सूक्ष्म भूत मन और बुद्धि से विश्वा रूपाणि) समस्त चराचर जगत् (परियन्ति) परस्पर (विभ्रतः) भ्रमण शील रहता है (तेषाम्) उनसे (मेतन्वः) मेरे शरीर के (बला) बलों को (अद्य) आज (वाचस्पतिः) विद्वान् (दधातु) धारण करावें ॥३१॥

इति स्वस्ति वाचनम्॥

शान्तिकरणम्

वशिष्ठ ऋषिः विश्वे देवादेवताः । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ।
शन्न इन्द्राग्नी भवता मवोभिः शन्न इन्द्रा वरूणा रातहव्या ।
शमिन्द्रा सोमा सुविताय शं योः शन्न इन्द्रा पूषणा वाजसातौ ॥१ ॥

(ऋ०मं० ७ ।सू० ३५ ।मं० १)

अर्थ—हे जगदीश्वर (वाजसातौ) संग्राम में (सुविताय) ऐश्वर्य होने के लिए (नः) हम लोगों को (अवोभिः) रक्षा आदि के साथ (इन्द्राग्नीः) बिजली और साधारण अग्नि (शम्) सुख करने वाले (शं) मङ्गल करने वाले (रातहव्या) दी हैं ग्रहण करने को वस्तु जिन्होंने ऐसे (इन्द्रा वरूणा) बिजली और जल (नः) हमारे लिये (शं) सुख करने वाले (इन्द्रा सोमा) बिजली और ओषधिगण (शं) सुखकारक (योः) सुख के निमित्त और (इन्द्रा) बिजली और वायु (नः) हमारे लिये (शं) आनन्द दायक (भवताम्) हों वैसा हम लोग प्रयत्न करें ॥१ ॥

वशिष्ठ ऋषिः विश्वेदेवा देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः द्यैवतः स्वरः ।
शन्नो भगः शमु नः शं सो अस्तु शन्नः पुरन्धिः शमु सन्तु रायः ।
शन्नः सत्यस्य सुयमस्य शं सः शं नो अर्यमा पुरूजातो अस्तु ॥२ ॥

(ऋ०मं०७ ।सू० ३५ । मं० २)

अर्थ—हे मनुष्यो ! जैसे (नः) हम लोगों के लिये (भगः) ऐश्वर्य (शं) सुखकारक (नः) हमारे लिये (शं सः) शिक्षा वा प्रशंसा (शम्) सुख दायक (उ) और (पुरन्धिः) बहुत पदार्थ जिसमें रखे जाते हैं वह आकाश (शम्) सुखकारक (अस्तु) हो (नः) हमारे लिये (रायः) धन (शम्) सुख करने वाले (उ) ही (सन्तु) हों (नः) हमारे लिये (सत्यस्य) यथार्थ धर्म वा परमेश्वर की (सुयमस्य) सुन्दर नियम से प्राप्त करने योग्य व्यवहार की (शंसः) प्रशंसा (शम्) सुख देने वाली और (पुरू जातः) बहुत मनुष्यों में प्रसिद्ध (अर्यमा) न्यायकारी (नः) हमारे लिये (शम्) आनन्ददायक (अस्तु) होवे, वैसा प्रयत्न हम लोग करें ॥२ ॥

वशिष्ठ ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।
शं नो धाता शमु धर्त्ता नो अस्तु शन्न उरूची भवतु स्वधाभिः ।
शं रोदसी बृहती शन्नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु ॥३ ॥

अर्थ—हे जगदीश्वर वा विद्वान् !आपकी कृपा और संग से (नः) हमारे लिये (धाता) धारणा करने वाला (शम्) सुख रूप (च) और (धर्त्ता) पुष्टि करने वाला (नः) हमारे लिये (शम्) सुखरूप (अस्तु) हो (स्वधाभिः) अन्नादिकों के साथ (उरूची) जो बहुत पदार्थों को प्राप्त होती वह पृथिवी (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारक (भवतु) हो (बृहती) महान (रोदसी) प्रकाश और अन्तरिक्ष हमारे लिये (शम्) सुखकारक (भवतु) होवें (अद्रिः) मेघ (नः) हमारे लिए (शम्) सुखकारक हो (जः) हमारे लिये (देवानाम्) विद्वानों के (सुहवानि) आमन्त्रण (शम्) सुख रूप हों ॥३ ॥ *(ऋ० मं० ५छसू० ३५छ मं० ३)*

वशिष्ठ ऋषिः । विश्वे देवा देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।
शन्नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शन्नो मित्रा वरूणावश्विना शम् ।
श नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शं न इषिरो अभिवातु वातः ॥४ ॥

(ऋ०मं० ७ सू० ३५ मं० ४)

अर्थ—हे जगदीश्वर वा विद्वान् ! आपकी कृपा से (ज्योतिरनीकः) ज्योति ही सेना के समान जिसकी (अग्निः) वह अग्नि (नः) हमारे लिये (शम्) सुखरूप और (मित्रा वरूणो) प्राण और उदान (नः) हमारे लिये (शम्) सुखरूप होवें (नः) हम (सुकृताम्) सुन्दर धर्म करने वालों के (सुकृतानि) धर्माचरण (शम्) सुखरूप (सन्तु) हों और (इषिरः) शीघ्र जाने वाले (वातः) वायु (नः) हमारे लिये (शम्) सुखरूप (अभिवातु) सब ओर से बहे ॥४ ॥

वशिष्ठ ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ।
शं नो द्यावा पृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षंदृशये नो अस्तु ।
शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः ॥५ ॥

(ऋ० मं० ५ ।सू० ३५ । मं० ५)

अर्थ—हे जगदीश्वर और शिक्षा देने वाले !आपकी कृपा और उपदेश से (पूर्वहूतौ) जिसमें पिछलों की प्रशंसा विद्यमान वा जिससे पिछलों की प्रशंसा

होती है उसमें (द्यावा पृथिवी) बिजली और भूमि (नः) हमारे लिये (शम्) सुख (दृशये) देखने को (अन्तरिक्षम्) भूमि सुखरूप (अस्तु) और (ओषधीः) ओषधि तथा (वनिनः) वन जिनमें विद्यमान वे वृक्ष (नः) हमारे लिये (शंः) सुखरूप (भवन्तु) होवें (रजसः) लोकों में उत्पन्न हुओं का (पतिः) स्वामी (जिष्णुः) जयशील (नः) हमारे लिये (शं) सुखरूप (अस्तु) हो ॥५ ॥

वशिष्ठ ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः निचृद्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ।
शं न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिवरूणः सुशंसः ।
शं नो रूद्रो-रूद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टाग्नाभि रिहशृणोतु ॥६ ॥

(ऋ० मं० ७ ।सू० ३५ । मं० ६)

अर्थ—हे जगदीश्वर वा विद्वान !आप के सहाय और परीक्षा से (इह) यहाँ (वसुभिः) पृथिव्यादिकों के साथ (देवः) दिव्यगुण कर्म स्वभाव युक्त (इन्द्रः) बिजली वा सूर्य (नः) हमारे लिये (शं) सुखरूप और (आदित्येभिः) संवत्सर के महीनों के साथ (सुशंसः) प्रशंसित और प्रशंसा करने के योग्य (वरूणः) जल समुदाय हमारे लिये (शम्) सुखरूप (अस्तु) हों (रूद्रेभिः) जीवप्राणों के साथ (जलाषः) दुःख निवारण करने वाला (रूद्रः) परमात्मा वा जीव (नः) हमारे लिये (शं) सुखरूप हों (ग्नाभिः) वाणियों के साथ (त्वष्टा) सर्ववस्तु विच्छेदक अग्नितुल्य परीक्षक विद्वान् (नः) हमारे लिये (शं) कल्याणकारक (शृणोतु) सुनें ॥६ ॥

वशिष्ठ ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । विराट्त्रिष्टुप् ।
धैवतः स्वरः ॥७ ॥
शन्नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः ।
शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्वः शम्वस्तुवेदिः ॥७ ॥

(ऋ० मं० ७ ।सू० ३५ । मं० ७)

अर्थ—हे परमेश्वर वा विद्वान् ! आपकी कृपा और पढ़ाने से (सोमः) चन्द्रमा (नः) हमारे लिये (शं) सुखदायक (भवतु) हो (ब्रह्मा) वेद, धन वा अन्न (नः) हमारे लिये (शं) सुखदायक हों (ग्रावाणः) मेघ (नः) हमारे लिये (शमु) सुखदायक (सन्तु) हों (यज्ञाः) अग्निहोत्रसे शिल्प यज्ञ पर्यन्त (नः) हमारे लिये (शम्) सुखदायक ही

हों (स्वरूणाम्) यज्ञशाला के स्तम्भ शब्दों के (मितवः) परिमाण हमारे लिये (शम्) सुखदायक (भवन्तु) हों (प्रस्वः) जो उत्पन्न होती हैं वह औषधि (नः) हमारे लिये (शं) सुखदायक हों और (वेदिः) यज्ञवेदी हमारे लिये (शम् उ) सुखदायक ही (अस्तु) हो ॥७ ॥

वशिष्ठ ऋषिः । विश्वे देवा देवताः । निवृत् त्रिष्टुप्छन्दः धैवतः स्वरः ॥८ ॥

शंनः सूर्य उरू चक्षा उदेतु शंनश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु ।
शंनः पर्वता ध्रुवयोभवन्तु शंनः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ॥८ ॥

(ऋ० मं० ७ ।सू० ३५ । मं० ८)

अर्थ—हे परमेश्वर वा विद्वान् ! आपकी शिक्षा से (उरूचक्षा !) जिसके बहुत दर्शन होते हैं वह (सूर्यः) सूर्य (नः) हमार लिये (शमं) सुखदायक रूप से (उदेतु) उदय हो (वाचतस्रः) चारों दिशा व विदिशा (नः) हमारे लिये (शं) सुखप्रद (भवन्तु) हों (ध्रुवयः) अपने अपने स्थान में स्थिर (पर्वताः) पर्वत (नः) हमारे लिये (शं) सुखप्रद (भवन्तु) होवें (सिन्धवः) नदी वा समुद्र (नः) हमारे लिये (शं) सुखप्रद और (आपः) जलवा प्राण (शं) सुखप्रद (उ) ही (सन्तु) हों ॥८ ॥

वशिष्ठ ऋषिः । विश्वे देवा देवताः । विराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥९ ॥

शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शंनो भवन्तु मरूतः स्वर्काः ।
शंनो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शंनोभवित्रं शम्वस्तु वायुः ॥९ ॥

(ऋ० मं० ७ ।सू० ३५ ।मं० ९)

अर्थ—हे अध्यापक और उपदेशक विद्वानों ! तुम जैसे (अदितिः) विदुषी माता (व्रतेभिः) अच्छे कामों के साथ (नः) हमारे लिये (शं) सुखप्रद (भवतु) हो (स्वर्काः) सुन्दर मन्त्र विचार हैं जिनके वे (मरूतः) प्राणों के समान प्रियजन अच्छे कामों के साथ (शम्) सुखप्रद (भवन्तु) होवें (विष्णु) व्यापक जगदीश्वर (नः) हमारे लिये (शं) सुखप्रद हो (पूषा) पोषण करने वाला ब्रह्मचर्य आदि व्यवहार (नः) हमारे लिये (शं) सुखप्रद ही (अस्तु) हो (भवित्रम्) होनहार काम (नः) हमारे लिये (शं) सुखरूप होवें और (वायु) पवन (नः) हमारे लिये (शं) सुखप्रद (उ) ही (अस्तु) हो वैसी शिक्षा दो ॥९ ॥

वशिष्ठ ऋषिः । विश्वे देवा देवताः । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥१० ॥

शन्नोदेवः सवितात्रायमाणः शन्नो भवन्तूषसो विभातीः ।
शंनः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शंनः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शम्भुः ॥१० ॥

(ऋ०मं० ७ ।सू० ३५ ।मं० १०)

अर्थ—हे विद्वानो ! तुम जैसे हम लोगों को शिक्षा देओ जैसे (त्रायमाणः) रक्षा करता हुआ (सविता) सकल जगत् की उत्पत्ति करने वाला ईश्वर (देवः) जोकि सब सुखों का देने वाला आप ही प्रकाशमान वह (नः) हमारे लिये (शं) सुखप्रद हो (विभाती) विशेषता से दीप्ति वाली (उषसः) प्रभात वेला (नः) हमारे लिये (शं) सुखप्रद हो (पर्जन्यः) मेघ (प्रजाभ्यः) प्रजाजनों तथा (नः) हमारे लिये (शं) सुखप्रद (भवतु) होवें (क्षेत्रस्य पतिः) जिसके बीच में निवास करते हैं उस जगत का स्वामी ईश्वर वा राजा (शम्भुः) सुख की भावना करने वाला (नः) हमारे लिये (शं) सुखप्रद (अस्तु) हो ॥१० ॥

वशिष्ट ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ।
शंनोदेवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सहधीभिरस्तु ।
शंमभिषाचः शमुरातिषाचः शंनो दिव्याः पार्थिवाः शं नो अप्याः ॥
॥११ ॥

(ऋ०मं० ७ ।सू० ३५ ।मं० ११)

अर्थ—हमारे शुभ गुणों के आचार से (देवाः) विद्यादि शुभ गुणों के देने वाले (विश्वेदेवाः) सब विद्वान् जन (नः) हमारे लिये (शं) सुख रूप (भवन्तु) होवें (सरस्वती) विद्या सुशिक्षायुक्तवाणी (धीभिः) उत्तम बुद्धियों के (सह) साथ (नः) हमारे लिये (शम्) सुखरूप (अस्तु) हो (अभिषाचः) जो अभ्यन्तर आत्मा में सम्बन्ध करते हैं वे (नः) हमारे लिये (शम्०) सुखरूप हों और (रातिषाचः) विद्यादि दान का सम्बन्ध करने वाले हमारे लिये (शम्) सुखरूप (उ) ही होवें तथा (दिव्याः) शुभगुण कर्म स्वभाव युक्त (पार्थिवाः) पृथिवी में विहित जन या बहुमूल्य पदार्थ (शम्) सुखरूप और (अप्याः) जलों में उत्पन्न हुए नौकाओं से जाने वाले वा मोती आदि पदार्थ (नः) हमारे लिये (शं) सुखरूप हों ॥११ ॥

वशिष्ठ ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ।

शंनः सत्यस्य पतयो भवन्तु शंनो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः ।

शंनः ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शंनो भवन्तु पितरो हवेषु ॥१२॥

अर्थ—हे जगदीश्वर वा विद्वान्! जैसे (हवेषु) हवन आदि अच्छे कार्यों में (सत्यस्य) सत्य भाषण आदि व्यवहार के (पतयः) पति (नः) हमारे लिये (शम्) सुखरूप होवें (अर्वन्त) उत्तम घोड़े (नः) हमारे लिये (शम्) सुखरूप होवें (गावः) दूध देती हुई गौयें (नः) हमारे लिये (शम्) सुखरूप (उ) ही (सन्तु) हों (सुकृतः) धर्मात्मा (सुहस्ताः) सुन्दर अच्छे कामों में हाथ डालने वाले (ऋभवः) बुद्धिमान् जन (नः) हमारे लिये (शं) सुखदायक हों (पितरः) पितृजन (नः) हमारे लिये (शम्) सुखरूप (भवन्तु) होवें वैसा विश्वास करो ॥१२॥

वशिष्ठ ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः ।

पञ्चमः स्वरः ।

शं नो अज एकं पाद्देवो अस्तुशंनोऽहिर्बुध्न्यः १ शं समुद्रः ।

शं नो अपांनपात्पेरूरस्तु शं नः पृश्निर्भवतुदेवगोपाः ॥१३॥

(ऋ० मं० ७ ।सू० ३५ ।मं० १३)

अर्थ—हे विद्वानों तुम वैसी शिक्षा देओ जैसे (नः) हम लोगों को *(अजः)* जो कभी नहीं उत्पन्न होता वह जगदीश्वर (एक पात) जिसके एक पाद में सब जगत् विद्यमान है (देवः) सब सुख देने वाला (विद्वान् (शं) सुखरूप हो (बुध्न्यः) अन्तरिक्ष में प्रसिद्ध होने वाला (अहिः) मेघ (नः) हमारे लिए (शम्) सुखरूप हो (समुद्रः) जिसमें अच्छे प्रकार जल उछलते हैं वह सागर (नः) हमारे लिये (शं) सुखरूप हो (अपाम्) जलों का पार करने वाला और (पात्) पैर जिसके नहीं है वह नौका (नः) हमारे लिये (शं) सुखरूप (अस्तु) हो (देवगोपाः) और सबकी रक्षा करने वाला (पृश्निः) अन्तरिक्ष अवकाश (नः) हमारे लिये (शं) सुखरूप (भवतु) हो ॥१३॥

दध्यङ्ङाथर्वणः ऋषिः । इन्द्रोदेवताः । द्विपाद विराड्गायत्री छन्दः ।

षड्जःस्वरः ।

इन्द्रो विश्वस्य राजति । शंनोऽअस्तुद्विपदे शं चतुष्पदे ॥१४॥

(य० अ० ३६ ।मं ८)

अर्थ—हे जगदीश्वर जो आप (इन्द्रः) बिजली के तुल्य (विश्वस्य) संसार के बीच (राजति) प्रकाशमान हैं उन आपकी कृपा से (नः) हमारे (द्विपदे) पुत्रादि के लिये (शम्) सुखदायक (अस्तु) होवे और हमारे (चतुष्पद) गौ आदि के लिये (शम्) सुखदायक होवे ॥१४ ॥

दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । वातादयो देवताः विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ।

शं नो वातः पवता थ्ँ शं नस्तपतु सूर्यः ।
शं नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्योऽअभिवर्षतु ॥१५ ॥

(ऋ० य०अ० ३६ ।मं० १०)

अर्थ—हे परमेश्वर वा विद्वान् पुरूष ! जैसे (वातः) पवन (नः) हमारे लिये (शं) सुखकारी (पवताम्) चले (सूर्यः) सूर्य (नः) हमारे लिये (शम्) सुखप्रद (तपतु) तपे (कनिक्रदत) अत्यन्त शब्द करता हुआ (देवः) उत्तम गुण युक्त विद्युत् रूप अग्नि (नः) हमारे लिये (शं) कल्याणकारी हो और (पर्जन्यः) मेघ हमारे लिये (वर्षतु) सब ओर से वर्षा करे वैसे हमको शिक्षा कीजिये ॥१५ ॥

दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः ।लिङ्गोक्तादेवताः ।अतिशक्वरी छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥१६ ॥

अहानि शं भवन्तु नः शँ रात्रीः प्रतिधीयताम् ।
शं न इन्द्राग्नी भवता मवोभिः शं न इन्द्रा वरूणा रातहव्या ।
शं न इन्द्रा पूषणा वाजसातौ शमिन्द्रा सोमा सुवितायशंयोः ॥१६ ॥

(य०अ० ३६ ।मं० ११)

अर्थ—हे परमेश्वर वा विद्वान्जन ! (अवोभिः) रक्षा आदि के साथ (शंयोः) सुख की (सुविताय) प्रेरणा के लिये (नः) हमारे अर्थ (अहानि) दिन (शम्) सुखप्रद (भवन्तु) हों (रात्रीः) रातें (शम्) कल्याण के (प्रति) प्रति (धीयताम्) हमको धारण करें (इन्द्राग्नी) बिजली और प्रत्यक्षअग्नि (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारी (भवताम्) होवें (रातहव्या) ग्रहण करने योग्य सुख जिनसे प्राप्त हुआ वे (इन्द्रा वरूणा) विद्युत और जल (न) हमारे लिये (शम्) सुखकारी हों (वाजसातौ) अन्नों के सेवन के हेतु संग्राम में (इन्द्रापूषणा) विद्युत और पृथिवी (नः) हमारे लिये

(शम्) सुखकारी होवें और (इन्द्रासोमा) बिजली और औषधियाँ (शं) सुखकारिणी हों वैसे हमको आप अनुकूल शिक्षा करें ॥१६ ॥

दध्यङ्ङाथर्वणः ऋषिः । आपो देवताः । गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ।

शं नो देवी रभिष्टय आपो भवन्तुपीतये शंय्योरभि स्रवन्तु नः ॥१७ ॥

य० अ० ३६ ।मं० १२ ।)

अर्थ—हे जगदीश्वर वा विद्वानजन ! जैसे (अभिष्टये) इष्ट सुख की सिद्धि के लिये (पीतये) पीने के अर्थ (देवीः) दिव्य उत्तम (आपः) जल (नः) हमको (शम्) सुखकारी (भवन्तु) होवें (नः) हमारे लिये (शंयोः) सुख की वृष्टि (अभिस्रवन्तु) सब ओर से करें वैसे उपदेश करो ॥१७ ॥

दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । ईश्वरो देवताः । भुरिक् शक्वरीछन्दः ।
पञ्चमः स्वरः ।

द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष ँ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः ।
वनस्पतयः शान्ति र्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्व ँ शान्तिः शान्तिरे वशान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥१८ ॥

(य०अ० ३६ ।मं० १७)

अर्थ—हे मनुष्यो ! जो (शान्तिः द्यौः) प्रकाश युक्त पदार्थ शान्ति कारक (अन्तरिक्षम्) दोनों लोक के बीच का आकाश (शान्ति) शान्तिकारी (पृथिवी) भूमि (शान्तिः) सुखकारी निरूपद्रव (आपः) जल वा प्राण (शान्ति) शान्ति दायी (ओषधयः) सोमलता आदि ओषधियां (शान्तिः) सुखदायी (वनस्पतयः) वट आदि वनस्पति (शान्तिः) शान्ति कारक (विश्वे देवाः) सब विद्वान् लोग (शान्तिः) उपद्रव निवारक (ब्रह्म) परमेश्वर वा वेद (शान्तिः) सुखदायी (सर्वम) सम्पूर्ण वस्तु (शान्तिः) सुखकारी (शान्तिः एव) शान्ति ही (शान्तिः) शान्ति (मा) मुझको (एधि) प्राप्त होवे (शा) वह (शान्तिः) तुम लोगों के लिये भी प्राप्त होवे ॥१८ ॥

दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिः । सूर्योदेवताः । भुरिक् ब्राह्मी त्रिष्टुप्छन्दः ।
धैवतः स्वरः ।

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्र मुच्चरत् ।
पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शत ँ शृणुयाम
शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च
शरदः शतात् ॥१९ ॥

(य०अ० ३६ । मं० २४)

अर्थ—हे परमेश्वर !आप जो (देवहितम्) विद्वानों के लिये हितकारी (शुक्रम्) शुद्ध (चक्षुः) नेत्र के तुल्य सबके दिखाने वाले (पुरस्तात्) पूर्वकाल अर्थात् अनादिकाल से (उत् चरत्) उत्कृष्टता के साथ सबके ज्ञाता हैं (तत्) उस चेतन ब्रह्म आपको (शतम् शरदः) सौ वर्ष तक (पश्येम) देखें (शरदः शतम्) सौ वर्ष तक (जीवेम) प्राणों को धारण करें, जीवें (शतम् शरदः) सौ वर्ष पर्यन्त (शृणुयाम) शास्त्रों वा मङ्गलवचनों को सुनें (शतम्शरदः) सौ वर्ष पर्यन्त (प्रब्रवाम) पढ़ावें वा उपदेश करें (शतम् शरदः) सौ वर्ष पर्यन्त (अदीनाः) दीनता रहित (स्याम) हों (च) और शतात, शरदः) सौ वर्ष से (भूयः) अधिक भी देखें, जियें, सुनें, पढ़े, उपदेश करें और अदीन रहें ॥१९ ॥

शिव सङ्कल्प ऋषिः । मनो देवताः । विराड्त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ।
युज्जाग्रतो दूर मुदैतिदैवं तदुसुप्तस्य तथैवैति ।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिव सङ्कल्प मस्तु ॥२० ॥

(य०अ० ३८ ।मं० १)

अर्थ—हे जगदीश्वर वा राजन आपकी कृपा से (यत्) जो (देवम) आत्मा के रहने वा जीवात्मा का संसाधन (दूरङ्गमम) दूर जाने, वाला मनुष्य को दूर तक ले जाने वा अनेक पदार्थों का ग्रहणा करने वाला (ज्योतिषाम) शब्द आदि विषयों के प्रकाशक श्रोत्रादि इन्द्रियों को (ज्योतिः) ग्रहणा करने वाला (एकम्) एक (जागृतः) जागृत अवस्था में (दूर) दूरदूर (उतऐति) भागता है (उ) और (तत्) जो (सुप्तस्य) सोते हुये का (तेथाएवं) उसी प्रकार (एति) भीतर अन्तःकरण में जाता है (तत्) वह (मे) मेरा (मना) संकल्प विकल्पात्मक मन (शिसंकल्प) कल्याण कारी धर्म विषयक इच्छा वाला (अस्तु) हो ॥२० ॥

शिवसङ्कल्प ऋषिः ।मनो देवता ।त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ।
येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः ।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मेमनः शिव सङ्कल्पमस्तु ॥२१ ॥

(य०अ० ३८ ।मं० २)

अर्थ—हे परमेश्वर वा विद्वान्जन !आपके संग से (येन) जिस (अपसः) सदाधर्म कर्म निष्ठ (मनीषिणः) मन का दमन करने वाले (धीराः) ध्यान करने वाले बुद्धिमान् लोग (यज्ञे) अग्नि होत्रादि वाधर्म संयुक्त व्यवहार वा योग यज्ञ में और (विदथेषु) विज्ञान सम्बन्धी और युद्धादि व्यवहारों में (कर्माणि) अत्यन्त इष्ट कर्मों को (कृण्वन्ति) करते हैं (यत्) जो (अपूर्वम्) सर्वोत्तम गुण कर्म स्वभाववाला (प्रजानाम्) प्राणिमात्र के (अन्तः) हृदय में (यक्षम्) पूजनीय वा संगत एकीभूत हो रहा है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मनन विचार करना रूप मन (शिव संकल्पम्) धर्मेष्ठ (अस्तु) होवे ॥२१ ॥

शिव सङ्कल्प ऋषिः । मनो देवताः । स्वराड् त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ।

यत्प्रजानमुत चेतोधृतिश्च यज्ज्योतिरन्तर मृतं प्रजासु ।
यस्मान्नऽऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिव सङ्कल्पमस्तु
॥२२ ॥

(य०अ० ३४ ।मं० ३)

अर्थ—हे जगदीश्वर वा परमयोगिन् विद्वान् !आपके बताने से (यत्) जो (प्रज्ञानम्) विशेष कर ज्ञान का उत्पादक बुद्धिरूप (उत) और भी (चेतः) स्मृति का साधन (धृतिः) धैर्य स्वरूप (च) और लज्जादि कर्मों का हेतु (यत्) जो (प्रजासु) मनुष्यों के (अन्तः) अन्तःकरण में आत्मा का साथी होने से (अमृतम्) नाश रहित (ज्योतिः) प्रकाश स्वरूप (यस्मात्) जिसके (ऋते) बिना (किम्चन्) कोई भी (कर्म) काम (न क्रियते) नहीं किया जाता (तत्) वह (मे) मुझ जीवात्मा का (मनः) सब कर्मों का साधन रूप मन (शिवसङ्कल्पम्) कल्याणकारी परमात्मा में इच्छा रखने वाला (अस्तु) हो ॥२२ ॥

शिवसङ्कल्प ऋषिः । मनोदेवताः । स्वराड्त्रिष्टुप् छन्दः ।
धैवतः स्वरः ।

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम् ।
येन यज्ञस्तायते सप्त होता तन्मे मनः शिव सङ्कल्पमस्तु ॥२३ ॥

(य०अ० ३४ ।म० ४)

अर्थ—हे जगदीश्वर ! (येन) जिससे सबयोगी लोग (इदम्) इन सब (भूतं) भूत (भुवनं) वर्तमान (भविष्यत्) भविष्यत् व्यवहारों को (परिगृहीतम्)जानते (अमृतेन) जो नाश सहित जीवात्मा को परमात्मा के साथ मिलके (सर्वम्) त्रिकालज्ञ करता है (येन) जिसमें ज्ञान और क्रिया है (यज्ञः सप्त होता) पांच ज्ञानेन्द्रिय बुद्धि और जो आत्मा युक्त रहता है उस योग रूप यज्ञ को जिससे (तायते)

बढ़ाते हैं (तत्) वह मेरा (मनः) मन (शिवसङ्कल्पगस्तु) योग विज्ञान युक्त होकर अविद्यादि क्लेशों से पृथक् रहे ॥२३ ॥

शिवसङ्कल्प ऋषिः। मनोदेवताः। त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः।

यस्मिन्नृचः साम यजूँषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाःभाविवाराः।
यस्मिँश्चितँ सर्वमोतं प्रजानांतन्मे मनः शिवसङ्कल्प मस्तु ॥२४॥

(य०अ० ३४ ।मं० ५)

अर्थ—(यस्मिन्) जिस मन में (रथ नाभाविव अराः) जैसे रथ के पहिये के बीच के काष्ठ में अरा लगे होते हैं वैसे (ऋचः) ऋग्वेद (साम) सामवेद (यजूंष्षि) यजुर्वेद सब ओर से स्थित और (यस्मिन्) जिसमें अर्थववेद स्थित है (यस्मिन्) जिसमें (प्रजानाम्) प्राणियों का (सर्वम्) समग्र (चित्तम्) सर्व पदार्थ सम्बन्धी ज्ञान (ओतम्) सूत्र में मणियों के समान संयुक्त है (तत्) वह (मेरा) मेरा (मनः) मन (शिवसङ्कल्पम्) कल्याण कारी वेदादि सत्य शास्त्रों का प्रचाररूप संकल्प वाला (अस्तु) हो ॥२४ ॥

शिवसङ्कल्प ऋषिः। मनो देवताः। स्वराड्त्रिष्टुप् छन्दः।
धैवतः स्वरः।

सुषारथिरश्वाद्मानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभि र्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्टं यदेजिरं जविष्ठं तन्मेमनःशिव सङ्कल्पमस्तु ॥२५॥

(य०अ० ३८ ।मं० ६)

अर्थ—(यत्) जो मन (सुबारधिः) जैसे सुन्दर चतुर सारथि (अश्वान्) लगाम से घोड़ों को सब ओर से चलाता है वैसे (मनुष्यान्) मनुष्यादि प्राणियों को (नेनीयते) शीघ्र-शीघ्र इधर उधर घुमाता है और (अभीशुभिः) जैसे रस्सियों से (वाजिनः इन) वेगवान् घोड़ों को सारथि वश में करता व नियम में रखता है (यत्) जो (हृत्प्रतिष्ठम्) हृदय में स्थित (अजिरम्) विषयादि में प्रेरक वा वृद्धादि अवस्था रहित और (जविष्ठम्) अत्यन्त वेग वान् है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) (शिवसंकल्प) मङ्गलमय नियम में स्थित (अस्तु) होवे ॥२५ ॥

शतंवैखानसः ऋषिः। पवमानः सोमोदेवताः। गायत्री छन्दः।
षड्जः स्वरः।

सं नः पवस्वशंगवे शं जनाय शमर्वते ।
शं राजन्नोषधीभ्यः ॥२६ ॥ *(सा० उत्तरार्चिके प्र९० १ ।मं० २)*

अर्थ—हे परमेश्वर !(स) वह अर्थात् आप (नः) हमें (पवस्व) पवित्र करें (गवे) गौवें (शम्) सुखदायक हों (जनाय) मनुष्यों के लिये (शम्) सुखकारक हों (अर्वते) अश्वादि वाहन (शं) सुखदायक हों (राजन्) हे परमात्मन् ! (ओषधीभ्यः) अन्नादि एवम् ओषधियाँ (शं) सुखदायक हों ॥२६ ॥

अथर्वा ऋषिः । मन्त्रोक्ता देवताः । जगती छन्दः ।निषाद स्वरः ।

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावा पृथिवी उभे इमे ।
अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ॥२७ ॥

(अ०का० १९ ।सू० १५ ।मं० ५)

अर्थ—हे परमेश्वर ! आपकी कृपा से (नः) हमें (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष (अभयं) निर्भयता को (करति) करे (द्यावा पृथिवी) द्यौ अर्थात् सूर्यादि प्रकाशक तथा पृथिवी (उभे इमे) ये दोनों (अभयम्) निर्भयता करें (पश्चात्) पीछे से (अभयं) भय न हो (पुरस्तात्) आगे से (अभयम्) भय न हो (उत्तरात्) ऊपर से और नीचे से (नः) हम (अभयम्) अभय (अस्तु) हों ॥२७ ॥

अथर्वा ऋषिः । मन्त्रोक्ता देवताः । त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ।

अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात् ।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ॥२८ ॥

(अ० का० १९ ।सू० १५ ।मं० ६)

अर्थ—हे परमेश्वर ! हमें (मिज्ञात्) मित्र से (अभयम्) भय न हो (अभित्रात्) शत्रु से (अभयम्) भय न हो (ज्ञातात्) ज्ञात से (अभयम्) भय न हो (परोक्षात्) अज्ञात से (अभयम्) भय न हों (नक्तम्) रात्रि तथा (दिवा) दिन में (नः) हमारे लिये (अभयम्) भय न हो (सर्वा) समस्त (आशा) दिशाएँ (मम) मेरी (मित्र) मित्र (भवन्तु) होवें ॥२८ ॥

इति शान्तिकरणाम् ॥

इस स्वस्तिवाचन और शान्तिकरण को जहाँ-जहाँ प्रतीक धरें वहां तथा मङ्गल कार्यों में सर्वत्र करना होगा ।

वेद मन्त्रों के ऋषि, देवता, छन्द तथा स्वर।

वेद मन्त्रों के ज्ञान के साथ उनके ऋषि, देवता छन्द तथा स्वर का ज्ञान होना अत्यावश्यक है।

सृष्टि की उत्पत्ति के एक करोड़ उन्तीस लाख साठ हजार (१,२९,६०,०००) वर्ष पश्चात् हिमालयस्थ त्रिविष्टप (तिब्बत) प्रदेश में पशु पक्षियों की उत्पत्ति के पश्चात् "मनस्पर" नामक स्थल पर मानवोत्पत्ति हुई। मानवोत्पत्ति के पाँच वर्ष पश्चात् मानसरोवर के समीपस्थ मानवोत्पत्ति के स्थान "मनसर" नामक स्थल पर समाधि अवस्था में अग्नि ऋषि पर ऋग्वेद, वायु ऋषि पर यजुर्वेद, आदित्य ऋषि पर सामवेद तथा अंङ्गिरा ऋषि पर अथर्ववेद का आविर्भाव हुआ। अग्नि, वायु, आदित्य तथा अंङ्गिरा सनातन एवम् पुरातन ऋषि हैं। वर्तमान सम्वत् दो हजार त्रेपन विक्रमी में वेदाभिर्भाव को एक अरब छिआनवे करोड़ आठ लाख त्रेपन हजार इक्यानवे वर्ष व्यतीत हो चुके हैं यह बावनवां वर्ष भोग रहा है तथा वेद प्रकाश काल के दो अरब तैंतीस करोड़ बत्तीस लाख छब्बीस हजार नौ सौ चार वर्ष भोगने शेष हैं। समग्र वेद प्रकाश काल चार अरब उन्तीस करोड़ चालीस लाख उनासी हजार नौ सौ पिच्यानबै वर्ष है। सृष्टि की प्रलय से एक करोड़ उन्तीस लाख साठ हजार वर्ष पूर्व मानव की समाप्ति के साथ वेद का प्रकाश भी लुप्त हो जायेगा। समग्र सृष्टिकाल चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष है। इतना ही प्रलयकाल है।

वेदों में मन्त्रों के ऊपर उल्लिखित ऋषि नवीन ऋषि हैं। ऋषियों के ज्ञान से उनके काल का ज्ञान होता है तथा उनके द्वारा मन्त्रस्थ देवता रूप विषय के निर्देशन का ज्ञान होता है। मन्त्र के ऊपर उल्लिखित देवता मन्त्र का प्रतिपाद्य विषय होता है।

मन्त्र का छन्द परमात्मा की भाषागत सौष्ठव पूर्ण नित्य व्यवस्था है। प्रत्येक मन्त्र का एक निश्चित छन्द है तथा प्रत्येक छन्द का एक निश्चित स्वर है, जैसे गायत्री छन्द का षड्जः स्वर है।

स्वर दो प्रकार के हैं, षड्जादि सातगायन के स्वर हैं। उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित वर्णों के उच्चारण विषयक स्वर हैं।

जगत् की उत्पत्ति के तीन कारण हैं। १. नैमित्तिक कारण परमात्मा। २. साधारण नैमित्तिक कारण जीवात्मा। ३. उपादान कारण प्रकृति, काल तथा आकाश।

परमात्मा चेतनस्वरूप, अनन्त, नित्य, निराकार सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी अजन्मा, आनन्दस्वरूप तथा निरवयव है। जीवात्मा, चेतनस्वरूप, नित्य, अल्पज्ञ, अल्प एकदेशी परिछिन्न तथा निरवयव है, परन्तु निराकार नहीं है। परमात्मा के लिये जीवामा संख्या की दृष्टि से अनन्तनहीं है॥ प्रकृति, जड़ नित्य सावयव है परन्तु सर्वथा निराकार नहीं है।

काल निरवयव निराकार तथा नित्य है।

आकाश नित्य निरवयव तथा निराकारहै।

वेद आर्य संस्कृति का मूल हैं।

"सा प्रथमा सन्स्कृति र्विश्ववारा"(यजुर्वेद)। वेदों से ही समस्त संस्कारों का प्रणयन हुआ है।

सामान्य प्रकरणम् ।

यज्ञ दो प्रकार के होते हैं ।

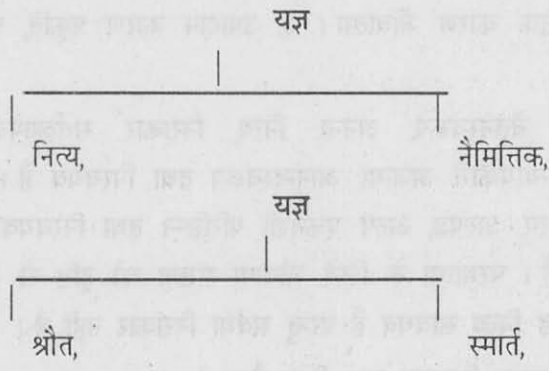

स्मार्त यज्ञ नैमित्तिक ही होते हैं ।

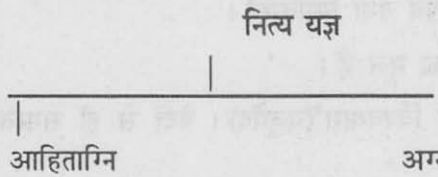

नित्य किये जाने वाले पञ्च महायज्ञ संज्ञक यज्ञ पांच प्रकार के हैं ।

१. ब्रह्म यज्ञ ।
२. देव यज्ञ ।
३. पितृ यज्ञ ।
४. बलि वैश्य देव यज्ञ ।
५. अतिथि यज्ञ ।

यज्ञ सोद्देश्य कर्म है । जिस जिस पदार्थ की कामना वाले होकर हम लोग यज्ञ रूप प्रजापति के द्वारा तत्तत् विषयक मन्त्रों के अनुष्ठानपूर्वक परमात्मा का आश्रय लेवें वह कामना सिद्ध होवे जिससे हम लोग धनैश्वर्यों के स्वामी होवें । (यत्कामास्ते जुहूमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् । (ऋग्वेद) ।

धर्म अर्थ और काम की सिद्धि अर्थात् अभ्युदय प्राप्ति का यज्ञ श्रुति सम्मत साधन है। चारों वेदों के सम्पूर्ण मन्त्रों अथवा किसी भी एक वेद के सम्पूर्ण मन्त्रों से यज्ञ करना किसी भी श्रौत सूत्र अथवा गृह्य सूत्र में वर्णित नहीं है। अतः यह श्रुति सम्मत विहित कर्म नहीं है। श्रुति विहित कर्म करना ही धर्म है।

यज्ञ देश

यज्ञ का स्थल पवित्र, शुद्ध वायु युक्त तथा निरूपद्रव एवम् शान्त वातावरण युक्त हो।

यज्ञशाला

यज्ञशाला को ही यज्ञ मण्डप भी कहते हैं। यह अधिक से अधिक सोलह हाथ सम चौरस और न्यून से न्यून आठ हाथ की हो। यदि भूमि अशुद्ध प्रतीत होती हो तो दो दो हाथ यज्ञशाला की मिट्टी निकालकर उसमें शुद्ध मिट्टी भरे। यदि यज्ञशाला सोलह हाथ की सम चौरस हो तो चारो ओर बीस खम्भे लगावे। यदि आठ हाथ की हो तो बारह खम्भे लगाकर उस पर छाया करें।

यज्ञशाला की छाया की छत यज्ञवेदी की मेखला से दश हाथ ऊँची अवश्य होवे तथा यज्ञशाला में चारों दिशा में चार द्वार रक्खे और यज्ञशाला के चारों ओर ध्वजा पताका एवम् पल्लव आदि बांधे। नित्य जल से मार्जन तथा गोमय से लेपन करें और कुंकुम हल्दी तथा मैदा की रेखाओं से सुभूषित किया करें।

मनुष्यों को उचित है कि सब मङ्गल कार्यों में अपने और पराये सबके कल्याण के लिये यज्ञ द्वारा ईश्वरोपासना करें। इसीलिये सुगन्धित, रोगनाशक, पुष्टिकारक एवम् मिष्ठ द्रव्यों की आहुति यज्ञकुण्ड में देवें। यज्ञकुण्ड का परिमाण— लक्ष आहुति करनी हों तो चार चार हाथ चारो ओर सम चौरस और चौकोण कुण्ड ऊपर और उतना ही गहरा और नीचे चतुर्थांश अर्थात् तले में एक एक हाथ चौकोण लम्बा चौड़ा रहे। इसी प्रकार जितनी आहुति करनी हो उतना ही गहरा चौड़ा कुण्ड बनाना परन्तु अधिक आहुतियों के लिये दो दो हाथ बढ़ावें अर्थात् दो लक्ष आहुतियों के लिये छः हस्त परिमाण का चौड़ा

औरसम चौरस कुण्ड बनाना। जो पचास हजार आहुति देनी हो तो एक हाथ घटावे अर्थात् तीन हाथ गहरा चौड़ा सम चौरस और पौन हाथ नीचे चौड़ा तथा सम चौरस रक्खे। यदि पच्चीस हजार आहुति देनी हो तो दो हाथ चौड़ा सम चौरस गहरा और आधा हाथ नीचे रक्खे। दस हजारआहुति पर्यन्त इसी भांति इतना ही रखना। पांच हजार आहुति पर्यन्त डेढ़ हाथ चौड़ा गहरा सम चौरस और साढ़े आठ अङ्गुल नीचे रहे।

यह कुण्ड का परिमाण विशेष घृताहुति का है। यदि इसमें ढ़ाई हजार आहुति मोहन भोग खीर और ढ़ाई हजार आहुति घृत की देवें तो दो ही हाथ का चौड़ा गहरा सम चौरस और आधा हाथ नीचे सम चौरस रक्खे। चाहे घृत की हजार आहुति देनी हों तथापि सवा हाथ से न्यून चौड़ा गहरा सम चौरस और चतुर्थांश नीचे न बनावें। इन कुण्डों में कुण्ड के बाहिरी ओर यज्ञशाला की भूमि पर पन्द्रह अङ्गुल की मेखला अर्थात् पाँच पांच अङ्गुल ऊँची तीन मेखला क्रमशः बनावें। प्रथम मेखला पाँच अङ्गुल ऊँची और पाँच अङ्गुल चौड़ी इसी प्रकार दूसरी और तीसरी मेखला बनावें।

यज्ञीय समिधा

पलाश, शमी, पीपल, बड़, गूलर, विल्व तथा आम आदि की समिधा वेदी के परिमाणानुसार छोटी बड़ी कटवा लेवे। ये समिधायें कीड़ा लगी, मलिन देशोत्पन्न और अपवित्र पदार्थादि से दूषित न हों, अच्छी भली प्रकार देखकर बीच में चुनें।

होम द्रव्य

प्रथम—सुगन्धित, केशर, कस्तूरी, अगर. तगर श्वेत चन्दन का चूर्ण, इलायची, जायफल जावित्री आदि।

द्वितीय—पुष्टिकारक, घृत, दुग्ध, फल,कन्द, अन्न, चावल, गेहूँ, उड़द, तिल आदि।

तृतीय—मिष्ठ मधु, छुहारे, द्राक्षा, शर्करा आदि।

चतुर्थ—रोगनाशक सोमलता अर्थात् गिलोय आदि औषधियाँ।

स्थाली पाक

नीचे लिखे विधि से भात खिचड़ी (नमक आदि मसाले रहित) लड्डू तथा मोहन भोग आदि सब उत्तम पदार्थ बनावे। इसका प्रमाण—

ओ३म्। देवस्त्वा सविता पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण वसोः सूर्यस्य रश्मिभिः॥

(गोभिलीय गृ०सू० प्र० १। ख. ७। सू० २४)

अर्थ—(ओ३म्) हे सर्वरक्षक परमेश्वर ! आप (देव) प्रकाशक सब सुखों के दाता (सविता) सबको उत्पन्न करने वाले (वसोः) बसाने वाले (त्वा) आपको (अच्छिद्रेण) दोष रहित (सूर्य) सूर्य की (रश्मिभिः) रश्मियों के तुल्य (पवित्रेण) पवित्र, आप हमें पवित्र करें।

इस उपर्युक्त मन्त्र का यह अभिप्राय है कि होम के सब द्रव्य को यथोचित रूप से अवश्य शुद्ध कर लेना चाहिये अर्थात् सबको यथावत् शोध छान देखभाल सुधार कर करें। इन द्रव्यों को यथायोग्य मिलाकर पाक करना। जैसे सेर भर घी के मोहन भोग में रत्ती भर कस्तूरी, मासे भर केशर, दो मासे जायफल जावित्री, सेर भर मीठा सब डाल कर मोहन भोग बनाना। इसी प्रकार अन्य मीठा भात और नमक रहित खिचड़ी मोदक आदि होम के लिये बनावें।

चरु अर्थात् होम के लिये पाक बनाने की विधि—

ओ३म् अग्नये त्वा जुष्टं निर्वपामि॥

(आश्व० गृ०सू०पू० अध्याय० १० । क० १० । सू० ६)॥

अर्थ—हे (अग्नये) सर्वप्रकाशक परमात्मन् (त्वा) आपके लिये (जुष्टं) प्रीतिपूर्वक (निर्वपामि) डालता हूँ।

जितनी आहुति देनी हों प्रत्येक आहुति के लिये चार चार मुट्ठी चावल आदि ले के—

ओ३म् अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि॥

(आश्वला० गृ०सू० अ० १। क० १०। सू० ६)॥

अर्थ—(अग्नये) प्रकाश स्वरूप परमेश्वर ! (त्वा) आपके लिये (जुष्टं) भली भांति प्रीतिपूर्वक (प्रोक्षामि) शुद्ध करता हूँ।

अच्छे प्रकार से जल से धोकर आज्यस्थाली में डाल अग्नि में पका लेवें। जब होम के लिये दूसरे पात्र में लेना हो तभी आज्यस्थाली या शाकल्य स्थाली में निकाल कर यथावत् सुरक्षित रक्खे और उन पर घृत सिञ्चन करें।

यज्ञ पात्र

यज्ञ पात्र विशेषकर सोने चाँदी ताँबे अथवा काष्ठ के होने चाहिये।

समिध पलास की १८ हस्त मात्र, इध्म परिधि ३ पलास की बाहु मात्र, सामिधेनी समित् प्रादेशमात्र, समीक्षण लेर ५, शाही १।

यज्ञ पात्र

पूर्ण पात्र—यह बारह अङ्गुल लम्बा, छः अङ्गुल चौड़ा तथा छः अङ्गुल गहरा होता है। पूर्ण पात्र दो होते हैं—

स्रुचः—बाहुमात्र लम्बी, चार प्रकार की होती हैं।

शम्या—यह प्रादेश मात्र अर्थात् नौ अङ्गुल की होती है।

अरण—उत्तरारणी तथा अधरारणी भेद से अरणी दो प्रकार की होती है।

उत्तरारणी—यह पीपल की लकड़ी की छः अङ्गुल लम्बी तीन अङ्गुल मोटी नीचे से स्थूल तथा ऊपर से पतली होती है। यह मन्थन द्वारा अग्नि प्रकट करने के काम आती है।

अधरारणी—यह छः अङ्गुल मोटी चार अङ्गुल ऊँची अधरारणि मन्थन द्वारा अग्नि प्रकट करने के काम आती है।

पाटला—चौबीस अङ्गुल चौड़े लकड़ी के वर्गाकार चार पटे होते हैं।

उलूखल—यह वरण वृक्ष अथवा किसी दृढ़ वृक्ष का बैठे हुए व्यक्ति के नाभि पर्यन्त ऊँचा पदार्थ को कूट-कूट कर तुष निकालने के लिये होता है।

मूसल—यह वरण वृक्ष अथवा किसी दृढ़ वृक्ष का बैठे हुए व्यक्ति के शिर प्रमाण धानादि कूटने के लिये होता है।

अन्तर्धान कट—यह बारह अङ्गुल का अर्द्ध चन्द्राकाराकृति तथा आठ अङ्गुल ऊँचा होता है। यह यजमान तथा अग्नि कुण्ड के मध्य अग्नि के तेज को रोकने के लिये होता है।

यज्ञ पात्र चित्र

अन्तर्धान १, अं० १२

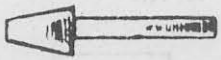

खांडा अंगुल २४

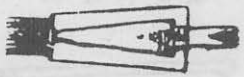

उत्तरारणी टुकड़ा १८

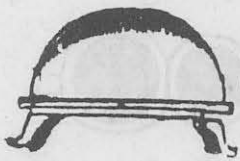

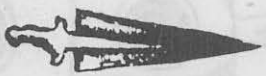

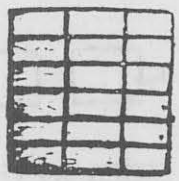

अंगुल ६ पोली, अंगुल ४ ऊंची अधरारणी

प्राशित्रहरणे दर्पणाकार

पिष्टपात्री

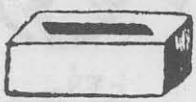

यज्ञ पात्र चित्र

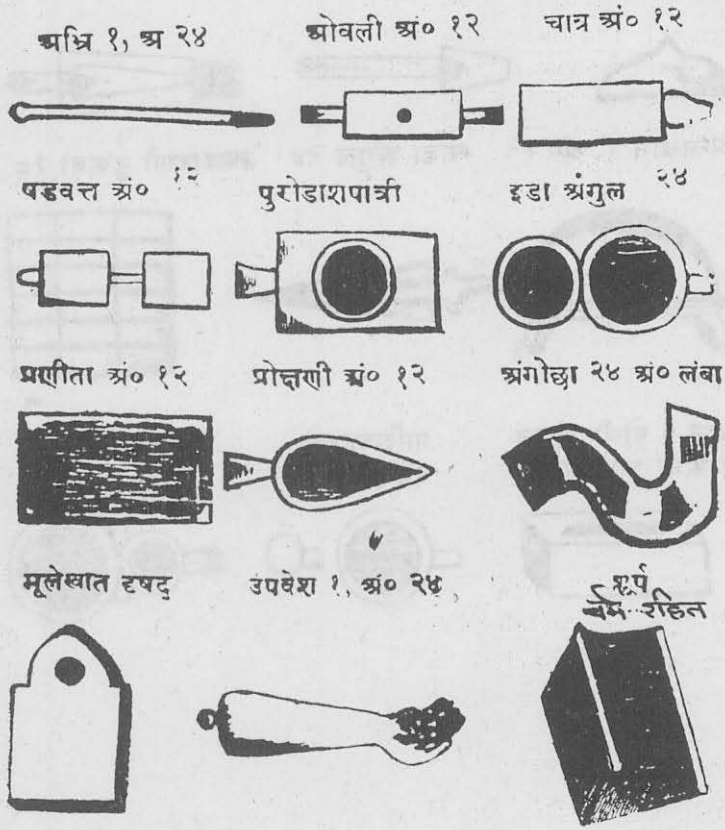

अभ्रि १, अ २४

ओवली अं० १२

चात्र अं० १२

षडवत्त अं० १२

पुरोडाशपात्री

इडा अंगुल २४

प्रणीता अं० १२

प्रोक्षणी अं० १२

अंगोछा २४ अं० लंबा

मूलेखात दृषद्

उपवेश १, अं० २५

शूर्प चर्म रहित

यज्ञ पात्र चित्र

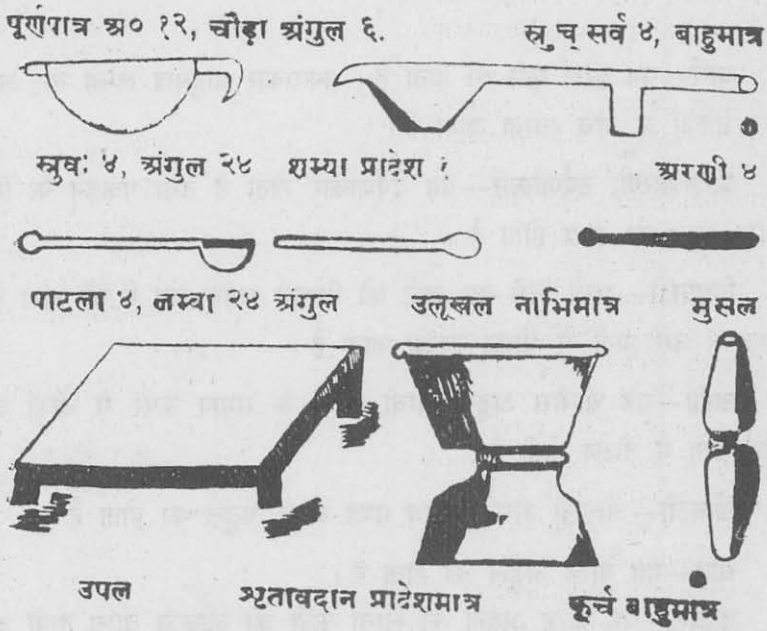
पूर्णपात्र अ० १२, चौड़ा अंगुल ६.
स्रुच् सर्व ४, बाहुमात्र
स्रुवः ४, अंगुल २४
शम्या प्रादेश ।
अरणी ४
पाटला ४, लम्बा २४ अंगुल
उलूखल नाभिमात्र
मुसल
उपल
श्रुतावदान प्रादेशमात्र
कूर्च बाहुमात्र

खाण्डा वज्र अथवा स्फ्य—यह खदिर वृक्ष का चौबीस अङ्गुल परिमाण खड्गाकृति का होता है।

मूलेखात दृशद्—शिला अठारह अङ्गुल लम्बी तथा बारह अङ्गुल चौड़ी दृढ़ प्रस्तर की, पदार्थों के पीसने के लिये होती है।

उपल—यह पीसने के लिये पत्थर की लोढ़ी होती है।

श्रुतावदान—यह प्रादेशमात्र नौ अङ्गुल लम्बा तथा दो अङ्गुल फैला हुआहोता है। पलटे के समान आकृति वाला यह पुरोडाशादि के विभाग के लिये होता है।

कूर्च—यह वरण वृक्ष का होता है। मकराकार बाहुमात्र लम्बा यह अग्नि होत्र हवणी के नीचे रक्खा जाता है।

प्राशित्रहरणो दर्पणाकार—यह दर्पणाकार होता है तथा पकड़ने के लिये चार अङ्गुल का डन्डा होता है।

पिष्टपात्री—इसमें पिसे हुए आटे को मिलाते समय पात्र में जो अंश लग जाता है उसे पानी से धोकर रक्खा जाता है।

अभ्रि—यह चौबीस अङ्गुल लम्बी, कीले के समान ऊपर से चौड़ी तथा अग्र भाग में तीक्ष्ण होती है।

ओवली—ओवली अर्थात् प्रमथ दण्ड बारह अङ्गुल का होता है।

चात्र—यह बारह अङ्गुल का होता है।

षडवत्त—यह बारह अङ्गुल का लम्बा कंघी की आकृति वाला दोनों ओर खुदा हुआ होता है।

पुरोडाश पात्री—प्रादेश मात्र अर्थात् नौ अङ्गुल लम्बी आठ अङ्गुल चौड़ी मध्य में छः अङ्गुल खुदी हुई होती है। इसमें पुरोडाश रक्खा जाता है।

इड़ा—यह वरण वृक्ष की एक हाथ अथवा चौबीस अङ्गुल लम्बी चार अङ्गुल ऊँची, मध्य में खुदी हुई होती है। पकड़ने के लिये चार अङ्गुल का हत्था होता है।

प्रणीता—यह बारह अङ्गुल लम्बा चार अङ्गुल चौड़ा तथा चार अङ्गुल गहरा खुदा हुआ जल रखने का पात्र होता है।

प्रोक्षणी—यह बारह अङ्गुल लम्बी मत्स्याकार जल सिञ्चन तथा जल ग्रहण के लिये होती है।

अंगोछा—चौबीस अङ्गुल लम्बा वस्त्र हाथ पोंछने के लिये होता है।

शूर्प—यह चर्म रहित सरकण्डे का बना होता है।

उपवेश—चौबीस अङ्गुल लम्बा आगे से मुड़ी हुई अङ्गुलियों के आकार का होता है।

आज्य स्थाली—घृत पात्र बारह अङ्गुल चौड़ा नौ अङ्गुल ऊँचा होता है।

शङ्कु—यह खैर की लकड़ी के बारह अङ्गुल लम्बे माथे पर चार अङ्गुल चौड़े तथा अग्रभाग तीखे होते हैं। यह वेदी निर्माण के समय नापने के काम आते हैं।

चरु स्थाली—पुरोडाश रखने के लिये बारह अङ्गुल चौड़ी वृत्ताकार नौ अङ्गुल ऊँची होती है।

अन्वाहार्य पात्र—चार व्यक्तियों के लिये पर्याप्त भोजनार्थ पाक हेतु पात्र। यह अन्वाहार्य पात्र है।

जुहू—यह पलाश वृक्ष का बाहुमात्र होता है। इसका अग्रभाग हथेली बराबर चौड़ा छः अङ्गुल खोदा हुआ हंस मुखाकृति के सदृश नाली से युक्त तथा पीछे का भाग दण्डाकार होता है। इससे घृताहुति दी जाती है।

उपभृत्—यह पीपल वृक्ष की बाहुमात्र लम्बी होती है। इसका आकार वा परिमाण आदि जुहू के समान होता है।

ध्रुवा—यह विकङ्कत वृक्ष की होती है। शेष जुहू के समान होता है।

अग्नि होत्रहवणी—यह विकङ्कत वृक्ष की होती है। शेष जुहू के समान होता है। इससे अग्नि होत्र किया जाता है।

स्रुवः—यह खादिर वृक्ष का होता है। अंगूठे के पर्व अर्थात् पोर आकार में खुदा हुआ अरत्नि मात्र अर्थात् बाईस अंगुल प्रमाण लम्बा गोल डन्डे वाला होता है।यह आहुति देने के काम आता है।

कपाल—मिट्टी के तबे जिन पर पुरोडाश पकाया जाता है।

योक्त्र—मूँज की तीन लड़ी बटी चार हाथ लम्बी रस्सी यजमान पत्नी के कटि प्रदेश में बांधने के काम आती है।

नेतु वा नेत्री—यह चार हाथ लम्बी गौ के बालों की तीन लड़ वाली रस्सी है। इसे उत्तरारणी में लपेटकर दोनों हाथों से अग्नि मन्थन के लिये दधि मन्थन के समान खींचते हैं।

मदन्ती पात्र—व्रीहि या जौ के पीसे हुए आटे को मिलाने के लिये उष्ण जल की आवश्यकता होती है। उसी जल के लिये यह पात्र है।

मेक्षण—यह वरण वृक्ष का अरत्नि मात्र अर्थात् बाईस अङ्गुल होता है। इससे व्रीहि वा जौ के आटे को उष्ण जल के साथ मिलाया जाता है।

फलीकरण पात्र—इसमें उलूखल से कूटे हुए व्रीहि वा जौ को शूर्प से निकाले गये तुषों को रक्खा जाता है। यह वरण वृक्ष का प्रादेश मात्र अर्थात् नौ अङ्गुल का होता है।

समीक्षण—यह पांच व तीन लड़की दर्भ की रस्सी समिधायें बाँधने के काम आती है।

इध्म समिध—पलास की एक हाथ लम्बी अठारह समिधायें। यह अग्नि प्रदीप्त करने में काम आती हैं।

परिधि—बाहु मात्र लम्बी पलास की तीन समिधायें इन्हें पूर्व दिशा को छोड़कर यज्ञ कुण्ड में तीन ओर रखते हैं।

सामिधेनी समित्—पलाश की नौ अङ्गुल की पन्द्रह समिधायें।

कौशं बर्हि—यज्ञवेदी के चारो ओर बर्हि अर्थात् नीचे बिछाने के लिये कुश।

अखण्ड कृष्णाजिनम्—बिना मारे गये मृत कृष्ण मृग का चर्म। यह धान्यादि कूटते समय उलूखल के नीचे बिछाया जाता है।

ऋत्विग्वरणार्थम्—स्वर्ण के कुण्डल तथा स्वर्ण की अंगूठी।

यजमान तथा यजमान पत्नी के धारण करने के लिये चार चार रेशमी वस्त्र।

ऋत्विग्वरण के लिये—न्यूनतम चार गायें दक्षिणा।

चौबीस दिवसीय यज्ञ हेतु उनच्चास गायें दक्षिणा।

द्वादश दिवसीय यज्ञ हेतु पच्चीस गायें दक्षिणा।

षट् दिवसीय यज्ञ हेतु त्रयोदश गायें दक्षिणा।

यज्ञ की न्यूनतम दक्षिणा आठ गायें हैं।

दक्षिणा विषयक प्रमाणाः-

अग्न्याधेय दक्षिणार्थ चतुर्विंशति पक्षे एकोनपञ्चाशत गावः, द्वादश पक्षे पञ्चविंशति गावः, षट्पक्षे त्रयोदश गावः सर्वेषु पक्षेषु आदित्येष्टौधेनवः। वरार्थं चतस्रो गावः।

दक्षिणा विषयक यजमान द्वारा मनमानी स्वैच्छिक व्यवस्था यज्ञीय आचार के सर्वथा विरूद्ध है। "श्रद्धा"नुसार दक्षिणा का अर्थ आर्थिक सम्पन्नता के अनुरूप दक्षिणा है।

इति सामान्य प्रकरणम्।

यज्ञ प्रकरणम्

निम्नलिखित क्रियायें सब संस्कारों में करनी चाहियें। जहाँ कहीं विशेष होगा वहाँ सूचित कर दिया जाएगा कि यहाँ पूर्वोक्त अमुक कर्म न करना और इतना अधिक करना यथोचित स्थल पर स्पष्ट कर दिया जायेगा।

अर्थ सहित ईश्वर स्तुति प्रार्थनोपासना स्वस्तिवाचन तथा शान्तिकरण के मन्त्रों के पाठ के पश्चात् ऋत्विग् वरणा करे।

यज्ञ में यजमान एक ही होता है।

ऋत्विग्वरण

यजमानोक्ति :—ओम् आ वसो सदने सीद।

यजमान :—आइये भगवन् पधारिये।

ऋत्विगुक्ति :—ओम सीदामि।

ऋत्विग्—आसन ग्रहण करता हूँ।

ऐसा कहकर ऋत्विज अपने लिये बिछाये आसन पर बैठे।

यजमानोक्ति—अहमद्योक्त कर्म करणाय भवन्तं वृणो।

यजमान—मैं आज अमुक कर्म कराने हेतु आपका वरण करता हूँ।

ऋत्विगुक्ति—वृतोऽस्मि।

ऋत्विग्—मैं कर्म कराने हेतु प्रस्तुत हूँ।

ऋत्विग् स्वगोत्राच्चारण पूर्वक वरण स्वीकार करे।

ऋत्विजों का लक्षण—उत्तम वैदिक विद्वान्, धर्मात्मा, जितेन्द्रिय, कर्मकाण्ड में कुशल, दानशील, याज्ञिक, लोभ रहित, परोपकारी दुर्व्यसनों से रहित, सुशील एक, दो, तीन अथवा चार का वरण करे।

यदि एक हो तो पुरोहित संज्ञक, दो हों तो ऋत्विक् पुरोहित तथा तीन हों तो ऋत्विक् पुरोहित और अध्यक्ष एवम् चार हों तो होता, अध्वर्यु, उद्गाता तथा ब्रह्मा।

होता का वेदी के पश्चिम में आसन तथा पूर्व में मुख, अध्वर्यु का वेदी के उत्तर में आसन तथा दक्षिण में मुख, उद्‌गाता का वेदी के पूर्व में आसन तथा पश्चिम में मुख तथा ब्रह्मा का वेदी के दक्षिण में आसन तथा उत्तर में मुख होना चाहिये। प्रथम संकल्पो च्चारणा कर कार्यारम्भ करे।

ओम् तत्सदद्य ब्रह्मणो द्वितीयेप्रहराद्वे सप्तमे वैवस्वत मन्वन्तरे

अष्टाविंशति तमे कलियुगे कलि प्रथम वरणे। जम्बू द्वीपे भरत खण्डे आर्यावर्त्तानतर (अमुक) देशे (इयन) मिते वैक्रमाद्वे (अमुक) आयने (अमुक) ऋतौ (अमुक) मासे (अमुक) पक्षे (अमुकायाम) तिथौ (अमुक) वासरे (अमुक) मुहूर्त्ते (अमुक) लग्ने (अमुक) जनपदे (अमुक) मण्डले (अमुक) स्थान वास्तव्यः (अमुक) कुलोत्पन्न (अमुक) गोत्रोत्पन्न (अमुक) नामाऽहम् भगवत्कृपया लोक सिद्धयर्थ (अमुक) कृत्यं करिष्ये।

एक अहोरात्र में तीस मुहूर्त्त होते हैं।

दिन के मुहूर्त्त

रुद्र, सर्प, मित्र, पित्र, वसु, आपः विश्वेदेवः, अभिजित, ब्रह्म, इन्द्र, इन्द्राग्नी, नैऋत, वरुण अयर्मा भगः।

रात्रि के मुहूर्त्त

शिव, अज चरण, अहि बुध्न्यः, पूषा, अश्विनौ, यम, अग्नि, ब्रह्म, चन्द्र, अदिति; बृहस्पति, विष्णु, सूर्य, त्वष्टा, वायु।

प्रत्येक स्थान के अक्षांश के अनुसार सूर्योदयास्त तथा लग्नोदय मान पृथक् पृथक् होता है।

लग्नों के नाम

मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु मकर, कुम्भ, मीन।

कर्म काण्ड करते समय सब के आचमन पात्र पृथक्-पृथक् होने चाहियें।

यज्ञ करने को बैठे हुए सब लोग अपने-अपने आचमन पात्र से जल लेकर निम्नलिखित मन्त्रों से तीन तीन आचमन करें अर्थात् एक-एक मन्त्र से एक-एक बार आचमन करें।

आचमन मन्त्राः

ओम् अमृतोपस्तरणामसि स्वाहा ॥ १ ॥

अर्थ—हे परमात्मन् ! आप हमारे रक्षक रूप आश्रय हैं।

ओम् अमृतापिधानमसि स्वाहा ॥ २ ॥

अर्थ—हे परमात्मन् ! आप रक्षक रूप आच्छादन हैं।

ओम् सत्यं यशः श्रीमयि श्रीः श्रयतां स्वाहा ॥ ३ ॥

(तुलना, आश्वला० गृ० सू० अ० १। क० २४४। सू० १२, २१, २२)॥

अर्थ—हे परमात्मन ! आप हमें सत्य यश तथा ऐश्वर्य सम्पन्न कीजिये।

आचमन करने के पश्चात् बायें हाथ में जल लेकर दायें हाथ से निम्नलिखित मन्त्रों से मन्त्रोक्त अंगों का स्पर्श करे।

अङ्ग स्पर्श मन्त्राः

ओम् वाङ् मऽआस्येऽस्तु ॥ १ ॥ *इस मन्त्र से मुख।*

अर्थ—हे परमात्मन् ! मेरा मुख वाणी युक्त हो ॥ १ ॥

ओम् नसोर्मे प्राणोऽस्तु ॥ २ ॥ *इस मन्त्र से नासिका के दोनों छिद्र।*

अर्थ—हे परमात्मन् ! मेरी नासिका प्राणों से युक्त हो ॥ २ ॥

ओम् अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु ॥ ३ ॥ *इस मन्त्र से दोनों नेत्र।*

अर्थ—हे परमात्मन् ! मेरे नेत्र दर्शन शक्ति युक्त हों ॥ ३ ॥

ओम् कर्णायोर्मे श्रोत्रमस्तु ॥ ४ ॥ *इस मन्त्र से दोनों कान।*

अर्थ—हे परमात्मन् ! मेरे कान श्रवण शक्ति युक्त हों ॥ ४ ॥

ओम् वाह्वोर्मे बलमस्तु ॥ ५ ॥ *इस मन्त्र से दोनों भुजायें।*

अर्थ—हे परमात्मन् ! मेरी भुजायें बलयुक्त हों ॥ ५ ॥

ओम् ऊर्वोर्मऽ ओजोऽअस्तु ॥ ६ ॥ *इस मन्त्र से दोनों जंधाऐं।*

अर्थ—हे परमात्मन् ! मेरी जंघाऐं ओज युक्त हों ॥ ६ ॥

ओम् अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तवा मे सहसन्तु ॥ ७ ॥

(आश्वाला गृ०सू०का० १। कं० ३। सू० २५)॥

बांये हाथ में जल लेकर कुशा अथवा दायें हाथ से समस्त शरीर पर मार्जन करें।

अर्थ—हे परमात्मन् ! मेरे शरीर के अरिष्ट दूर होकर मेरा शरीर समर्थ हो ॥ ७ ॥

तत्पश्चात् वेदी में समिधा चयन करें। पुनः धर्मात्मा सदाचारी ब्राह्मण क्षत्रिय वा वैश्य के घर से गार्हपत्य कुण्ड से अग्नि ला अथवा,

"ओम् भूर्भुव स्वः" ॥

(गोभिलीय, गृ०सू०प्र० १ । खं०सू० ११) ॥

अर्थ—हे सर्वरक्षक परमात्मन् ! आप सर्वाधार, सर्व दुःख विनाशक तथा सुख रूप हैं।

इस मन्त्र का उच्चारण कर घृत का दीपक जला उससे कपूर को किसी एक पात्र में रख जला छोटी छोटी लकड़ियाँ किसी पात्र में रख उन पर प्रज्ज्वलित कपूर रख अग्नि प्रदीप्त होने पर यजमान वा पुरोहित दोनों हाथों से उठा, यदि गर्म हो तो चिमटे से पकड़ कर निम्नलिखित मन्त्र का उच्चारण कर वेदी में अग्न्याधान करें।

प्रजापति ऋषिः । अग्नि वायु सूर्याः देवताः । दैवी बृहती छन्दः, निचृद् बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ।

"ओम् भू भुर्वः स्वर्द्यौरिवं भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा । तस्यास्ते पृथिवी देवयजनि पृष्ठे ऽग्नि मन्नादमन्नाद्यायादधे" ।

(य० अ० ३ । मं० ५) ॥ १ ॥

अर्थ—हे (देव यजनि) विद्वानों द्वारा सुसेव्य रूप में पूजित (पृथिवी) वेदी रूप पृथिवी (भू भुर्व स्वः) सर्वाधार सर्व दुःख विनाशक सुख स्वरूप (भून्रा द्यौः इव) अन्तरिक्षस्थ प्रकाशमय और प्रकाशित लोकों में (पृथिवि इव) सर्वाश्रय रूप (वरिम्णाः) श्रेष्ठता से विद्यमान है (तस्याः ते) उसके (पृष्ठे) ऊपर (अन्नात्) अन्नादि से युक्त हविष्य को (अन्नाद्याय) अन्नादि प्राप्त्यर्थ (अग्निम्) अग्नि को यज्ञवेदी में (आदधे) स्थापित करता हूँ।

प्रज्ज्वलित अग्नि को यज्ञवेदी में स्थापित कर उस पर छोटी-छोटी समिधाऐं तथा थोड़ा कपूर रख अगला मन्त्र पढ़ कर व्यञ्जन से अग्नि प्रदीप्त करें।

परमेष्ठी ऋषिः । अग्निर्देवताः । आर्षी त्रिष्टुप छन्दः । धैवतः स्वरः ।

ओम् उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टा पूर्त्तेसँ सृजेथा मयं च । अस्मिन्त्सधस्थे अध्यत्तुरस्मिन् विश्वेदेवा यजमानश्व सीदत ॥

(य०अ० १५ । मं० ५) ॥ १ ॥

अर्थ—(अग्ने) हे अग्नि ! (उद्बुध्यस्व) प्रज्ज्वलित हो (इष्ट) अग्निहोत्र एवम् विभिन्न यज्ञादि कों तथा (पूर्त्ते) लोकोपकारी कर्मों के लिये (प्रति जागृति) भली भांति प्रदीप्त हों (अस्मिन् सधस्थे) इस यज्ञ स्थल में उपस्थित एवम् (अधि उत्तरस्मिन्) इस स्थान से श्रेष्ठ स्थान में (विश्वे देवाः) समस्त देव अर्थात् विद्वान् (च यजमानः सीदत) यजमान सहित विराजैं ।

जब अग्नि प्रज्ज्वलित हो जाए तब चन्दन अथवा पलासादि की आठ आठ अङ्गुल की तीन समिधाओं को घृत में डुबा उसमें से एक एक निकाल निम्नलिखित एक-एक मन्त्र से एक-एक समिधा को अग्नि में चढ़ावें ।

ओम् अयं त इध्म आत्मा जातवेदस्ते नेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्द्धय, चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्म वर्चसे नान्नाद्येन समेधय स्वाहा ॥ इदमग्नये, जातवेदसे-इदन्नमम ॥

(आश्वला गृ०सू०अ० १ । कं० १० । सू० १२) ॥ १ ॥

इस मन्त्र से एक समिधा ।

अर्थ—(जातवेदः) हे सबके जन्म के कारणों को जानने वाले परमेश्वर ! **(अयं त इध्म आत्मा)** यह मेरी आत्मा आपके यज्ञ का ईंधन है इसे (इध्यस्व) दीप्ति मान करो (वर्धस्व) बढ़ाओ (च अस्मान् प्रजया) तथा हमारी प्रजा (पशुभिः) गौ आदि पशुओं (ब्रह्म वर्चस एन) वेद विद्या एवम् (नः अन्नात्) हमारे अन्न को (समेधय) भली प्रकार बढ़ाओ, (स्वाहा) हम आपका आह्वान करते हैं। यह जातवेदाग्नि के लिये हैं, यह मेरे लिये नहीं है ॥

विरूप आङ्गिरसः ऋषिः । अग्निर्देवताः । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ।

ओम् समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् । आस्मिन् हव्या जुहोतन स्वाहा ॥ इदमग्नये-इदन्नमम ॥ २ ॥

(य० अ० ३ । मं० १) । इससे और-

अर्थ—हे विद्वानों ! आप (समिधा घृतै दुबस्यत) घृत में डूबी हुई समिधा (अग्निं अतिथिम् बोधयत) अतिथि रूप अग्नि को समर्पित करो तथा (अस्मिन् हव्या जुहोतन स्वाहा) इसमें हवि की आहुति दो॥ यह अग्नि के लिए है, मेरे लिये नहीं॥

वसु श्रुतः ऋषिः। अग्निर्देवताः। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः।
सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन।
अग्नये जातवेदसे, स्वाहा॥ इदमग्नये जातवेदसे-इदन्नमम॥३॥

(य० अ० ३। मं० २)

इस मन्त्र से अर्थात् इन दोनों मन्त्रों से दूसरी समिधा।

अर्थ—हे मनुष्यों ! (सुसमिद्धाय) भली भांति प्रदीप्त (शोचिषे) पवित्र (जातवेदसे अग्नये) जातवेद अग्नि में (घृतंतीव्रं जुहोतन) भली भांति शुद्ध घृत अर्पित करो। यह जातवेदाग्नि के लिय है, मेरे लिये नहीं॥

भरद्वाज ऋषिः। अग्निर्देवताः। निचृद् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः।
तन्त्वा समिदिभरङ्गिरो घृतेन वर्द्धया मसि। बृहच्छोचायविष्ठ्य स्वाहा॥ इदमग्नयेङ्गिरसे-इदन्नमम।

(य० अ० ३। मं० ३) ४॥

इस मन्त्र से तीसरी समिधा की आहुति दें।

अर्थ—हे (अंगिरः) सुखदायक पदार्थों के विभाजक (वृहत्) महान् तेजस्वी हम लोग (तत्वा) उस आपको (घृतेन समिद्धः) घृत से भीगी समिधाओं से (शोचाय) प्रकाश के लिये (बर्द्धयामसि) प्रदीप्त करते हैं। यह आङ्गिरस अग्नि के लिये हैं मेरे लिये नहीं॥ ४॥

उपर्युक्त मन्त्रों से समिधादान करके होम का शाकल्य जो कि यथावत् विधि पूर्वक बनाया हो, स्वर्ण, चाँदी, कांसा आदि धातु के पात्र में वेदी के पास सुरक्षित रक्खे। पश्चात् पूर्वोक्त घृतादि जो कि उष्ण कर छान पूर्वोक्तसुगन्धादि पदार्थ मिलाकर पात्रों में रक्खा हो उसमें से छः मासा भर घृत वा अन्य मोहन भोगादि जो कुछ सामग्री हो, अधिक से अधिक छटांक भर की आहुति देवें। यही आहुति का प्रमाण है।

उस घृत में से चमसा कि जिसमें छः मासा ही घृत आवे ऐसा बनाया हो, भर के निम्नलिखित मन्त्र से पाँच घृताहुति दें ।

ओम् अयंत इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्द्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसे नान्नाद्येन समेधय स्वाहा ॥ इदमग्नये जातवेदसे-इदन्नमम ॥

(आश्वला० गृ० सू० अ० २ । कं० १० । सू० १२) ॥

अर्थ—पूर्ववत्

तत्पश्चात् वेदी के पूर्व दिशा आदि में अञ्जलि में जल लेकर निम्नलिखित मन्त्रों का क्रमशः पाठ करते हुए चारों ओर जल छिड़कावें—

ओम् अदितेऽनुमन्यस्व ॥ १ ॥

इससे पूर्व दिशा में उत्तर से दक्षिण की ओर।

अर्थ—(अदिते) हे अखण्ड परमात्मन् ! आप हमें यज्ञ करने के लिये (अनुमन्यस्व) आज्ञा दीजिये ।

ओम् अनुमते ऽनुमन्यस्व ॥ २ ॥

इससे पश्चिम दिशा में दक्षिण से उत्तर की ओर।

अर्थ—(अनुमते) हे सर्वप्रेरक परमात्मन् ! आप हमें यज्ञ करने के लिये (अनुमन्यस्व) प्रेरित कीजिये ।

ओम् सरस्वत्यनुमन्यस्व ॥ ३ ॥

इससे उत्तर दिशा में पश्चिम से पूर्व की ओर ।

(गोभिलीय गृ०सू० प्र० १ । खं० ३ । सू० १—३) ॥

अर्थ—(सरस्वति) हे ज्ञान प्रकाशक परमात्मन् ! आप हमें यज्ञ करने के लिये (अनुमन्यस्व) अनुमति दीजिये ।

नारायणः ऋषिः । सविता देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वर ॥ ४ ॥

ओम् देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं केतपूः भगाय । दिव्यो गंधर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पति र्वाचं नः स्वदतु ॥ ४ ॥

(य० अ० २०। मं० १) ॥

इस मन्त्र से दक्षिण दिशा में पूर्व से आरम्भ करके चारो ओर जल छिड़कावे।

अर्थ—हे (सवितः देव) सब जगत् के उत्पन्न करने वाले प्रकाश स्वरूप परमेश्वर ! (प्रसुव यज्ञं) आप यज्ञ को सम्पन्न कीजिये (प्रसुव यज्ञपतिं भगाय) मुझ यज्ञकर्त्ता को ऐश्वर्य प्राप्त्यर्थ यज्ञ में सामर्थ्य (दिव्यः गंधर्वः केतपूः) दीजिये हे वेद ज्ञान के धारण करने व रक्षा करने हारे (केतं नः पुनातु) हमारे ज्ञान को पवित्र करते हुए (वाचं नः स्वदतु) हमारी वाणी में माधुर्य प्रदान कीजिये।

इसके पश्चात् मुख्य होम के आदि और अन्त में जो आहुति दी जाती हैं उनमें प्रथम एक आहुति जो कुण्ड के उत्तर भाग में दी जाती है तथा दूसरी आहुति जो कुण्ड के दक्षिण भाग में दी जाती है उनका नाम आघारावाज्याहुति हैं, और जो आहुतियाँ यज्ञ कुण्ड के मध्य में दी जाती हैं उनको आज्यभागाहुति कहते हैं।

घृत पात्र में से स्रुवा को भर दक्षिण हाथ के अंगूठा मध्यमा तथा अनामिका से स्रुवा को पकड़ के—

आघारावाज्याहुतिः

ओम् अग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये-इदन्नमम ॥ १ ॥

इस मन्त्र से वेदी के उत्तर भाग में आहुति दें।

अर्थ—(अग्नये) प्रकाश स्वरूप परमात्मा के लिये है। यह अग्नि के लिय है-मेरे लिये नहीं।

ओम् सोमाय स्वाहा ॥ इदं सोमाय-इदन्नमम ॥ २ ॥

इस मन्त्र से वेदी के दक्षिण भाग में आहुति दें।

अर्थ—(सोमाय) आनन्ददायक परमात्मा के लिये (स्वाहा) सुहुत है। यह सोम के लिये है-मेरे लिये नहीं। (गोभिलीय गृ०सू० प्र० १। ख० ८। सू० ३४) ॥

तत्पश्चात्

आज्यभागाहुति— (कुण्ड के मध्य में दें।)

ओम् प्रजापतये स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये-इदन्नमम ॥ ३ ॥

(कात्या० श्रौत सूत्र अ० ३ । सू० १२) ॥

अर्थ—(प्रजापतये) प्रजा केरक्षक व स्वामी परमात्मा के लिये (स्वाहा) सुहुत है। यह प्रजापति के लिये है मेरे लिये नहीं।

ओम् इन्द्राय स्वाहा ॥ इद मिन्द्राय-इदन्नमम ॥ ४ ॥

(कात्या० श्रौ० सू० अ० ३ । सू० १९) ॥

अर्थ—(इन्द्राय) ऐश्वर्य दायक परमात्मा के लिये (स्वाहा) सुहुत है। यह इन्द्र के लिये है-मेरे लिये नहीं।

उपर्युक्त इन दो मन्त्रों से वेदी के मध्य में दो आहुतियाँ दें।

इसके पश्चात् सामान्य होमाहुति गर्भाधानादि प्रधान संस्कारों में अवश्य करें।

निम्नलिखित ये आहुति चौल समावर्त्तन तथा विवाह में मुख्य हैं। इनमें चार आहुति घृत की दें।

वैरवानश ऋषिः। अग्निर्देवताः। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः।

ओम् भू र्भुवः स्वः। अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषंच नः। आरे बाधस्व दुच्छुनां स्वाहा। इदमग्नये पवमानाय-इदन्नमम ॥ १ ॥

(य० अ० १९ । मं० ३८) ॥

अर्थ—(अग्न) हे प्रकाश स्वरूप परमात्मन् ! आप हमारी (आयूंषि) आयु को (पवस) पवित्र करते हुये बढ़ाइये (च ऊर्ज्जं इषं नः) तथा हमें अन्नादिक ऐश्वर्य तथा दुग्ध घृतादिक ऊर्ज्जा देने वाले पदार्थ (आ सुव) प्राप्त कराइये (दुच्छुनां) दुर्गुण दुर्व्यसन और दुःखों को (आरे बाधस्व) दूर कीजिये। आपके लिये (स्वाहा) सुहुत है। यह पवमान अग्नि के लिये है-मेरे लिये नहीं॥ १ ॥

कुत्स ऋषिः। वैश्वानरो अग्निर्देवताः। स्वरः जगती छन्दः। निषाद स्वरः।

ओम् भू र्भुवः स्वः। अग्नि र्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः। तमीमहे महागयं स्वाहा ॥ इदमग्नयेपवमानाय-इदन्नमम ॥ २ ॥

(य०अ० २६ । मं० ९) ॥

अर्थ—(अग्नि) हे प्रकाश स्वरूप परमात्मन् ! आप (ऋषिः) ज्ञान के प्रकाशक तथा (पवमानः) अत्यन्त पवित्र हैं (पाञ्चजन्यः) आप ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा शूद्रेतर सभी के (पुरोहितः) सदा से हित करने वाले अर्थात् पुरोहित हैं (महागयं) स्तुति के योग्य परमात्मन् ! हम (तंईमहे) आपसे ऐश्वर्य की याचना करते हैं, आपके (स्वाहा) लिये वह सुहुत है। यह पवमान अग्नि के लिये है-मेरे लिये नहीं॥ २॥

भरद्वाज ऋषिः। अग्निर्देवताः। भुरिक् पाद निचृद् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

ओम् भू र्भुवः स्वः। अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्य्यम्। दधद्रयिं मयि पोषं स्वाहा॥ इदमग्नये पवमानायं-इदन्नमम॥ ३॥

(य०अ० ८। मं० ३८)॥

अर्थ—(अग्ने) हे सर्वप्रकाशक परमात्मन् ! आप (अस्मे) हमारे लिये (वर्चः) उत्तम वाग्मितातथा (सुवीर्य्यम्) उत्तम वीर्यादिक बल प्रदान कीजिये तथा (स्वपा) हमारे सुख को (पवस्व) बढ़ाइये (दधत् रयिं) धनादि ऐश्वर्य देकर (मयि पोषम्) मेरा पोषण कीजिये (स्वाहा) आप सुहुत हैं॥ यह पवमान अग्नि के लिये है-मेरे लिये नहीं॥

हिरण्यगर्भः प्रजापतिः ऋषिः। क दैवी छन्दः, रव वृहती छन्दः, विराट् त्रिष्टुप छन्दः। धैवतः स्वरः॥

ओम् भू र्भुवः स्वः। प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव।
यत्कामास्ते जुहूमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् स्वाहा॥ इदं प्रजापतये-इदन्नमम॥ ५॥

(ऋ०म० १०। सू० १२१। मं० १०)

अर्थ—(प्रजापते) हे सब प्रजा के स्वामी परमात्मा ! आपसे (अन्यः) भिन्न दूसरा कोई (ता) उन (एतानि) इन (विश्वा) सब (जातानि) उत्पन्न हुए जड़ चेतनादिकों को (न) नहीं (परिबभूव) तिरस्कार करता है अर्थात् आप सर्वोपरि हैं (यत्कामाः) जिस-जिस पदार्थ की कामना वाले हम लोग (ते) आपका (जुहुम)

आश्रय लेवें और कामना करें (तत्) वह कामना (नः) हमारी सिद्ध (अस्तु) होवे जिससे (वयम्) हम लोग (रयीणाम्) धनैश्वर्यों के (पतवः) स्वामी (स्याम) होवें।

इन उपर्युक्त चार मन्त्रों से घृताहुति देकर मङ्गल कार्यों में सर्वत्र निम्नलिखित आठ मन्त्रों से अष्टाज्याहुति देवें परन्तु किस किस संस्कार में कहाँ-कहाँ देनी चाहिये उसका विशेष उल्लेख उस स्थल पर लिखेंगे।

अष्टाज्याहुति मन्त्राः \

वामदेव ऋषिः। अग्नि वरुणौ देवताः। भुरिक् पङ्क्ति छन्दः पञ्चमः स्वरः।

ओम् त्वंन्नो अग्नेवरुणस्य विद्वान् देवस्य हेळोऽवया सिसीष्ठाः।
यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वाद्वेषांसि प्रमु मुग्ध्यस्मत् स्वाहा।
इदमग्निवरुणाभ्यां-इदन्नमम ॥ १ ॥ *(ऋ० म० ४। सू० १। मं० ४)*

अर्थ—(अग्ने) हे प्रकाशमय परमात्मन् ! (त्वं) आप (विद्वान्) सर्वत्र हैं (नः वरुणास्य) हम लोगों को वरुण अर्थात् आपकी (हेळः) अवहेलना से (अवया सिसीष्ठाः) दूर रखिये, (वह्नितमः) हे अत्यन्त तेजस्विन् (यजिष्ठः) पूजनीय आप हमें (विश्वा द्वेषांसि) समस्त द्वेषादि दुर्गुणों से (प्रभु मुग्ध्यस्मत्) हमको मुक्त कर (शोशुचानः) पवित्र कीजिये।यह अग्नि तथा वरूण के लिये है, मेरे लिये नहीं।

वामदेव ऋषिः। अग्नि वरुणौ देवताः। स्वराड् पङ्क्ति छन्दः। पञ्चमः स्वरः।

ओम् स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ।
अवं यक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृळीकं सुहवो न एधि स्वाहा।
इदमग्नीवरुणाभ्याम्-इदन्नमम ॥ २ ॥ *(ऋ० मं० ४। सू० १। मं० ५)*

अर्थ—(अग्ने) हे प्रकाश स्वरूप परमात्मन् ! (सत्वंनः) वह आप हमारे (ऊती) आगत (अस्या उषसः व्युष्टौ) इस प्रभात काल के प्रकाशित समय (अवमःभव) रक्षक हों (नेदिष्ट) प्राप्त हों (वरुणं) हे वरण करने योग्य (अवयष्ठ नः) हमारे यज्ञीय व्यवधानों को दूर कर (सुहवः) यज्ञ द्वारा सुपूजित (रराणाः) दानशील (नः) हमें (वीहि) स्वीकार कर (गृडींक एधि) सुखादि ऐश्वर्य को प्राप्त

कराइये (सवाहा) यह आपके लिये सुहुत है॥ यह अग्नि तथा वरुण के लिये है-मेरे लिये नहीं॥ २॥

शुनः शेषः आर्जीगर्त्ति ऋषिः। वरुणो देवताः। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः।

ओम् इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय। त्वामवस्यु राचके स्वाहा॥ इदं वरुणाय इदन्न मम॥ ३॥

(ऋ०मं० १। सू० २५। मं० १९)॥

अर्थ—(वुरण) हे वरण करने योग्य परमात्मन्! (श्रुधी) श्रुतियों द्वारा (इमं मे) यह मेरे द्वारा (अद्या हवम्) इस समय प्रदत्त हवि (च मृडय) सुखदायक हो (त्वाम्) आपसे (अवस्युः) अपनी (आवके) रक्षा की याचना करते हैं (स्वाहा) आपके लिये सुहुत हैं। यह वरुण के लिये है-मेरे लिये नहीं॥ ३॥

शुनः शेपः आर्जी गर्त्तिः, कृत्रिमो विश्वामित्रो देवरातः ऋषिः। वरुणो देवताः। त्रिष्टुप् छन्दः धैवतः स्वरः॥ ४॥

ओम् तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः। अहेळमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्रमोषीः स्वाहा॥ इदं वरुणाय-इदन्न मम॥ ४॥

(ऋ० मं० १। सू० २४। मं० ११)

अर्थ—(वरुण) हे सर्वश्रेष्ठ परमात्मन्! आपका (ब्राह्मण) वेद द्वारा (वन्दमानः) स्तवन करता हुआ (वा) आपसे (तत्) उस अर्थात् आपको (यामि) चाहता हूँ (हविर्भि) उत्तम-उत्तम पदार्थों से युक्त हवि द्वारा (यजमानः) यजमान अर्थात् यज्ञ करने वाला (तत्) जिसकी (आशास्ते) प्राप्ति की आपसे कामना करता है, हे (उरुशंसः) स्तुति के योग्य (इह) इस उपासना यज्ञ में (अहेळमानः) हमारी उपेक्षा न करते हुए आप (बोधि) हमारी कामना को समझें तथा (नः) हमारे (आयुः) जीवन को (मा प्रमोषीः) मत घटाइए। यह वरूण के लिये है मेरे लिये नहीं॥ ४॥

ओम् ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा विततता महान्तः! तेभिर्नो अद्यसवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा॥

इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्य-इदन्न मम ॥ ५ ॥

(का० श्रौ० सू० अ० २५ । २ । ११)

अर्थ—हे (वरुणः) हे सर्वश्रेष्ठ परमात्मन् ! (ये ते) जो ये (शतं) सैकड़ों तथा (ये सहस्रं) जो हजारों प्रकार की (यज्ञियाः) यज्ञ विषयक (पाशाः) व्यवस्थायें (महान्तः) व्यापक रूप में (विततता) विद्यमान हैं (सविता उत) हे सब जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता तथा (विष्णुः) सर्वव्यापक (मरुतः) सर्व समर्थ परमात्मन् (विश्वे तेभिः) उनसब यज्ञीय व्यवस्थाओं से (नः) हमें (अद्य) आज (मुञ्चतु) यज्ञ की पूर्त्ति द्वारा छुड़ाइये (स्वाहा) आपके लिये सुहुत है ॥ यह वरूण, सविता, विष्णु, विश्वेदेव तथा मरुतादि पूजनीय के लिये है-मेरे लिये नहीं ॥ ५ ॥

ओम् अयाश्चाग्ने ऽस्यनभि शस्ति पाश्च सत्यमित्व मयासि । अया नो यज्ञं वहास्य या नो धेहिभेषजँ स्वाहा ॥ इदमग्नये अयसे-इदन्न मम ॥ ६ ॥

(पार० गृ० सू० १ । २ । ८) ॥

अर्थ—हे (अग्ने) प्रकाश स्वरूप अग्ने ! (च अयाः असि) आप सर्वत्र स्थित हैं (च) तथा (अनभि शस्ति पाः) दोष रहित प्रायश्चित् योग्य पुरुषों के रक्षक (च) तथा (त्वम्) आप (सत्यम्) सत्य (इत्) ही (अपासि) सर्वत्र स्थित हो (अया नः यज्ञम्) अपनी व्यापकता से हमारे यज्ञ को (वहासि) वहन करते हो, (अया नः) आपकी व्यापकता को हम (धेहि भेषजम्) ओषधिवत् ग्रहण करें (स्वाहा) आपके लिये सुहुत है ॥ यह व्यापक अग्नि के लिय है-मेरे लिये नहीं ॥ ६ ॥

शुनः शेप, आजीगर्त्ति, कृत्रिमो विश्वामित्रो देवरातः ऋषिः । वरुणो देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥ ७ ॥

ओम् उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं विमध्यमं श्रथाय । अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा ॥ इदं वरुणायाऽऽदित्यायाऽदितये च-इदन्न मम ॥ ७ ॥

(ऋ० मं० २ । सूक्त २४ । मं० १५)

अर्थ—हे (वरुण) सर्वश्रेष्ठ परमात्मन् ! आप (अस्मत्) हमारे (अधमम्) निम्न कोटि के (मध्यम) मध्यम कोटि के (उत) और उत्तम कोटि के (पाशम्) व्यवधान

रूपी बन्धनों को (वि श्रथाय) विशेष शिथिल कर दीजिये (अथ) और (आदित्य) हे अविनाशी परमात्मन् (तवव्रते) आपकी मर्यादा पालन रूपी व्रत में स्थित (वयं) हम (अनागस) पाप रहित होकर (अदितये) अखण्ड आनन्द से युक्त मोक्ष (स्याम्) को प्राप्त होवें (स्वाहा) इसके लिये सुहुत है। यह वरूण आदित्य तथा अदिति के लिय है-मेरे लिये नहीं ॥ ७ ॥

गोतम ऋषिः । जातवेदाग्निर्देवताः । भुरिगार्षी पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।

ओम् भवतन्नः समनसौ सचेतसावरे पसौ । मा यज्ञँ हिँ सिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेद सौ शिवौ भवत मद्य नः स्वाहा ॥ इदं जातवेदोभ्यां-इदन्न मम ॥ ८ ॥

(य० ह० ५ । मं० ३)

अर्थ—(जातवेदसः) हे सबके जन्म के कारणों के ज्ञाता परमात्मन् ! (नः) हमारे मध्य में (अरेपसः) पाप रहित (समन सौ) समान संकल्प वाले (सवेतसौ) समान बुद्धि वाले (भवतम्) हों (यज्ञम्) यज्ञ का (मा हिंसिष्टम्) लोप न करें (मा यज्ञपतिम्) यज्ञकर्त्ता को भी पीड़ित न करें, (अद्यः) आज का दिन (नः) हमारे लिये (शिवौ) कल्याण कर (भवतम्) हो (स्वाहा) इसके लिये सुहुत है ॥ यह जातवेद अग्नि के लिय है-मेरे लिये नहीं ॥ ८ ॥

इसके पश्चात् जब प्रधान होम अर्थात् जिस जिस कर्म में जितना होम करना हो करके पश्चात् पूर्णाहुति से पूर्व पूर्वोक्त चार आधारावाज्यभागाहुति घृत की देकर चार व्याहृति आहुति घृत की देवें।

व्याहृत्याहुतयः (पूर्णाहुति प्रकारण) ।

ओम् भूरग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये-इदन्न मम ॥ १ ॥

अर्थ—(भूः) सर्वाधार (अग्नये) प्रकाशस्वरूप परमात्मा के लिये (स्वाहा) सुहुत है। यह अग्नि के लिय है-मेरे लिये नहीं ॥ १ ॥

ओम भुवर्वायवे स्वाहा ॥ इदं वायवे-इदन्न मम ॥ २ ॥

अर्थ—(भुवः) सर्वदुःख नाशक (वायवे) सर्वव्यापक परमात्मा के लिये (स्वाहा) सुहुत है। यह वायु के लिये है-मेरे लिये नहीं ॥ २ ॥

ओम् स्वरादित्याय स्वाहा॥ इदमादित्याय-इदन्न मम॥ ३॥

अर्थ—(स्वः) सुखरूप (आदित्याय) अविनाशी परमेश्वर के लिय (स्वाहा) सुहुत है। यह आदित्य के लिये है-मेरे लिये नहीं॥ ३॥

ओम् भूर्भुवः स्वरग्नि वायवा दित्येभ्य स्वाहा॥ इदमग्नि वायवा दित्येभ्यः-इदन्न मम॥ ४॥ *(गोभिलीय गृ० सू० १।८।१५)॥*

अर्थ—(भूः) सर्वाधार, (भुवः) दुःखनाशक, (स्वः) सुखस्वरूप (अग्नि) ज्योतिर्मय (आदित्येभ्यः) अविनाशी परमेश्वर के लिये (स्वाहा) सुहुत है। यह अग्नि वायु तथा आदित्य के लिये है-मेरे लिये नहीं॥ ४॥

ये चार आहुति घृत की देकर स्विष्ट कृत हो माहुति जो एक ही है यह घृत, भात, स्थाली पाक अथवा मोहन भोग की देनी चाहिये।

स्विष्ट कृत आहुति

ओम् यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वान्यूनमिहाकरम्।
अग्निष्टत्स्विष्ट कृद्विद्यात्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे।
अग्नये स्विष्ट कृते सुहुत हुते सर्व प्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा॥ इदमग्नये स्विष्ट कृते-इदन्न मम॥ *(आश्वला० गृ० सू० १।१०।२२)॥*

अर्थ—हे (अग्ने) प्रकाश स्वरूप परमात्मन्! (यत् अस्य कर्मणः) मेरे इस यज्ञ रूप कर्म में (अति रीरिचं) मर्यादा से अधिक किया गया हो, अथवा (यत् वा न्यूनं इहाकरम्) मर्यादा से न्यून किया गया हो (स्विष्ट कृत् विद्यात् सर्व) मेरे द्वारा किये सब कर्म को आप कल्याण के लिये जानें (स्विष्टं करोतुमे) मेरे लिये सब हितकारक हो (स्विष्ट कृते सुहुत हुते) हे हितकारक! भले प्रकार से दी हुई आहुति को ग्रहण करने वाले (सर्व प्रायश्चित् आहुती नाम) समस्त कार्यों के प्रायश्चित के लिये (कामान् समर्द्धयित्रे) कामनाओं को पूर्ण करने वाले (नः) आप (सर्वान् कामान्) हमारी समस्त कामनाऐं (समर्द्धय) पूर्ण कीजिये (स्वाहा) आपके लिये यह सुहुत है। यह स्विष्ट अग्नि के लिये है-मेरे लिये नहीं॥

इससे एक आहुति देकर निम्नलिखित मन्त्र से घृत की एक आहुति मन्त्र को मन में बोलकर मौन रहकर दें।

ओम् प्रजापतये स्वाहा॥ इदं प्रजापतये-इदन्न मम॥

(पार० गृ० सू० १।१।३)॥

अर्थ—(प्रजापतये) यज्ञ रूप प्रजापति के लिये (स्वाहा) सुहुत है। यह प्रजापति के लिये है-मेरे लिये नहीं॥

यज्ञ रूप प्रजापति के अनन्त उपकार हैं, अतः यज्ञ रूप प्रजापति के लिये मौन आहुति है।

मौनाहुति देकर निम्नलिखित मन्त्र से पूर्णाहुति देवें। स्रुवा को घृत से भरकर—

ओम् सर्वं वै पूर्णꣳ स्वाहा।

अर्थ—(सर्वं वै) हे परमात्मन्! आपकी कृपा से समस्त यज्ञीय क्रियाऐं निश्चित रूप से (पूर्णꣳ) पूर्ण हो गई हैं (स्वाहा) आपके लिये सुहुत हैं।

इस मन्त्र से एक आहुति देवें। ऐसे ही दूसरी तथा तीसरी आहुति देवें। तत्पश्चात् पुरोहित आदि वाम देव्य गान करें। पश्चात् पुरोहित इस मन्त्र से यजमान को आशीर्वाद दे—

ओम् सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः॥ *(य० अ०)*

अर्थ—(यजमानस्य कामाः) यजमान की कामनाऐं (सत्याः) सत्य अर्थात् सफल (सन्तु) हों।

तत्पश्चात् ऋत्विजों को पुष्फल दक्षिणा देकर भोजन करावे तथा जिनको भोजन कराना हो करा ऋत्विजों को पुनः दक्षिणा देकर धन्यवादपूर्वक सादर बिदा करें। सत्पुरुष विद्वानादि को दानादि देकर भोजन करा सादर विदा करें। परमात्मा का धन्यवाद करते हुए सबको धन्यवादपूर्वक विदा कर, स्त्री पुरुष, हुत शेष घृत भात या मोहन भोगादि स्यालीपाक को प्रथम खाकर पश्चात् रुचिपूर्वक उत्तमान्न का भोजन करें।

गर्भाधानादि से संन्यास संस्कार पर्यन्त निम्नलिखित सामवेदोक्त वाम देव्य गान अवश्य करें।

वाम देव्य गान

वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवताः । गायत्री छन्दः । षड्ज स्वरः ॥
ओम् भू भुर्वः स्वः । कया नश्चित्र आ भुव दूती सदावृधः सखा ।
कया शचिष्ट यावृता ॥ १ ॥

(सा०उ०अ० १ । ख० ४ । म०, गो०गृ०सू० प्र० १ । खं० ३ । सू० २८) ॥

अर्थ—(सदावृधः) सदा उन्नति शील (चित्र) पूजनीय (सखा) सखा मित्र (शचिष्ठ यावृता) पवित्रता से युक्त (कया) किस प्रकार (नः) हमारी (ऊती) रक्षा (भुवत्) करता है ॥ १ ॥

वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवताः । गायत्री छन्दः । षड्ज स्वरः ॥
ओम् भू भुर्वः स्वः । कस्त्वा सत्यो मदानाम्मं हिष्ठो मत्सदन्धसः ।
दृढ़ा चिदारुजेवसु ॥ २ ॥ *(सा०उ०अ० १ । ख० ४ । मं० २) ॥*

अर्थ—(कः) कौन (त्वा) तेरे लिये (सत्यः) सच्चे (मदानां) सुख से (मंहिष्ठः) आनन्दित करता है, (चित आरुजे) तथा चञ्चल चित्त वाले को (दृढ़ा) निश्चित रूप से (वसु) बसाता है ॥ २ ॥

वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवताः । गायत्री छन्दः । षड्ज स्वरः ॥
ओम् भू भुर्वः स्वः । अभीषुणः सखीनामविता जरितॄणाम् ।
शतं भवास्यूतये ॥ ३ ॥ *(सा०उ०अ० १ । ख० ४ । मं ३) ॥*

अर्थ—(सखीनाम्) हे परमात्मन् आप समस्त प्राणियों के सखा रूप (जरितृणाम्) ज्ञानवृद्ध (अविता) तथा रक्षक हो (नः) हमारी (बु अभि) भली भांति (ऊतये) रक्षा (ऊतये) करो ॥ ३ ॥

महावाम देव्य गान

का ऽ ५ या । नश्चा ३ इत्रा ३ आ भुवात् । ऊ । ती सदावृधः
स । खा । औ ३ हो हा इ । के या २ ३ श चाइत्ष्ठ यौ हो
३ । हुम्मा २ । वोऽ २ तों ३ऽ५ हायि ॥ (१) ॥

का ऽ ५। स्त्वा। सत्यो ३ मा ३ दानाम्। मो। हिष्ठो मात्सा दन्धै। सा। औं ३ हो हा इ। दृढ़ा २ ३ चिद्दा रुजो हो ३। हुम्मा २। वा ऽ३सो ३ ऽ ५ हायि॥ (२) ॥

आऽ ५ भी। षु णा ३ सा ३ खी नाम्। आ। विताजरायितॄ। णाम्। औ ३ हो हा यि। श ता२ ३ म्भवा। सि यौ हो ३। हुम्मा २। ता ऽ २ यो ३ऽ५ हायि॥ (३) ॥

जो कोई संस्कार व क्रिया को देखना चाहें वे पृथक् पृथंक् मौन बैठे रहें, किसी प्रकार का वार्तालाप व हल्ला गुल्ला न करने पावें। सब लोग एकाग्रचित्त ध्यानावस्थित प्रसन्न वदन शान्त बैठे रहें। विशेष कार्यकर्त्ता और कर्म कराने वाले शान्ति, धैर्य और विचारपूर्वक क्रम सहित कर्म करें और करावें। यह सामान्य विधि सब संस्कारों में अवश्य करणीय है।

वाम देव्य गान होने के पश्चात् गृहस्थ स्त्री पुरुष कार्यकर्त्ता सद्धर्मी लोकप्रिय परोपकारी सज्जन विद्वान् वा त्यागी पक्षपात् रहित संन्यासी जो सदा विद्या की वृद्धि और सबके कल्याणार्थ वर्त्तने वाले हों उनको नमस्ते, आसन, अन्न, जल, वस्त्र पात्र तथा धनादि के दान से, उत्तम प्रकार से यथा सामर्थ्य सत्कार करें।

सब संस्कारों में मधुर-स्वर से मन्त्रोच्चारण यजमान ही करे। न शीघ्र न विलम्ब से करे, किन्तु मध्य भाग जैसा कि जिस वेद का उच्चारण है करे। यदि यजमान न पढ़ा हो तो मन्त्र तो अवश्य पढ़ लेवे। यदि कोई कार्यकर्त्ता जड़ मंदमति काला अक्षर भैंस बराबर जानता हो, तो वह शूद्र है अर्थात् शूद्र मन्त्रोच्चारण में असमर्थ हो तो पुरोहित और ऋत्विज मन्त्रोच्चारण करें और कर्म उसी मूढ़ यजमान के हाथ से करावे।

॥ इति यज्ञ प्रकरणम्॥

गर्भाधान संस्कारः

निषेकादि श्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः॥

(मनुस्मृति, अ० २। श्लोक १६)॥

अर्थ—मनुष्यों के शरीर और आत्मा उत्तम होने के लिये निषेक अर्थात् गर्भाधान से लेके श्मशानान्त अर्थात् अन्त्येष्टि मृत्यु के पश्चात् मृतक शरीर का विधिपूर्वक दाह करने पर्यन्त सोलह संस्कार होते हैं।

शरीर का आरम्भ गर्भाधान और शरीर का अन्त भष्म कर देने तक सोलह प्रकार के उत्तम संस्कार करने होते हैं। उनमें से प्रथम गर्भाधान संस्कार है।

जो "गर्भस्याऽऽधानं वीर्य स्थापनं स्थिरी करणं यस्मिन्येन कर्मणातद् गर्भाधानम्" गर्भ का धारण अर्थात् वीर्य का गर्भाशय में स्थापन करना जिस क्रिया से होता है, उसी को गर्भाधान संस्कार कहते हैं।

जैसे बीज और क्षेत्र के उत्तम होने से अन्नादि पदार्थ भी उत्तम होते हैं, तैसे उत्तम बलवान् स्त्री पुरुषों से सन्तान भी उत्तम होते हैं। इससे पूर्ण युवावस्था यथावत् ब्रह्मचर्य का पालन और विद्याभ्यास करके अर्थात् न्यून से न्यून सोलह वर्ष की कन्या और पच्चीस वर्ष का पुरुष अवश्य हो और इससे अधिक वय वाले होने से अधिक उत्तमता होती है।

क्योंकि बिना सोलहवें वर्ष के गर्भाशय में बालक के शरीर को यथावत् बढ़ने के लिये उपयुक्त अवकाश और स्त्री के शरीर में गर्भ के धारण व पोषण का सामर्थ्य भी नहीं होता, और पच्चीस वर्ष के पूर्व पुरुष का वीर्य भी उत्तम नहीं होता। इसमें यह प्रमाण है—

पञ्च विंशेततो वर्षे पुमान्नारी तु षोडशे।
समत्वागत वीर्यौ तौ जानीयात कुशलो भिषक्॥ १॥

(सु० शरीर स्थाने अ० ३५। श्लोक १३)॥

अर्थ—जितना सामर्थ्य पच्चीसवें वर्ष में पुरुष के शरीर में होता है उतना ही सामर्थ्य सोलहवें वर्ष में कन्या के शरीर में हो जाता है, इसलिये कुशल वैद्य लोग पूर्वोक्त अवस्था में दोनों को एक वीर्य अर्थात् तुल्य सामर्थ्य वाले जाने॥ १॥

ऊन षोडश वर्षायाम् प्राप्तः पञ्चविंशतिम्।
यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः स विपद्यते ॥ २ ॥

(सु० शा० स्था० अ० १० । श्लोक ५४) ॥

अर्थ—सोलह वर्ष से न्यून अवस्था की स्त्री में पच्चीस वर्ष से कम अवस्था का पुरुश यदि गर्भाधान करता है, वह गर्भ गर्भाशय में ही बिगड़ जाता है ॥ २ ॥

जातो वा न चिरं जीवेज्जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः।
तस्मादत्यन्त बालायां गर्भाधानंन कारयेत् ॥ ३ ॥

(सु० शा० स्था० अ० १० । श्लोक ५५) ॥

अर्थ—यदि सन्तान उत्पन्न हुआ भी तो अधिक नहीं जीता कदाचित् जीवे भी तो दुर्बल शरीर तथा दुर्बलेन्द्रिय होता है, इसलिये अत्यन्त बाला अर्थात् सोलह वर्ष से न्यून अवस्था वाली स्त्री में कभी गर्भाधान नहीं करना चाहिये।

शरीर की उन्नति वा अवनति की विधि जैसी वैद्यक शास्त्र में है, वैसी अन्यत्र नहीं। उसका मूल विधान आगे वेदारम्भ संस्कार में लिखा जायेगा, अर्थात् किस किस वर्ष में कौन कौन धातु किस किस प्रकार का कच्चा वा पक्का वृद्धि वा क्षय को प्राप्त होता है, आयुर्वेद में इस सबका विधान है। इसीलिये गर्भाधानादि समस्त संस्कारों के करने में आयुर्वेद का आश्रय विशेष लेना चाहिये।

आगे सुश्रुतकार ने लिखा है—

चतस्रो ऽवस्थाः शरीरस्य वृद्धि यौवनं सम्पूर्णता किञ्चित् परिहाणिश्चेति।
आषोडशाद् वृद्धि रा चतुर्विंशते यौवनं मा चत्वारिंशतः सम्पूर्णता ततः किंचित्परिहाणिश्चेति ॥ *(सु० सू० स्था० अ० ३५ । सू० ३९)*

अर्थ—शरीर की चार अवस्थाऐं हैं, वृद्धि, यौवन, पूर्णता, तथा किचित् हानि अवस्था। सोलह वर्ष से आगे मनुष्य के शरीर में सब धातुओं की वृद्धि और पच्चीसवें वर्ष से युवावस्था का आरम्भ, चालीसवें वर्ष में युवावस्था की पूर्णता अर्थात् सब धातुओं की पूर्ण पुष्टि और उससे आगे किंचित् किंचित् धातु

वीर्य की हानि होती है अर्थात् चालीसवें वर्ष सब अवयव पूर्ण हो जाते हैं, पुनः खान पान से जो धातु वीर्य उत्पन्न होता है, वह कुछ कुछ क्षीण होने लगता है।

इससे यह सिद्ध होता है कि यदि शीघ्र विवाह करना चाहैं तो कन्या सोलह वर्ष की और पुरुष पच्चीस वर्ष का अवश्य होना चाहिये। मध्यम समय कन्या का बीस वर्ष पर्यन्त और पुरुष का चालीसवां वर्ष और उत्तम समय कन्या का चौबीस वर्ष और पुरुष का अड़तालीस वर्ष पर्यन्त का है।

जो अपने कुल की उत्तमता, उत्तम सन्तान, दीर्घायु, सुशील, बुद्धि, बल, पराक्रम युक्त, विद्वान् और श्रीमान् करना चाहें, वे सोलहवें वर्ष से पूर्व कन्या और पच्चीसवें वर्ष से पूर्व पुत्र का विवाह कभी न करें। यही सब सुधार सौभाग्य और उन्नति करने वाला कर्म है कि इस अवस्थामें ब्रह्मचर्य रखके अपने सन्तानों को विद्या और सुशिक्षा ग्रहण करावें कि जिससे उत्तम सन्तान होवें।

ऋतुदान का काल।

ऋतुकालाभिगामी स्यात्स्वदार निरतस्सदा।
पर्व वर्गं व्रजैच्चैनां तदव्रतो रति काम्यया॥ १॥

(म०स्मृ० अ० ३। ४२)

मनु आदि महर्षियों ने ऋतुदान के समय का निश्चय इस प्रकार किया है कि—

अर्थ—पुरुष सदा ऋतुकाल में ही स्त्री का समागम करे, और अपनी स्त्री के बिना दूसरी स्त्री का सर्वदा त्याग रक्खे। वैसे स्त्री भी अपने विवाहित पुरुष को छोड़ के अन्य पुरुषों से सदैव पृथक् रहै। जो स्त्री व्रत अर्थात् अपनी स्त्री ही से प्रसन्न रहता है जैसे कि पतिव्रता स्त्री अपने विवाहित पुरुष को छोड़ दूसरे पुरुष का संग कभी नहीं करती वह पुरुष जब ऋतुदान देना हो तब पर्व अर्थात् जो उन ऋतुदान के सोलह दिनों में पौर्णमासी, अमावस्या, चतुर्दशी वा अष्टमी आवे उसको छोड़ देवे। इनमें स्त्री पुरुष रति क्रिया कभी न करें॥ १॥

ऋतुः स्वभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडश स्मृतः।
चतुर्भिरितरैः सार्द्धं महोभिः सद्विगर्हितैः॥ २॥

(म०स्मृ० अ० ३। श्लोक ४६)॥

अर्थ—स्त्रियों का स्वाभाविक ऋतुकाल सोलह रात्रि का है। अर्थात् रजोदर्शन के दिन से लेकर सोलहवें दिन तक ऋतु समय है। उनमें से प्रथम की चार रात्रि, अर्थात् जिस दिन रजस्वला हो उस दिन से लेकर चार दिन निन्दित हैं। प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ रात्रि में पुरुष स्त्री का स्पर्श और स्त्री पुरुष का सम्बन्ध कभी न करे, अर्थात् उस रजस्वला स्त्री के हाथ का छुआ जल भी न पिये। न वह स्त्री कुछ काम करे, किन्तु एकान्त में बैठी रहे, क्योंकि इन चार रात्रियों में समागम करना व्यर्थ और महारोग कारक है। रज अर्थात् स्त्री के शरीर से एक प्रकार का विकृत उष्ण रुधिर जैसा कि फोड़े से पीप या रुधिर निकलता है, वैसा है॥ २॥

तासा माद्याश्चतस्रस्तु निन्दितैकादशी तथा।
त्रयोदशी च शेषास्तु प्रशस्ता दश रात्रयः॥ ३॥

(मनु० अ० ३। श्लोक ४७)॥

अर्थ—जैसे प्रथम की चार रात्रि ऋतुदान देने में निन्दित हैं वैसे ग्यारहवी और तेरहवीं रात्रि भी निन्दित हैं। शेष दश रात्रियां ऋतुदान देने में उत्तम हैं॥ ३॥

दिन में ऋतुदान का निषेध होने के कारण रात्रियों की गणना की है।

युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियो ऽयुग्मासु रात्रिसु।
तस्माद्युग्मासु पुत्रार्थी संविशेदार्त्त वे स्त्रियम्॥ ४॥

(मनु० अ० ३। श्लोक ४८)॥

अर्थ—जिसको पुत्र प्राप्ति की इच्छा हो वे छठी, आठवीं, दशवीं, बारहवीं, चौदहवीं तथा सोलहवीं रात्रि ऋतुदान में उत्तम जानें परन्तु इनमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं। औरजिनको पुत्री की इच्छा हो वे पांचवीं, सातवीं, नवमी और पन्द्रहवीं ये चार रात्रि उत्तम समझें। इससे पुत्रार्थी युग्म रात्रि में ऋतुदान देवे॥ ४॥

पुमान् पुंसोऽधिके शुक्रे स्त्री भवत्यधिके स्त्रियाः ।
समे पुमान् पुंस्त्रियौ क्षीणे ऽल्पे विपर्ययः ॥ ५ ॥

(मनु० अ० ३ । श्लोक ४९) ॥

अर्थ—पुरुष का वीर्य अधिक होने से पुत्र और स्त्री का आर्त्तव अधिक होने से पुत्री तुल्य होने से नपुंसक वा बन्ध्या स्त्री तथा क्षीण और अल्प वीर्य से गर्भ का न रहना या रहकर गिर जाना होता है ॥ ५ ॥

निन्द्यास्त्वष्टासु चान्यासु स्त्रियो रात्रिषु वर्जयन् ।
ब्रह्मचार्य्येव भवति यत्र तत्राश्रमे वसन् ॥ ६ ॥

(मनु० अ० ३ । श्लोक ५०) ॥

अर्थ—पूर्वोक्त निन्दित आठ रात्रियों में जो स्त्री का संग छोड़ देता है, वह गृहाश्रम में बसता हुआ भी ब्रह्मचारी ही कहाता है ॥ ६ ॥

उपनिषिदि गर्भ लम्भनम् ॥ २ ॥

(आश्वला० गृ० सू० १ । १३ । १, कान्वशाखीय, बृ० उ० अ० ६ । ब्रा० ४, मा० श० ब्रा० कां० १४ । प्र० ७ ब्रा० ५) ॥

उपर्युक्त वचन आश्वलायन गृहय सूत्र का है। "उपनिषद् में जैसा गर्भ स्थापन का विधि लिखा है, वैसा ही करना चाहिये।" पूर्वोक्त सोलहवें वर्ष में लड़की तथा पच्चीसवें वर्ष में लड़के का विवाह करके ऋतुदान लिखा है।

अथ गर्भाधानँ स्त्रियाः पुष्पवत्या चतुरहा दूर्ध्वँ स्नात्वा विरजाया तस्मिन्नेव दिवा "आदित्य गर्भ मिति" ॥ २ ॥

(कात्या० गृ० सू० १ । १४)

यह परस्कर गृह्य सूत्र २/१३ का वचन है। ऐसा ही गोभिलीय और शौनक गृह्य सूत्रों में भी विधान है। इसके अनन्तर जब स्त्री रजस्वला होकर चौथे दिन के पश्चात् पांचवें दिन रजोदर्शन से निवृत्त हो स्नान कर उसी दिन "आदित्यं गर्भम् (य०अ० १३ । मं० ४१)" इत्यादि मन्त्रों से जैसा जिस रात्रि में गर्भ स्थापन करने की इच्छा हो, उससे पूर्व दिन में यज्ञ वेदी बना, तथा भात बना, वेदी के पश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख अथवा दक्षिण भाग में उत्तराभिमुख पत्नी को वामाङ्ग रख आनन्दपूर्वक बैठ अर्थ सहित ईश्वर स्तुति

प्रार्थनोपासना, स्वस्तिवाचन तथा शान्तिकरणके मन्त्रों का पाठ कर ऋत्विज वरण कर इष्ट कर्म हेतु संकल्पोच्चारण करें। ऋत्विज भी चारो दिशाओं में वेदी के चारो ओर निर्धारित स्थान पर बैठकर आनन्दपूर्वक यथा विधि कर्म करावें।

सुगन्धादि पदार्थों, घृत, समिधाओं द्वारा यज्ञ प्रकरण में लिखे प्रमाणे अष्टाज्याहुति पर्यन्त यज्ञ करके निम्नलिखित मन्त्रों से आहुति दें।

ओम् अग्ने प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्ति रसि ब्राह्मणस्त्वा नाथ कामउपधावामियास्याः पापी लक्ष्मी स्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा॥ इदमग्नये-इदन्न मम॥ १॥

अर्थ—(प्रायचित्ते अग्ने) हे सर्वदोष नाशक अग्ने ! (त्वम् देवानाम्) आप देवताओं के मध्य (प्रायश्चितिः असि) दोषों के नाशक तथा (ब्राह्मणः) सब कुछ जानते हैं (त्वा) आपका (नाथ कामः) ऐश्वर्य प्राप्त्यर्थ (उपधावामि) सेवन करता हूँ (या) जो (अस्याः) इस नारी के (पापी लक्ष्मीः तनूः) शारीरिक दोष हैं (तां अस्या अपजहि) इसके उन दोषों को हटा दो॥ यह अग्नि के लिये है-मेरे लिये नहीं॥ १॥

ओम् वायो प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथ काम उपधावामि यास्याः पापी लक्ष्मी स्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा॥ इदं वायवे-इदन्न मम॥ २॥

अर्थ—(प्रायश्चित्ते वायो) हे दोष नाशक वायो ! (त्वं देवानां) आप देवताओं के मध्य (प्रायश्चित्तिः असि) दोषों के नाशक हैं तथा (ब्राह्मणः) सब कुछ जानते हैं (त्वा नाथ कामः) आपका ऐश्वपर्य प्राप्त्यर्थ (उपधावामि) सेवन करता हूँ (यास्याः) इस नारी के (पापी लक्ष्मीः तनूः) जो शारीरिक दोष हैं, (तां अस्या अपजहि) इसके उन दोषों को हटा दो॥ यह वायु के लिये है-मेरे लिये नहीं॥ २॥

ओम् चन्द्र प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथ काम उपधावामि यास्याः पापी लक्ष्मी स्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा॥ इदं चन्द्राय-इदन्न मम॥ ३॥

अर्थ—(प्रायश्चित्ते चन्द्र) हे दोषनाशक चन्द्र (त्वं) आप (देवानां प्रायश्चित्ति असि) देवताओं के मध्य दोषनाशक हैं (ब्राह्मणः) तथा सब कुछ जानते हैं (त्वा) आपका (नाथकाम) ऐश्वर्य प्राप्त्यर्थ (उपधावामि) सेवन करता हूँ (यास्याः) इस नारी के (तनूः) शारीरिक (पापी लक्ष्मीः) दोष हैं (तां) उनको (अस्या अपजहि) हटा दो ॥ यह चन्द्र के लिय है-मेरे लिये नहीं ॥ ३ ॥

ओम् सूर्य प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथ काम उपधावामि यास्याः पापी लक्ष्मी स्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा ॥ इदं सूर्याय-इदन्न मम ॥ ४ ॥

अर्थ—(प्रायश्चित्ते सूर्य) हे दोषनाशक सूर्य (त्वं) आप (देवानां प्रायश्चित्ति असि) देवताओं के मध्य दोषनाशक हैं (ब्राह्मणः) तथा सब कुछ जानते हैं (त्वा) आपका (नाथकाम) ऐश्वर्य प्राप्त्यर्थ (उपधावामि) सेवन करता हूँ (यास्याः) इस नारी के (तनूः) शारीरिक (पापी लक्ष्मीः) दोष हैं (तां) उनको (अस्या अपजहि) हटा दो ॥ यह सूर्य के लिय है-मेरे लिये नहीं ॥ ४ ॥

ओम् अग्नि वायुश्चन्द्र सूर्याः प्रायश्चित्तयो यूयं देवानां प्रायश्चित्तयः स्थ ब्राह्मणो वो नाथ काम उपधावामि यास्याः पापी लक्ष्मी स्तनूस्तासा मस्या अपहत स्वाहा ॥ इदमग्नि वायुश्चन्द्र सूर्येभ्यः-इदन्न मम ॥ ५ ॥

अर्थ—(प्रायश्चित्तयः अग्नि वायुः च चन्द्र सूर्याः) हे दोषनाशक अग्नि वायु चन्द्र तथा सूर्य ! (यूयं प्रायश्चित्तयः देवानांस्थ) आप देवताओं के मध्य दोषनाशक हो, तथा (ब्राह्मणः) सब जानते हो (वः नाथकाम) आपका ऐश्वर्य प्राप्त्यर्थ (उपधावामि) सेवन करता हूँ (यास्याः) इस नारी के (पापी लक्ष्मीः तनूः) शारीरिक अशोभन जो रोग हैं (तासां अस्या) इसके उन रोगों को (अपहत) दूर कर दो ॥ यह अग्नि वायु चन्द्र तथा सूर्य के लिये है-मेरे लिये नहीं ॥ ५ ॥

उपर्युक्त इन पाँच मन्त्रों में अग्नि, वायु, चन्द्र तथा सूर्य से पृथक्-पृथक् तथा अन्तिम मन्त्र में सामूहिक रूप से स्त्री के गर्भाशयस्थ दोषों को दूर करने की प्रार्थना है ।

ओम् अग्ने प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथ काम उपधावामि यास्याः पतिघ्नी तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा॥ इदमग्नये-इदन्न मम॥ ६॥

अर्थ—(अग्ने प्रायश्चित्ते) हे दोषनाशक अग्ने ! (त्वं) आप (देवानां प्रायश्चित्तिः असि) देवताओं के मध्य दोषनाशक हैं (ब्राह्मणः) आप जानते हैं (त्वा) आपका (नाथ काम) ऐश्वर्य प्राप्त्यर्थ (उपधावामि) सेवन करता हूँ (यास्याः) इस स्त्री के (पतिघ्नी तनूः) शरीर में पति को हानि पहुँचाने वाले जो दोष हैं (तां अस्या) इसके उन दोषों को (अपजहि) दूर कर दो॥ ६॥

ओम् वायो प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथ काम उपधावामि यास्याः पतिघ्नी तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा॥ इदंवायवे-इदन्न मम॥ ७॥

अर्थ—(वायो प्रायश्चित्ते) हे दोषनाशक वायो ! (त्वं) आप (देवानां प्रायश्चित्तिः असि) देवताओं के मध्य दोषनाशक हैं (ब्राह्मणः) आप जानते हैं (त्वा) आपका (नाथ काम) ऐश्वर्य प्राप्त्यर्थ (उपधावामि) सेवन करता हूँ (यास्याः) इस स्त्री के (पतिघ्नी तनूः) शरीर में पति को हानि पहुँचाने वाले जो दोष हैं (तां अस्या) इसके उन दोषों को (अपजहि) दूर कर दो॥ ७॥

ओम् चन्द्र प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथ काम उपधावामि यास्याः पतिघ्नी तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा॥ इदंचन्द्राय-इदन्नमम॥ ८॥

अर्थ—(चन्द्र प्रायश्चित्ते) हे दोषनाशक चन्द्र ! (त्वं) आप (देवानां प्रायश्चित्तिः असि) देवताओं के मध्य दोषनाशक हैं (ब्राह्मणः) आप जानते हैं (त्वा) आपका (नाथ काम) ऐश्वर्य प्राप्त्यर्थ (उपधावामि) सेवन करता हूँ (यास्याः) इस स्त्री के (पतिघ्नी तनूः) शरीर में पति को हानि पहुँचाने वाले जो दोष हैं (तां अस्या) इसके उन दोषों को (अपजहि) दूर कर दो॥ ८॥

ओम् सूर्य प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथ काम उपधावामि यास्याः पतिघ्नी तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा॥ इदंसूर्याय-इदन्नमम॥ ९॥

अर्थ—(सूर्य प्रायश्चित्ते) हे दोषनाशक सूर्य ! (त्वं) आप (देवानां प्रायश्चित्तिः असि) देवताओं के मध्य दोषनाशक हैं (ब्राह्मणः) आप जानते हैं (त्वा) आपका (नाथ काम) ऐश्वर्य प्राप्त्यर्थ (उपधावामि) सेवन करता हूँ (यास्याः) इस स्त्री के (पतिघ्नी तनूः) शरीर में पति को हानि पहुँचाने वाले जो दोष हैं (तां अस्या) इसके उन दोषों को (अपजहि) दूर कर दो ॥ ९ ॥

ओम् अग्नि वायु चन्द्र सूर्याः प्रायश्चित्तयो यूयं देवानां प्रायश्चित्तयः स्थ ब्राह्मणो वो नाथ काम उपधावामि यास्याःपतिघ्नी तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा ॥ इदमग्नि वायु चन्द्र सूर्येभ्य-इदन्न मम ॥ १० ॥

अर्थ—(अग्नि वायु चन्द्र सूर्याः प्रायश्चित्तयः) हे दोषनाशक अग्नि वायु चन्द्र तथा सूर्य ! (यूयं देवानां प्रायश्चित्तयः स्थ) आप देवताओं के मध्य दोषनाशक हैं (ब्राह्मणः) आप जानते हैं (वः) आपका (नाथ काम) ऐश्वर्य प्राप्त्यर्थ (उपधावामि) सेवन करता हूँ (यास्या पतिघ्नी) इस स्त्री के शरीर में पति को हानि पहुँचाने वाले जो दोष हैं (तामस्या) इसके उन दोषों को (अपजहि) दूर कर दो ॥ १० ॥

उपर्युक्त पाँच मन्त्रों में स्त्री के पतिघ्नी नामक दोष को दूर करने की प्रार्थना है ।

ओम् अग्ने प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपुत्र्या तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा ॥ इदमग्नये-इदन्नमम ॥ ११ ॥

अर्थ—(अग्ने प्रायश्चित्ते) हे दोषनाशक अग्ने ! (त्वं देवानां प्रायश्चित्तः असि) आप देवताओं के मध्य दोषनाशक हैं (ब्राह्मणः) आप जानते हैं (त्वा) आपका (नाथकाम) ऐश्वर्य प्राप्त्यर्थ (उपधावामि) सेवन करता हूँ (यास्या अपुत्र्या) इस नारी के शरीर से अपुत्रवती नामक जो (तामस्या) दोष है इसके उस दोष को (अपनहि स्वाहा) दूर कर दो इसके लिये यह सुहुत है ॥ ११ ॥

ओम् वायो प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपुत्र्या तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा ॥ इदंवायवे-इदन्नमम ॥ १२ ॥

अर्थ—(वायो प्रायश्चित्ते) हे दोषनाशक वायो ! (त्वं) आप (देवानां प्रायश्चित्तिः असि) आप देवताओं के मध्य दोषनाशक हैं (ब्राह्मणः) आप जानते हैं (त्वा) आपका (नाथकाम) ऐश्वर्य प्राप्त्यर्थ (उपधावामि) सेवन करता हूँ (यास्या) इस स्त्री के (अपुत्र्या तनू) शरीर में जो अपुत्रकारक दोष है (तामस्या) इसके उस दोष को (अपजहि) दूर कर दो (स्वाहा) इसके लिये यह सुहुत है॥ १२॥

ओम् चन्द्र प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपुत्र्या तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा॥ इदंचन्द्राय-इदन्नमम॥ १३॥

अर्थ—(चन्द्र प्रायश्चित्ते) हे दोषनाशक चन्द्र ! (त्वं) आप (देवानां प्रायश्चित्तिः असि) आप देवताओं के मध्य दोषनाशक हैं (ब्राह्मणः) आप जानते हैं (त्वा) आपका (नाथकाम) ऐश्वर्य प्राप्त्यर्थ (उपधावामि) सेवन करता हूँ (यास्या) इस स्त्री के (अपुत्र्या तनू) शरीर में जो अपुत्रकारक दोष है (तामस्या) इसके उस दोष को (अपजहि) दूर कर दो (स्वाहा) इसके लिये यह सुहुत है॥ १३॥

ओम् सूर्य प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपुत्र्या तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा॥ इदंसूर्याय-इदन्नमम॥ १४॥

अर्थ—(सूर्य प्रायश्चित्ते) हे दोषनाशक सूर्य ! (त्वं) आप (देवानां प्रायश्चित्तिः असि) देवताओं के मध्यं दोषनाशक हैं (ब्राह्मणः) आप जानते हैं (त्वा) आपका (नाथकाम) ऐश्वर्य प्राप्त्यर्थ (उपधावामि) सेवन करता हूँ (यास्या) इस स्त्री के (अपुत्र्या तनू) शरीर में जो अपुत्रकारक दोष है (तामस्या) इसके उस दोष को (अपजहि) दूर कर दो (स्वाहा) इसके लिये यह सुहुत है॥ १४॥

ओम् अग्नि वायु चन्द्र सूर्याः प्रायश्चित्तयो यूयं देवानां प्रायश्चित्तयः स्थ ब्राह्मणो वो नाथकाम उपधावामि यास्या अपुत्र्यास्तनूस्तामस्या अपहत स्वाहा॥ इदं अग्नि वायु चन्द्र सूर्येभ्यः-इदन्नमम॥ १५॥

अर्थ—(अग्नि वायु चन्द्र सूर्याः प्रायश्चित्तयः) हे दोषनाशक अग्नि वायु चन्द्र तथा सूर्य ! (यूयं) आप (देवानां प्रायश्चित्तयः स्थ) देवताओं के मध्य दोषनाशक हैं (ब्राह्मणः) आप जानते हैं (वः) आपका (नाथ काम) ऐश्वर्य प्राप्त्यर्थ

(उपधावामि) सेवन करता हूँ (यास्या) इस स्त्री के (अपुत्र्याः तनूः) शरीर में जो अपुत्रकारक जो दोष है (तामस्या) इसके उस दोष को (अपहत) दूर कर दो (स्वाहा) इसके लिये यह सुहुत है ॥ ५ ॥

उपर्युक्त इन पाँच मन्त्रों में स्त्री के अपुत्रकारक दोष को दूर करने की प्रार्थना है ।

ओम् अग्ने प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपसव्या तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा ॥ इदंअग्नये-इदन्नमम ॥ १६ ॥

अर्थ—(अग्ने प्रायश्चित्ते) हे दोषनाशक अग्ने ! (त्वं) आप (देवानां प्रायश्चित्तिः असि) देवताओं के मध्य दोषनाशक हैं (ब्राह्मणः) आप जानते हैं (त्वा) आपका (नाथकाम) ऐश्वर्य प्राप्त्यर्थ (उपधावामि) सेवन करता हूँ (यास्या) इस स्त्री के (अपसव्या तनूः) शरीर से गर्भ न रहने विषयक दोष (तां अस्या) को इससे (अपजहि) हटा दो (स्वाहा) इसके लिये यह सुहुत है ॥ १६ ॥

ओम् वायो प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपसव्या तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा ॥ इदं वायवे-इदन्नमम ॥ १७ ॥

अर्थ—(वायो प्रायश्चित्ते) हे दोषनाशक वायो ! (त्वं) आप (देवानां प्रायश्चित्तिः असि) देवताओं के मध्य दोषनाशक हैं (ब्राह्मणः) आप जानते हैं (त्वा) आपका (नाथकाम) ऐश्वर्य प्राप्त्यर्थ (उपधावामि) सेवन करता हूँ (यास्या) इस स्त्री के (अपसव्या तनूः) शरीर से गर्भ न रहने विषयक दोष (तां अस्या) को इससे (अपजहि) हटा दो (स्वाहा) इसके लिये यह सुहुत है ॥ १७ ॥

ओम् चन्द्र प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपसव्या तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा ॥ इदंचन्द्राय-इदन्नमम ॥ १८ ॥

अर्थ—(चन्द्र प्रायश्चित्ते) हे दोषनाशक चन्द्र ! (त्वं) आप (देवानां प्रायश्चित्तिः असि) देवताओं के मध्य दोषनाशक हैं (ब्राह्मणः) आप जानते हैं (त्वा) आपका (नाथकाम) ऐश्वर्य प्राप्त्यर्थ (उपधावामि) सेवन करता हूँ (यास्या)

इस स्त्री के (अपसव्या तनूः) शरीर से गर्भ न रहने विषयक दोष (तां अस्या) को इससे (अपजहि) हटा दो (स्वाहा) इसके लिये यह सुहुत है॥ १८॥

ओम् सूर्य प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपसव्या तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा॥ इदंसूर्याय-इदन्नमम॥ १९॥

अर्थ—(सूर्य प्रायश्चित्ते) हे दोषनाशक सूर्य ! (त्वं) आप (देवानां प्रायश्चित्तिः असि) देवताओं के मध्य दोषनाशक हैं (ब्राह्मणः) आप जानते हैं (त्वा) आपका (नाथकाम) ऐश्वर्य प्राप्त्यर्थ (उपधावामि) सेवन करता हूँ (यास्या) इस स्त्री के (अपसव्या तनूः) शरीर से गर्भ न रहने विषयक दोष (तां अस्या) को इससे (अपजहि) हटा दो (स्वाहा) इसके लिये यह सुहुत है॥ १९॥

ओम् अग्नि वायु चन्द्र सूर्याः प्रायश्चित्तयो यूयं देवानां प्रायश्चित्तयः स्थ ब्राह्मणो वो नाथकाम उपधावामि यास्या अपसव्या तनूस्तामस्या अपहत स्वाहा॥ इदमग्नि वायु चन्द्र सूर्येभ्यः-इदन्नमम॥ २०॥

अर्थ—(अग्नि वायु चन्द्र सूर्याः प्रायश्चित्तयो) हे दोषनाशक अग्नि वायु चन्द्र तथा सूर्य ! (यूयं) आप (देवानां प्रायश्चित्तयः स्थ) देवताओं के मध्य दोषनाशक हैं (ब्राह्मणः) आप जानते हैं (वः) आपका (नाथकाम) ऐश्वर्य प्राप्त्यर्थ (उपधावामि) सेवन करता हूँ (यास्या) इस स्त्री के (अपसव्या तनूः) शरीर से गर्भ न रहने विषयक दोष (तामस्या) को इससे (अपहत) दूर कर दो (स्वाहा) इसके लिये यह सुहुत है॥ २०॥

उपर्युक्त बीस मन्त्रों में स्त्री के चार दोषों पापी लक्ष्मीः पतिघ्नी, अपुत्रा तथा अपसव्या को अग्नि वायु चन्द्र तथा सूर्य के माध्यम से दूर करने की प्रार्थना है।

(गोभिलीय गृ० सू० प्र० २। कं० ११। सू० २-६, पा० गृ० सू० कां० १। कं० ११। सू० १, २, मन्त्र ब्रा० १। ४। १—५)॥

उपर्युक्त बीस मन्त्रों से घृत की बीस आहुति देवें। आहुति देते समय वधु अपना दांया हाथ वर के दांये कंधे पर निरन्तर रक्खे रहे। ये बीस आहुति

देने के पश्चात् शेष घृत को कांसे के पात्र में ढक कर रख दें तथा वधु अपना हाथ वर के कन्धे पर से हटा ले।

इसके पश्चात् चांदी वा कांसे के पात्र में पूर्व बनाये भात को रख उसमें पुष्कल घृत दुग्ध तथा शक्कर मिला कुछ देर रख के घृत शर्करादि के भात में एक रस होने पर निम्नलिखित एक-एक मन्त्र से भात की एक-एक आहुति अग्नि में देवें और स्रुवा का शेष आगे रक्खे कांसे के जलयुक्त पात्र में छोड़ता जाय।

ओम् अग्नये पवमानाय स्वाहा॥ इदमग्नये-इदन्नमम॥ १॥

अर्थ—(अग्नये पवमानाय) पवमान अग्नि के लिये (स्वाहा) सुहुत है॥ यह पवमान अग्नि के लिये है-मेरे नहीं॥ १॥

ओम् अग्नये पावकाय स्वाहा॥ इदमग्नये पावकाय-इदन्नमम॥ २॥

अर्थ—(अग्नये पावकाय) पावकाय अग्नि के लिये (स्वाहा) सुहुत है॥ यह पावकाय अग्नि के लिये है-मेरे नहीं॥ २॥

ओम् अग्नये शुचये स्वाहा॥ इदमग्नये शुचये-इदन्नमम॥ ३॥

अर्थ—(अग्नये शुचये) शुचि अग्नि के लिये (स्वाहा) सुहुत है। यह शुचि अग्नि के लिये है-मेरे नहीं॥ ३॥

ओम् अदित्यै स्वाहा॥ इदमदित्यै-इदन्नमम॥ ४॥

(पार० गृ० सू० कां० १। कं० ११। सू० ३)॥

अर्थ—(अदित्यै) अखण्ड ईश्वर के लिये (स्वाहा) सुहुत है। यह अखण्ड ईश्वर के लिये है-मेरे नहीं। ४

ओम् प्रजापतये स्वाहा॥ इदं प्रजापतये-इदन्नमम॥ ५॥

(पा० गृ० सू० कां० १। क० ११। सू० ३)॥

अर्थ—(प्रजापतये) यज्ञ रूप प्रजापति के लिये (स्वाहा) सुहुत है। यह यज्ञरूप प्रजापति के लिये है-मेरे लिये नहीं॥ ५॥

ओम् यदस्य कर्मणो ऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम् । अग्निष्टत्स्विष्ट कृद्विद्यात्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे । अग्नये स्विष्ट कृते सुहुत हुते सर्व प्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा ॥ इदमग्नये-स्विष्ट कृते इदन्नमम ॥ ६ ॥

(आश्वला० गृ० सू० १ । १० । २२, पार० गृ० सू० १ । २ । ११)॥

उपर्युक्त छः मन्त्रों से भात की आहुति देकर निम्नलिखित आठ मन्त्रों से अष्टाज्यहुति भात तथा घृत की देवें ।

ओम् त्वन्नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेळोऽव या सिसीष्ठाः ।
यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्रभु मुग्ध्यस्मत् स्वाहा ॥
इदमग्नी वरुणाभ्याम्-इदन्नमम ॥ १ ॥

(ऋ० मं० ४ । सू० १ । मं० ४)॥

ओम् सत्वन्नो अग्नेऽवमो भवोतीनेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ ।
अव यक्ष्व नो वरुणं रराणोवीहि मृळीकं सुहवोन एधि स्वाहा॥
इदमग्नी वरुणाभ्यां-इदन्नमम ॥ २ ॥

(ऋ० म० ४ । सू० १ । मं० ५)॥

ओम् इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय ।
त्वामं वस्युराचके स्वाहा ॥ इदं वरुणाय-इदन्नमम ॥ ३ ॥

(ऋ० म० १ । सू० २४ । मं० ११)॥

ओम् तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः ।
अहेळ मानो वरुणेह बोध्यरुशंस मा न आयुः प्रमोषी स्वाहा ॥ इदं वरुणाय-इदन्नमम ॥ ४ ॥ *(ऋ० मं० १ । सू० २४ । मं० ११)॥*

ओम् ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः तेभिर्नो अद्य सवितोत विष्णु र्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा ॥ इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यः मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यः इदन्नमम ॥ ५ ॥

(का० श्रौ० सू० अ० २५ । १ । ११)॥

ओम् अयाश्चाग्नेऽस्य नभि शस्ति पाश्च सत्यमित्त्वमयासि । अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषज ँ स्वाहा ॥ इदमग्नये अयसे-इदन्नमम ॥ ६ ॥ *(पार० गृ० सू० १ । २ । ८) ॥*

ओम् उदुत्तम वरुण पाशमस्मदवाधमं विमध्यमं श्रथाय ।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा ॥ इदं वरुणाया ऽऽदित्यायाऽदितये च-इदन्नमम ॥ ७ ॥

(ऋ० मं० १ । सू० ३४ । मं० १५) ॥

ओम् भवतं नः समनसौ सचेत सावरे पसौ ।
मा यज्ञ ँ हिँ सिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः स्वाहा ॥
इदं जातवेदोभ्यां-इदन्नमम ॥ ८ ॥ *(य०अ० ८ । मं० ३) ॥*

उपर्युक्त मन्त्रों से आहुति देने के पश्चात् पूर्व बनाये मोहन भोग तथा घृत की निम्नलिखित नौ मन्त्रों से क्रमशः आहुति देवें तथा स्रुवा में शेष रहे घृत को कांस्य पात्र में रक्खे जल में निरन्तर छोड़ता जाय ।

त्वष्ठा गर्भकर्त्ता विष्णुर्वा प्राजापत्यः ऋषिः ।
गर्भार्थाशीः देवताः । १, २ अनुष्टुप्, ३ निवृद् अनुष्टुप् छन्दः ।
गान्धारः स्वरः ।
ओम् विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु ।
आ सिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते स्वाहा ॥ १ ॥

अर्थ—(विष्णुः योनिं कल्पयतु) विष्णु गर्भाशय को समर्थ बनाऐं (त्वष्टा रूपाणि पिंशतु) त्वष्टा रूप का निर्धारण करें (प्रजापतिः आसिञ्चतु) प्रजापति गर्भ का सिञ्चन करें (धाता गर्भं दधातु ते) धाता तेरे गर्भ का धारण करें (स्वाहा) इनके लिये यह सुहुत है ॥ १ ॥

ओम् गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति ।
गर्भं ते अश्विनौ देवा वाधत्ता पुष्कर स्रजा स्वाहा ॥ २ ॥

अर्थ—(गर्भं धेहि सिनीवालि) हे चन्द्र शक्ते ! 'तू' गर्भ धारण कर (गर्भं धेहि सरस्वति) हे सरस्वति ! 'तू' गर्भ धारण कर (गर्भं ते अश्विनौ) अश्विनौ

अर्थात् वृषण और योनि अथवा प्राण और अपान (देवाआधत्ताम्) दोनों पोषण करें (पुष्कर स्रजा) समान व्यापक वीर्य से (स्वाहा) इसलिये यह सुहुत है॥ २॥

ओम् हिरण्ययी अरणी यं निरमन्थतो अश्विना।
तं ते गर्भं हवामहे दशमे मासि सूतवे स्वाहा॥ ३॥

(ऋ० मं० १० । सू० १८४ । मं० १-३) ॥

अर्थ—(हिरण्ययी अरणी) तेजस्वी अरणी के तुल्य (यं निरमन्थितः अश्विना) उपस्थ और योनि जिसका मन्थन करते हैं (तं ते गर्भम् हवामहे) उसी भांति तेरे गर्भ का आह्वान करते हैं (दशमें मासि सूतवे) दशमें मास प्रसवार्थ करते हैं (स्वाहा) इसलिये यह सुहुत है॥ ३॥

शङ्ख ऋषिः। इन्द्रो देवताः। भुरिगति शक्वरी छन्दः। पञ्चमः स्वरः।
ओम् रेतो मूत्रं विजहाति योनिं प्रविश दिन्द्रियम्। गर्भो जरायुणावृतऽउल्वं जहाति जन्मना। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानँ शुक्र मन्धस ऽइन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु स्वाहा॥ ४॥

(य० अ० १९ । मं० ७६) ॥

अर्थ—(इन्द्रियम्) उपस्थेन्द्रिय (योनिं प्रविशत) योनि में प्रविष्ट होकर (रेतः विजहाति) वीर्य को छोड़ता है तथा (मूत्रम्) मूत्र से पृथक् (जरायुणा आवृतः गर्भः) जेर से आवृत गर्भ (जन्मना) जन्म के समय (उल्वम्) जेर को (जहाति) छोड़ता है (ऋतेन) ज्ञान से (अन्धसः) अन्धकारपूर्ण स्थिति को (इन्द्रिय विपानं सत्यम्) विविध प्रकार के इन्द्रिय रक्षण साधनों द्वारा (इन्द्रस्य शुक्रम्) ऐश्वर्यमय शुक्र को (इदं पयः अमृतं मधु) अमृतमय दुग्ध तुल्य माधुर्य को प्राप्त होता है (स्वाहा) इसलिये यह सुहुत है॥ ४॥

ओम् यत्ते सुसीमे हृदयं दिवि चन्द्रमसि श्रितम्।
वेदाहं तन्मां तद्विधात् पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतँ श्रृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् स्वाहा॥ ५॥

(पार० गृ० सू० कां० १ । कं० ११ । सू० ९) ॥

अर्थ—(सुसीमे) हे शोभन केशों से युक्त ! (हृदयं) तेरा हृदय (दिवि चन्द्र मसि श्रितम्) आकाशस्थ चन्द्रमा के समान आह्लाद युक्त है (तत् अहम् वेद) उसको मैं जानता हूँ (तत् मां विद्यात्) वह हृदय भी मुझे जाने, (पश्येम शरदः शतं) हम सौ वर्ष तक देखें (जीवेम शरदः शतम्) सौ वर्ष तक जीवित रहें (श्रृणुयाम शरदः शतं) सौ वर्ष तक सुनें, (प्र ब्रवाम शरदः शतं) सौ वर्ष पर्यन्त शिक्षा दें, (अदीना स्याम शरदः शतं) सौ वर्ष पर्यन्त अदीन रहें, (भूयश्च शरदः शतात्) सौ से भी अधिक वर्ष पर्यन्त रहें (स्वाहा) इसलिये यह सुहुत है ॥ ५ ॥

अथर्वा ऋषिः । गर्भ दृंहणाम् देवताः । अनुष्टुपछन्दः ।
गान्धार स्वरः ॥ ६ ॥

ओम् यथेयं पृथिवी मही भूतानां गर्भ मादधे । एवाते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे स्वाहा ॥ ६ ॥

अर्थ—हे स्त्री ! (यथा) जैसे (इयम्) यह (मही पृथिवी) महान् पृथिवी (भूतानां गर्भं आदधे) पञ्च भूतों के गर्भ को धारण करती है (एवाते अनुध्रियतां) इसके अनुरूप ही तेरा गर्भ धारण रहकर अर्थात् स्थिर रहकर (सवितवे सूतुं) ऐश्वर्य युक्त उत्पन्न हो (स्वाहा) इसलिये यह सुहुत है ॥ ६ ॥

ओम् यथेयं पृथिवी मही दाधारेमान् वनस्पतीन् ।
एवाते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे स्वाहा ॥ ७ ॥

अर्थ—(यथा इयं) जैसे यह (पृथिवी मही) महान् पृथिवी (दाधार इमान् वनस्पतीन्) इन वनस्पतियों को अपने गर्भ में धारण करती है (एवा ते ध्रियतां गर्भः) इसी भांति तेरा गर्भ (अनुसूतं सवितवे) पूर्ण ऐश्वर्य युक्त उत्पन्न हो (स्वाहा) इसलिये यह सुहुत है ॥ ७ ॥

ओम् यथेयं पृथिवी मही दाधार पर्वतान् गिरीन् ।
एवाते ध्रियतां गर्भो अनुसूतुं सवितवे स्वाहा ॥ ८ ॥

अर्थ—(यथा इयम्) जैसे यह (पृथिवी मही) महान् पृथिवी (दाधार पर्वतान् गिरीन्) पर्वतों और पहाड़ियों को धारण करती है (एवा ते ध्रियतां गर्भः) इसी भाँति धारण किया तेरा गर्भ (अनुसूतुं सवितवे) ऐश्वर्य युक्त उत्पन्न हो (स्वाहा) एतदर्थ यह सुहुत है ॥ ८ ॥

ओम् यथेयं पृथिवी मही दाधार विष्टितं जगत्।
एवाते ध्रियतां गर्भो अनुसूतुं सवितवे स्वाहा॥ ९॥

अर्थ—(यथा इयम्) जैसे (पृथिवी मही) महान् पृथिवी (दाधार विष्टितं जगत्) जगत् को धारण कर स्थित है (एवा ते ध्रियतां गर्भः) इसी भांति धारण किया हुआ तेरा गर्भ (अनुसूतुं सवितवे) ऐश्वर्यपूर्ण उत्पन्न हो (स्वाहा) एतदर्थ यह सुहुत है॥ ९॥

उपर्युक्त नौ मन्त्रों से घृत तथा मोहन भोग की आहुति देकर निम्नलिखित मन्त्रों से घृत की चार आहुति देवें।

आघारावाज्याहुती

ओम् अग्नये स्वाहा॥ इदमग्नये-इदन्नमम॥ १॥

इससे उत्तर में आहुति दें।

ओम् सोमाय स्वाहा॥ इदं सोमाय-इदन्नमम॥ २॥

इससे दक्षिण में आहुति दें।

आज्यभागाहुती

ओम् प्रजापतये स्वाहा॥ इदं प्रजापतये-इदन्नमम॥ ३॥

ओम् इन्द्राय स्वाहा॥ इदमिन्द्राय-इदन्नमम॥ ४॥

इन दो मन्त्रों से वेदी के मध्य में आहुति देनी है।

व्याहृति आहुति

ये चार आहुति घृत की देवें—

ओम् भूरग्नये स्वाहा॥ इदमग्नये-इदन्नमम॥ १॥

ओम् भुवर्वायवे स्वाहा॥ इदंवायवे-इदन्नमम॥ २॥

ओम् स्वरादित्याय स्वाहा॥ इदं आदित्याय-इदन्नमम॥ ३॥

ओम् भूर्भुवः स्वरग्नि वायवादित्येभ्य स्वाहा॥ इदमग्नि वायवादित्येभ्यः-इदन्नमम॥ ४॥ *(गोभिलीय गृ० सू० १।८।१५)॥*

तत्पश्चात् ये दो आहुतियाँ घृत की देवें।

ओम् अयास्यग्नेर्वषट् कृतं यत्कर्मणो ऽत्यरीरिचं देवा गातुविदः स्वाहा॥ इदं देवेभ्यो गातुविद्भ्यः इदन्नमम॥ १॥

(पार० गृ० सू० १।२।११)॥

अर्थ—(गातुविदः देवा) हे यज्ञ के जानने वाले विद्वानों ! (अग्नेः) अग्नि में (वषट कृतं) वषट्कार द्वारा किये हवन में (यत् कर्मणा अतिरीरिचम्) निर्दिष्ट कर्म से जो अधिक हो गया हो वह सब (अयासि) नश्वर न हो ॥ १॥

ओम् प्रजापतये स्वाहा॥ इदं प्रजापतये-इदन्नमम॥ २॥

(पा० गृ० सू० १।२।११)॥

इन कर्म और आहुतियों के पश्चात् यज्ञ प्रकरण में लिखे प्रमाणे "ओम् यदस्य कर्मणो ऽत्यरीरिचं"० (आश्वला० गृ० सू० १।१०।२२) इस मन्त्र से एक स्विष्टकृत् आहुति घृत की देवे।

इसके पश्चात् नीचे लिखे मन्त्र को मन में बोलकर "प्राजापत्याहुति" घृत की मौन रह कर देवें।

ओम् प्रजापतये स्वाहा॥ इदं प्रजापतये-इदन्नमम॥ ॥-इदन्नमम॥

(पा० गृ० सू० १।९।३)॥

इसके बाद स्रुवा को घृत से भरकर निम्नलिखित मन्त्र से तीन बार पूर्णाहुति देवें।

ओम् सर्व वै पूर्णँ स्वाहा॥

जा इन मन्त्रों से आहुति देते समय प्रत्येक आहुति के स्रुवा में शेष रहे घृत को आगे धरे हुए कांसे के जलपात्र में इकट्ठा करते जायें।उस घृत को वधु लेके स्नानघर में जाकर उस घृत का पग के नख से लेके शिर पर्यन्त सब अङ्गों पर मर्दन करके स्नान करे। तत्पश्चात् शुद्ध वस्त्र से शरीर पोंछ, शुद्ध वस्त्र धारण कर कुण्ड के समीप आवे। तब दोनों वधु वर कुण्ड की प्रदक्षिणा करके सूर्य दर्शन करते हुए निम्नलिखित मन्त्रों के पाठ पूर्वक परमेश्वर का उपस्थान करें।

विरूपो ऋषिः । अग्निर्देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।

ओम् आदित्यं गर्भं पयसा समङ्धि सहस्रस्य प्रतिमां विश्व रूपम् ।
परिवृङ्धि हरसा माभि मँ स्थाःशतायुषं कृणुहि चीयमानः ॥ १ ॥

(य० अ० १३ । मं० ४१) ॥

अर्थ—हे (सहस्रस्य प्रतिमां) हे अनन्त उपमाओं से युक्त (विश्वरूपम्) जगत् का निरूपण करने वाले (आदित्यम्) अखण्ड ईश्वर ! (गर्भं) इस गर्भ को (पयसा) दुग्धादि (समङ्ग्धि) पदार्थों से पुष्ट करो (हरसा) हानिकारक पदार्थों से (परिवृङ्ग्धिः) बचाओ (मा अभि संस्था) हमारी उपेक्षा मत करो (चीयमानः) फलते फूलते हुए इसे (शतायुषं कृणुहि) सौ वर्ष की आयु वाला करो ॥ १ ॥

सूर्यो ऋषिः । सूर्यो देवताः । आर्ची स्वराड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ।

सूर्यो नो दिवस्पातु वातो अन्तरिक्षात् । अग्नि र्नः पार्थिवेभ्यः ॥ २ ॥

(ऋ० मं० १० । सू० १५८ । मं० १) ॥

अर्थ—(सूर्यः नः) सूर्य हमारी (दिवः पातु) द्यौलोकस्थ व्यवधानों से रक्षा करे (वातः अन्तरिक्षात्) वायु अन्तरिक्षस्थ व्यवधानों से तथा (अग्निः नः पार्थिवेभ्यः) अग्नि पार्थिव व्यवधानों से हमारी रक्षा करे ॥ २ ॥

जोषा सवितर्यस्य ते हरःशतं सवाँ अर्हति ।
पाहि नो दिद्युतः पतन्त्याः ॥ ३ ॥ (ऋ० १० । १५८ । २) ॥

अर्थ—(सवितः) हे सविता ! (जोषा) हमारी रक्षा करो (यस्य त हरः) तेरा जो प्रभाव है वह (शतंसवान् अर्हति) किये हुये सैकड़ों यज्ञों से अधिक है (पतन्त्या दिद्युतः) गिरती हुई विद्युत से (नः पाहि) हमारे गर्भ की रक्षा कीजिये ॥ ३ ॥

सूर्यो ऋषिः । सूर्यो देवताः । गायत्री छन्दः । षड्ज स्वरः ।

चक्षुर्नो देवः सविता चक्षुर्न उत पर्वतः । चक्षुर्धाता दधातु नः ॥ ४ ॥

(ऋ० मं० १० । सू० १५८ । मं० ३) ॥

अर्थ—(देवः सविता) हे सविता देव ! (चक्षुः नः) हमें चक्षु प्रदान करो (चक्षुः न उत) और हमारे नेत्र (पर्वतः) पर्वत जैसी उन्नत दृष्टि वाले हो (चक्षुः धातादधातु नः) हे धाता ! हमारे चक्षु दर्शन शक्ति से युक्त हों ॥ ४ ॥

सूर्यो ऋषिः । सूर्यो देवताः । निचृद् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ।
चक्षुर्नो धेहि चक्षुषे चक्षुर्विरव्यै तनूभ्यः । संचेदं वि च पश्येम ॥ ५ ॥

(ऋ० म० १० । सू० १५८ । मं० ४) ॥

अर्थ—(चक्षुसे) चक्षु के लिये (नः) हमारे पुत्र को (चक्षुः धेहि) प्रकाश दीजिये (तनूभ्यः) हमारे पुत्र को (विरव्यै) कर्म करने के लिये (चक्षुः) चक्षु दीजिये (सं च इदम्) तथा जिससे इस जगत् (वि च पश्येम्) को विशेषतः देखे ॥ ५ ॥

सूर्यो ऋषिः । सूर्यो देवताः । विराड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ।
सुसंदृशं त्वा वयम प्रतिपश्येम सूर्य । वि पश्येम नृचक्षसः ॥ ६ ॥

(ऋ० मं १० । सू० १५८ । मं० ५) ॥

अर्थ—(सूर्य) हे सूर्य ! (सु संदृशं) भली भांति देखने वाले हम (त्वा प्रति पश्येम्) तथा हमारा गर्भ आपको देखे और (नृ चक्षसः विपश्ये स) जगत् के प्राणियों को विशेषतः देखे ॥ ६ ॥

उपर्युक्त मन्त्रों से परमेश्वर का उपस्थान करके वधू—

ओम् अमुक गोत्रा शुभदा अमुक दा (नाम्नी) अहं भो भवन्त-मभिवादयामि ॥ *(गोभि०, गृ० सू० २ । ४ । ११) ॥*

इस वाक्य में अमुक गोत्रा के स्थान पर वधू के गोत्र अथवा कुल का उच्चारण एवम् अमुकदा के स्थान पर अपने नाम के उच्चारण पूर्वक पति को वन्दन अर्थात् नमस्कार करे। तत्पश्चात् स्वपति के पिता पितामहादि और जो वहाँ अन्य माननीय पुरुष तथा पति की माता तथा अन्य कुटुम्बी और सम्बन्धियों की वृद्ध स्त्रियाँ हों, उनको भी इसी प्रकार वन्दन करे।

इस प्रमाणे वधू वर के गोत्र की हुए पश्चात् अर्थात् वधू पत्नीत्व और वर पतित्व को प्राप्त हुये पश्चात् पति पत्नी दोनों यथापूर्व शुभस्थान पर बैठकर वामदेव्य गान करें।

इसके पश्चात् पुरोहितादि ऋत्विज निम्नलिखित मन्त्र के उच्चारणपूर्वक पति पत्नी को आशीर्वाद दें।

ओम् पुमानग्निः पुमानिन्द्रः पुमान् देवो बृहस्पतिः।
पुमाꣳसं पुत्र विन्दस्वतं पुमाननु जायताम्॥

(सामवेदे, मं० ब्रा० १।४।९)॥

अर्थ—(पुमान् अग्निः) अग्नि गर्भ का पोषण कर (पुमान् इन्द्रः) इन्द्र गर्भ का पोषण करे, (पुमान् देवः बृहस्पतिः) बृहस्पति देव गर्भ का पोषण करें (पुमां सं पुत्र विन्दस्व) सुपुष्ट पुत्र प्राप्त होवे (पुमाननु जायताम्) वह सुपुष्ट होकर उत्पन्न हो।

पति पुरोहितादि ऋत्विजों को दक्षिणा देवे। सदाचारी दानशील परोपकारी वैदिक धर्मी विद्वानों तथा त्यागी तपस्वी संन्यासियों को अन्न वस्त्र पात्र धन सुवर्ण तथा रत्नादि दान देकर सत्कार करे। इसके पश्चात् पुरोहितादि विद्वानों तथा संन्यासियों को भोजन कराकर, अन्य जनों जिनको भोजन कराना हो करावे। पुरोहितादि विद्वानों को पुनः दक्षिणा देकर सादर धन्यवाद पूर्वक सब को बिदा करे। तत्पश्चात् पति पत्नी बुद्धि और बलवर्द्धक ओषधियुक्त भोजन करें।

रात्रि में नियत समय पर जब दोनों का शरीर आरोग्य और अत्यन्त प्रसन्न तथा दोनों में अत्यन्त प्रेम बढ़ा हो, उस समय गर्भाधान क्रिया करनी।

गर्भाधान क्रिया का समय प्रहर (तीन घण्टे) रात्रि गये पश्चात् प्रहर रात्रि रहने तक है। जब वीर्य गर्भाशय में जाने का समय आवे तब दोनों स्थिर शरीर, प्रसन्न वदन मुख के सन्मुख मुख, नासिका के सन्मुख नासिकादि, सब शरीर सीधा रक्खे। पुरुष वीर्य का प्रक्षेप करे। जब वीर्य स्त्री के शरीर को प्राप्त हो तब वह उस समय अपना पायु मूलेन्द्रिय और योनि को ऊपर संकोच करते हुए वीर्य को आकर्षण पूर्वक गर्भाशय में स्थिर करे।

पश्चात् थोड़ा ठहर कर स्नान करें। यदि शीतकाल हो तो न करे। प्रथम से केशर कस्तूरी जायफल जावित्री तथा छोटी इलायची का बारीक चूर्ण डाल गर्म कर रक्खे हुए शीतल दुग्ध का यथेष्ट पान करके मुखादि स्वच्छ कर दोनों पृथक्-पृथक् शयन करें। यदि ऐसा दृढ़ निश्चय कि गर्भ स्थिर हो गया तो

उसके दूसरे दिन और जो गर्भ रहने का दृढ़ निश्चय न हो तो एक माह के पश्चात् रजस्वला होने के समय स्त्री रजस्वला न हो तो निश्चित जानना कि गर्भ स्थित हो गया है। अर्थात् दूसरे दिन वा दूसरे मास के प्रारम्भ में यज्ञ वेदी बना यज्ञ वेदी के पश्चिम में पूर्वाभिमुख पत्नी सहित पत्नी को बाईं ओर रखते हुए आनन्द पूर्वक आसन पर स्थित होकर अर्थ सहित ईश्वर स्तुति प्रार्थनोपासना, स्वस्तिवाचन तथा शान्तिकरण के मन्त्रों का पाठकर ऋत्विज वरण करें। सङ्कल्पोच्चारण पूर्वक आचमन तथा अङ्ग स्पर्श कर वेदी में अग्न्याधान करे। यज्ञ प्रकरण में लिखे प्रमाणे आघारावाज्यभागाहुति पर्यन्त हवन कर निम्नलिखित मन्त्रो से आहुति देवें।

सप्त बध्निरात्रेय ऋषिः। अश्विनौ देवताः। निचृद् अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः।

ओम् यथा वातः पुष्करिणी समिङ्गयति सर्वतः।
एवा ते गर्भ एजतु निरैतु दशमास्यः स्वाहा॥ १॥

अर्थ—हे वधू ! (यथा वातः) जिस प्रकार वायु (पुष्करिणी) जलाशय में (सर्वतः समिङ्गयति) जल को सब ओर चलाता है (एवा ते) इसी प्रकार तेरा (गर्भ एजतु) गर्भ गतिशील रहता हुआ (निरैतु दशमास्य) दश मास का होकर बाहर आवे (स्वाहा) एतदर्थ यह सुहुत है॥ १॥

सप्तवध्निरात्रेय ऋषिः। अश्विनौ देवताः। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः।

ओम् यथा वातो यथा वनं यथा समुद्र एजति।
एवा त्वं दशमास्य सहावेहि जरायुणा स्वाहा॥ २॥

अर्थ—(यथा वातः) जैसे वायु चलता है (यथा वनं) जैसे वायु वन को गतिशील करता है (यथा) जैसे (समुद्र एजीत) समुद्र को तरङ्गित करता है (एवा) इसी भांति दशमास्य में परिपक्व होने वाले गर्भ ! (त्वं) तू (जरायुणा सह) जेर सहित (अव एहि) नीचे आ अर्थात् उत्पन्न हो (स्वाहा) इसके लिये सुहुत है॥ २॥

सप्त बध्निरात्रेय ऋषिः। अश्विनौ देवताः। निचृदनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः।

ओम् दशमासाञ्छशयानः कुमारो अधि मातरि ।
निरैतु जीवो अक्षतो जीवो जीवन्त्या अधि स्वाहा ॥ ३ ॥

(ऋ० मं० ५ । सू० ७८ । मं० ७, ८, ९) ॥

अर्थ—(अधिमातरि) माता के गर्भ में (दशमाशान्) दश मास तक (शशयानः) शयन अवस्था में रह कर (मुमारः) कुमार (अक्षतः) सर्वाङ्गपूर्ण (जीवः) जीवित (जीवन्त्या अधि) जीवित माता के गर्भ से (निरैतु) उत्पन्न हो (स्वाहा) इसलिये यह सुहुत है ॥ ३ ॥

अत्रि ऋषिः । दम्पती देवताः । उ भुरिक् साम्न्युष्णिक छन्दः, क प्राजापत्यानुष्टुप छन्दः, र भुरिगासुर्य्युष्णिक छन्दः । उ, र, ऋषभः स्वरः, क गान्धार स्वरः ।

ओम् एजतु दशमास्यो गर्भो जरायुणा सह ।
यथायं वायु रेजति यथा समुद्र एजति ।
एवायं दशमास्यो अस्रज्जरायुणा सह स्वाहा ॥ १ ॥

अर्थ—(दश मास्यः) दश मास तक (जरायुणा सह) जरायु सहित (गर्भः) गर्भ (एजतु) गतिशील रहे (यथा अयं वायुः एजति) जैसे यह वायु गतिशील रहता है (यथा समुद्र एजति) जैसे समुद्र गतिशील रहता है (यथा अयं) इसी भांति यह गर्भ (दश मास्यः) दश मास का होकर (जरायुणा सह) जरायु सहित (अस्रत) उत्पन्न हो (स्वाहा) इसलिये यह सुहुत है ॥ १ ॥

अत्रि ऋषिः । दम्पती देवताः । भुरिगार्ष्य अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ।

ओम् यस्यै ते यज्ञियो गर्भो यस्यै योनिर्हिरण्ययी ।
अङ्गान्यहुता यस्य तं मात्रा समजीगमँ स्वाहा ॥ २ ॥

(य० अ० ८ । मं० २८, २९) ॥

अर्थ—हे वधू ! (यस्यै ते गर्भः यज्ञियः) तेरा जो गर्भ है वह पूजनीय है (यस्यै योनिः हिरण्ययी) तेरी जो योनि है वह तेजस्वी है (अङ्गानि अहुता) अङ्ग सीधे हैं (यस्य) जिसके (तं मात्रा) वह उत्पन्न होकर माता के (सम जीगमम्) साथ मेल रक्खे (स्वाहा) इसके लिये यह सुहुत है ॥ २ ॥

ओम् पुमाꣳसौ मित्रा वरुणौ पुमाꣳसावश्विनावुभौ।
पुमानग्निश्च वायुश्च पुमान् गर्भ स्तवोदरे स्वाहा॥ १॥

अर्थ—(पुमांसौ मित्रा वरुणाः) मित्र और वरुण पोषक हैं (पुमांसौ अश्विनौ उभौ) दोनों अश्विनी कुमार पोषक हैं तथा (पुमान् अग्निः च वायु च) अग्नि और वायु भी पोषक हैं (तव उदरे गर्भः उदरे) तेरा उदरस्थ गर्भ भी (पुमान्) सुपुष्ट हो (स्वाहा) इसलिये यह सुहुत है॥ १॥

ओम् पुमानग्निः पुमानिन्द्रः पुमान्देवो बृहस्पतिः।
पुमाꣳसं पुत्रं विन्दस्वतं पुमाननु जायतां स्वाहा॥ २॥

(सामवेदे, मं० ब्रा० १। ४। ८, ९)॥

अर्थ—(पुमान् अग्निः) अग्नि सुपुष्ट है (पुमान् इन्द्रः) इन्द्र सुपुष्ट है (पुमान् देवः बृहस्पतिः) बृहस्पति देव सुपुष्ट हैं (पुमां सं पुत्र विन्दस्व) तू भी सुपुष्ट पुत्र प्राप्त कर (तं पुमान् अनु जायतां) उनके भी सुपुष्ट पुत्र उत्पन्न हों (स्वाहा) इसलिये यह सुहुत है॥ २॥

उपर्युक्त मन्त्रों से आहुति देकर यज्ञ प्रकरण में लिखे प्रमाणे "ओम् भूर्भुवः स्वः। अग्न आयुंषि" मन्त्रों से चार घृताहुति देकर "ओम् त्वन्नो अग्ने" मन्त्रों से अष्टाज्याहुति देवें। तत्पश्चात् चार आघारा वाज्यभागाहुति घृत की देकर घृत की चार व्याहृति आहुति देवें। घृत अथवा स्थालीपाक की स्विष्टकृत् आहुति देकर मौन रहकर प्राजापत्याहुति देवें, तत्पश्चात् पूर्णाहुति देवें।

इसके बाद परमेश्वर का धन्यवाद कर उपस्थित जनों का धन्यवाद करते हुये नमस्ते कहकर सबका अभिवादन कर पत्नी सहित यथा पूर्व स्थान पर आनन्दपूर्वक बैठकर वाम देव्य करे। पुरोहितादि ऋत्विज निम्नलिखित मन्त्र के उच्चारण पूर्वक आशीर्वाद दं।

ओम् पुमानग्निः पुमानिन्द्रः पुमान्देवो बृहस्पति।
पुमाꣳसं पुत्रं विन्दस्वतं पुमाननु जायतां॥

(सामवेदे, मं०ब्रा०, १। ४। ९)॥

पुरोहितादि ऋत्विजों को दक्षिणा दें तथा त्यागी तपस्वी परोपकारी सुशील वैदिक विद्वानों तथा संन्यासियों को यथा सामर्थ्य अन्न वस्त्र पात्र तथा धनादि

दान देकर उनका सत्कार करें। पुरोहितादि विद्वानों को प्रथम भोजन करा दक्षिणा देवें। अन्य जिनको भोजन कराना हो करा कर सबको सादर बिदा करें। तत्पश्चात् पति पत्नी दोनों सुपुष्ट ओषधियुक्त भोजन करें।

गर्भवती स्त्री के भोजन वस्त्रादि की सुखदायक व्यवस्था करें। मादक पदार्थ, दूषित अन्नादि, रेचक हरीतकी आदि क्षार, अतिलवणादि अधिक खटाई, रुक्ष चने आदि तीक्ष्ण लाल मिर्चादि गर्भवती स्त्री कभी भी सेवन न करें किन्तु घृत, दुग्ध, मिष्ट सोमलता अर्थात् गिलोय आदि ओषधि चावल गेहूँ, उर्द, मूँग, अरहर, मीठा दही आदि पदार्थ तथा पुष्टिकारक शाकादि का सेवन करें। ऋतु के अनुकूल मसाले, गर्मी में ठन्डे अर्थात् सफेद इलायची आदि, शरद् ऋतु में केशर कस्तूरी आदि डालकर सेवन करें। सदा युक्ताहार बिहार सदा किया करें। दूध में सोंठ और ब्राह्मी औषधि का सेवन गर्भवती स्त्री विशेष किया करें, जिससे सन्तान सुन्दर बुद्धिमान रोग रहित तथा उत्तम गुण कर्म स्वभाव वाली हो।

उत्तम सन्तान उत्पन्न करने में पति पत्नी का यथोचित आहार मुख्य हेतु है। इसलिये पति पत्नी अपने शरीर तथा आत्मा की पुष्टि के लिये बल और बुद्धि वर्द्धक सर्वौषधि का सेवन करें।

दो खण्ड आंवा हल्दी, हल्दी, श्वेत चन्दन का चूर्ण, मुरा, कुष्ट, जटामांसी, मोर बेल शिलाजित, कपूर, मुस्ता तथा नागरमोथा, इन सब औषधियों को सम भाग लेकर बारीक चूर्ण करके गूलर के काष्ठ पात्र में गाय के दूध के साथ मिला, दूध को गर्म कर गूलर के काष्ठ पात्र में दही जमा, गूलर की लकड़ी की मन्थनी से मन्थन कर कर मक्खन निकाल उसको गर्म कर घृत बना उसमें सुगन्धित द्रव्य केशर कस्तूरी छोटी इलायची, जावित्री का बारीक चूर्ण मिलाकर अर्थात् एक सेर दूध में एक छटांक भर पूर्वोक्त सर्वौषधि मिला पकाकर दही जमा मक्खन निकाल कर घी बना पश्चात् एक सेर घी में एक रत्ती कस्तूरी तथा एक माशा केशर और जायफल आदि का बारीक चूर्ण मिला कर घृत से गर्भाधान विषयक यज्ञ करें। यज्ञ से शेष रहे घृत को पति पत्नी दोनों खीर

अथवा भात के साथ मिला के यथा रुचि भोजन करें तथा रात्रि में गर्भाधान करें।

इस भांति गर्भाधान करने से सुशील विद्वान्, दीर्घायु, तेजस्वी स्वस्थ और निरोग पुत्र उत्पन्न होवे। यदि कन्या की इच्छा हो तो जल में चावल पका पूर्वोक्त प्रकार घृत गूलर के काष्ठ पात्र में जमाए हुए दही के साथ भोजन करने से उत्तम गुण युक्त कन्या भी होवे।

"आहार शुद्धौ सत्त्व शुद्धिः सत्त्व शुद्धौ ध्रुवा स्मृति ।।"

(छान्दाग्योपनिषद् प्रपा० ७ । खं० २६ । प्रवा० २) ॥

शुद्ध आहार जो कि मद्य मांस रहित घी दूध आदि चावल गेहूँ आदि के करने से अन्तःकरण की शुद्धि बल, पुरुषार्थ आरोग्य और बुद्धि की प्राप्ति होती है। इसलिये पूर्ण युवावस्था में विवाह कर पूर्वोक्त प्रकार विधि कर प्रेमपूर्वक गर्भाधान करें तो सन्तान और कुल नित्य प्रति उत्कृष्टता को प्राप्त होते जायें।

जब रजस्वला होने के समय में बारह तेरह दिन शेष रहें तब शुक्ल पक्ष में बारह दिन तक पूर्वोक्त घृत खीर में मिलाकर इसी खीर का पति पत्नी दोनों भोजन करके बारह दिन का व्रत भी करें और मिताहारी होकर ऋतु समय में पूर्वोक्त रीति से गर्भाधान क्रिया करें तो अत्युत्तम सन्तान होवे। जैसे सब पदार्थों को उत्कृष्ट करने की विद्या है वैसे सन्तान को उत्कृष्ट करने की यही विद्या है। इस पर मनुष्यों को अनिवार्य रूप से विशेष ध्यान देना चाहिये, क्योंकि इसके न होने से कुल की हानि, नीचता और होने से कुल की वृद्धि और उत्तमता अवश्य होती है।

यदि दो ऋतुकाल व्यर्थ जायें तो तीसरे मास ऋतुकाल का समय जब आवे तब पुण्य नक्षत्र वाले दिन ऋतु स्नान से निवृत होकर प्रथम दिन प्रातःकाल प्रथम प्रसूता गाय का दही दो मासा, यव के दानों को सेक के पीस के दो मासा लेके, इन दोनों को एकत्र कर पत्नी के हाथ में देकर पति पत्नी से पूछे—"किं पिवसि" (आश्वला० गृ० सू० १ । १३ । ३) इस प्रकार तीन बार पूछे और स्त्री भी अपने पति को "पुंसवनम्" इस वाक्य को तीन बार बोलकर उत्तर देवे और उसका प्राशन करे। इसी रीति से पुनः पुनः तीन बार विधि

करना। तत्पश्चात् शङ्खाहूली वा भटकटाई औषधि को जल में महीन पीस के उसका रस कपड़े में छानकर पति, पत्नी के दाहिने नाक में निम्नलिखित मन्त्रोच्चारण करते हुये सिञ्चन करे—

ओम् इयमोषधी त्रायमाणा सहमाना सरस्वती।
अस्या अहं वृहत्याः पुत्रः पितुरिव नाम जग्रभम्॥

(पार० गृ० सू० का० १। कं० १३१)॥

अर्थ—(इयम् ओषधी) ये औषधि (त्रायमाणः) रक्षा करने वाली (सहमाना सरस्वती) गर्भधारक तथा ज्ञान वर्द्धक है (अस्या अहं वृहत्या) मैं इस महान् औषधि को (पितुः इव) पिता के समान (पुत्रः) पुत्र प्राप्ति के लिये (जग्रभम्) ग्रहण करता हूँ।

इस मन्त्र से जगन्नियन्ता परमात्मा की प्रार्थना करके यथोक्त ऋतुदान विधि करें।

॥ इति गर्भाधान प्रकरणम्॥

पुंसवन संस्कारः

गर्भ स्थिति का ज्ञान होने पर दूसरे अथवा तीसरे मास में पुंसवन संस्कार करना चाहिये जिससे पुरुषत्व अर्थात् वीर्य की वृद्धि होवे। सन्तान के जन्म होने के दो माह पश्चात् तक पुरुष ब्रह्मचारी रहकर स्वप्न में भी वीर्य को नष्ट न होने देवे। भोजन वस्त्र जागरणादि व्यवहार इस प्रकार करे जिससे वीर्य स्थिर रहे और दूसरी सन्तान भी उत्तम होवे। इस विषय में प्रमाण—

पुमाꣳसो मित्रा वरुणौ पुमाꣳसावश्विनावुभौ।
पुमानग्निश्च वायुश्च पुमान् गर्भस्तवोदरे॥ १॥
पुमानग्निः पुमानिद्रः पुमान् देवो बृहस्पतिः।
पुमाꣳसं पुत्र विन्दस्व तं पुमाननु जायताम्॥ (गोभिलीय गृ० सू० प्र० २। खं० ६ सू० ३, ११) (सामवेदे, मं० ब्रा० १। ४। ८, ९) ॥

प्रजापतिर्ऋषिः। रेतो देवताः। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः।
शमीमश्वत्थ आरूढस्तत्र पुंसवनं कृतम्।
तद्वै पुत्रस्य वेदनं तत्स्त्रीष्वा भरामसि॥ १॥

(अथ० का० ६। सू० ११। मं० १)॥

अर्थ—(शमीम् अश्वथे आरूढ) शमी वृक्ष पर स्थित पीपल (तत्र पुंसवनं कृतम्) वहाँ पोषक है (तत् वै पुत्रस्य वेदनम्) उसे ही निश्चयपूर्वक पुत्र कारक जानकर (स्त्रीषु आभारामसि) गर्भवती स्त्री को दे॥ १॥

प्रजापतिर्ऋषिः। रेतो देवताः। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः।
पुंसि वै रेतो भवति तत्स्त्रियामनु षिच्यते।
तद्वै पुत्रस्य वेदनं तत्प्रजापति ऽब्रवीत॥ २॥

(अथ० कां० ६। सू० ११। मं० २)॥

अर्थ—(पुंसि वै रेतः) पुरुष में ही वीर्य होता है (तत् स्त्रियाम् अनुषिच्यते) उस वीर्य का ही स्त्रियों में अनुषेचन किया जाता है (तत् वै पुत्रस्य वेदनं) उसे ही पुत्रकारक जानो (तत् प्रजापतिः अब्रवीत) ऐसा प्रजापति ने कहा है॥ २॥

प्रजापतिर्ऋषिः। पत्नी देवताः। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः।
प्रजापतिरनुमतिः सिनीवाल्यची क्लृपत्।
स्त्रैषूयमन्यत्रदधत्पुमांस मुदध द्इह॥ ३॥

(अथ० कां० ९। सूं० ११। मं० ३)॥

अर्थ—(प्रजापतिः) प्रजापति (अनुमति) पौर्णमासी (सिनीवाली) तथा अमावस्या की (अचीक्लृपत्) रचना करता है (स्त्रीषूयम्) स्त्री के प्रसव सम्बन्धी निमित्त को (अन्यत्र) अन्यत्र (दधत्) रखता है (उत् पुमांसं दधात् इह) और पुरुष को इसी भांति अन्यत्र रखता है।

इन उपर्युक्त मन्त्रों का आशय यही है कि पुरुष को वीर्य सम्पन्न होना अत्यावश्यक है।

इस विषय में आश्वलायन गृह्य सूत्र का प्रमाण—

अथास्यै मण्डलागार च्छायां दक्षिणस्यां नासिकाया मजीता ओषधीं नस्यं करोति॥ १॥

अर्थ—(अथ आस्यै) गर्भवती स्त्री को (मण्डलागार च्छायाम्) घर में आच्छादित स्थान में (दक्षिणास्यां नासिकायां) नासिका के दाहिने छिद्र में (अजीताम्) नवीन पल्लावित (ओषधीं नस्यं करोति) ओषधि को सुंघाता है॥ १॥

प्रजावज्जीव पुत्राभ्यां हैके॥ २॥

(आश्वला० गृ० सू० अ० १। खं० १३ सू० ५६)॥

अर्थ—(प्रजावत् जीव) प्रजावान् सूक्त "आते गर्भ" तथा जीवसूक्त "अग्निरैतु" इत्यादि मन्त्रों के उच्चारण पूर्वक नाक के दाहिने छिद्र में ओषधि सुंघावे:

गर्भ के दूसरे या तीसरे मास वट वृक्ष की नवीन जटाऐं अथवा नवीन कोपलैं लेकर गर्भवती स्त्री की नासिका के दाहिने छिद्र में सुंघावे तथा गिलोय याब्राह्मी औषधि खिलावें। ऐसा ही पारस्कर गृह्य सूत्र का प्रमाण है।

अथ पुँसवनम्। पुरा स्यन्दत इति मासे द्वितीय तृतीये वा॥ १॥

(पार० गृ० सू० का० १। कं १४। सू० १, २)॥

अर्थ—(अथ पुंसवनम्) अब पुंसवन को कहते हैं (पुरास्यन्दता इति मासे द्वितीये तृतीये वा) दूसरे या तीसरे मास गर्भ के स्पन्दन करने पर पुंसवन संस्कार किया जाता है।

ऐसा ही गोभिलीय तथा शौनक गृह्य सूत्र का मत है।

अथ क्रियारम्भः।

यज्ञ प्रकरणान्तर्गत लिखे प्रमाणो यज्ञ वेदी बना, वेदी के पश्चिम भाग में पत्नी को बायीं ओर रखकर बैठ अर्थ सहित ईश्वर स्तुति प्रार्थनोपासना, स्वस्ति वाचन तथा शान्ति करण के मन्त्रों का पाठ कर ऋत्विज वरण कर सङ्कल्पोच्चारण करें। आचमन तथा अङ्ग स्पर्श कर अग्न्याधान पूर्वक अष्टाज्याहुति पर्यन्त हवन करनिम्नलिखित दो मन्त्रों से घृताहुति देवें।

ओम् आते गर्भो योनि मेतु पुमान् वाण इवेषुधिम्। आ वीरो जायतां पुत्रस्ते दशमास्यःस्वाहा॥

अर्थ—(ते योनिम) तेरे गर्भाशय में (पुमान् गर्भः) सुपुष्ट गर्भ (वाण इव इषुधिम्) तरकश में स्थित वाण की भांति स्थिर हो (दशमास्यः पुत्रः ते) तेरा पुत्र दश मास का होकर (वीरः आजायतां) वीर रूप में उत्पन्न हो॥ १॥ (अथ० का० ३। सू० २३। मं० २)॥ (आश्वला० गृ० सू० १। १३। ६)

ओम् अग्नि रैतु प्रथमो देवतानां सोऽस्यै प्रजांमुञ्चतु मृत्यु पाशात्। तदयं राजा वरूणो ऽनुमन्यतां यथेयं स्त्री पौत्रमघं न रोदात् स्वाहा॥ २॥ *(आश्वला० गृ० सू० १। १३। ६)॥*

अर्थ—(देवतानाम् प्रथमः अग्निः) देवताओं में प्रथम अग्निः (सः अस्यै प्रजां मृत्यु पाशात्) इस गर्भवती स्त्री के गर्भ को मृत्यु के पाश से (मुञ्चतु) छुड़ावे (तत् अयं वरुणः राजा) हे दीप्तिमान् वरुण !(अनुमन्यताम्) आपकी कृपा से (यथा अयं स्त्री) यह स्त्री (पौत्रम् अधम् न रोदात्) पौत्र के अभाव रूपी पाप से न रोवे।

तत्पश्चात् घृत की चार आघारावाज्यभागाहुति देकर घृत की चार व्याहृति आहुति देवे। पश्चात् घृत, भात, मोहन भोगादि स्थाली पाक की स्विष्टकृत् आहुति देकर मौन रहकर प्राजापत्याहुति देवे। इसके पश्चात् पूर्णाहुति देवें।

तत्पश्चात् पति पत्नी एकान्त में जाकर, यह सुहुत है ॥पत्नी के हृदय पर दाहिना हाथ रख निम्नलिखित मन्त्र बोले—

ओम् यत्ते सुसीमे हृदये हितवन्त. प्रजापतौ।
मन्यऽहंमां तद्विद्वांसं माहं पौत्र मन्नियाम्॥ १ ॥

(आश्वला० गृ० सू० १। १३।)

अर्थ—(सुसीमे) हे शोमन केशों वाली (प्रजापतौ हितवन्तः) सन्तान के हित की कामना जो तेरे हृदय में है (तत् विद्वां सं अहं मन्ये) उसे मैं भली भांति जानता हूँ (मा अहम् पौत्रम् अघं नियाम्) मुझे सन्तान के अभाव का दुःख न प्राप्त हो।

तत्पश्चात् पति पत्नी आकर यज्ञ वेदी के पास पूर्व स्थान पर आनन्दपूर्वक बैठ महावाम देव्य गान करें।

इसके बाद पुरोहित—

ओम् पुमानग्निः पुमानिन्द्रः पुमान् देवो बृहस्पतिः।
पुमाꣳसं पुत्र विन्दस्व तं पुमाननु जायताम्॥

(सा० मं० ब्रा० १। ४। ९, गोभिलीय गृ० सू० २। ६। ११)

इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक आशीर्वाद दें। पुरोहितादि ऋत्विजों को दक्षिणा देकर तथा परोपकारी सुशील वैदिक धर्मपरायण विद्वानों तथा संन्यासियों को अन्न, वस्त्र, पात्र तथा धनादि दान देकर सत्कार करें। सबको सादर धन्यवादपूर्वक विदाकर पुरोहितादि ऋत्विजों एवम् विद्वानों को भोजन करा अन्यान्य जिनको भोजन कराना हो करावें। पुरोहितादि ऋत्विजों एवम् विद्वानों को पुनः दक्षिणा दे, सबको सादर विदा करे।

इसके पश्चात् पति पुनः वट वृक्ष के कोमल कोंपल तथा गिलोय को महीन पीस कपड़े में छान गर्भिणी स्त्री की नाक के दांये छिद्र में सुंघावे। पश्चात्

ओम् हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
सदाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवायहविषा विधेम॥ १ ॥

(य०अ० १३। मं० ४, पार० गृ० सू० १। १४। ३)॥

नारायणः ऋषिः । आदित्यो देवताः । भुरिग् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।

ओम् अद्भ्यः संभृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः
समवर्त्तताग्रे ।
तस्य त्वष्टा विद्वधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्यदेवत्वमाजानमग्रे ॥ २ ॥

(य०अ० ३१ । मं० १७, पा० गृ० सू० १ । १४ । ३) ॥

अर्थ—जो प्रकृति रूप पदार्थ (अद्भयः) स्थूल जलों की उत्पत्ति के लिये और (पृथिवी) स्थूल पृथिवी के लिये (सम्भृतः) पूर्व स्थित (रसात् च विश्व कर्मणः) रस से पूर्ण तथा जगत् का रचयिता (समवर्त्तत अग्रे) पूर्व से विद्यमान था (तस्य त्वष्टा) उसका रचयिता अर्थात् परमात्मा ही (विदधत रूपम् एति) रूप निर्धारित करता है (तत् मर्त्यस्यदेवत्वम् आजानम् अग्रे) वह परमात्मा ही पूर्वकाल में मनुष्यों को देवत्व प्राप्त करा चुका है ।

उपर्युक्त दोनों मन्त्रों को बोलकर पति गर्भवती पत्नी के गर्भाशय पर दायां हाथ रखकर यह मन्त्र बोले—

श्यावाश्व ऋषिः । गरुत्मान् देवताः । भुरिग् धृतिः छन्दः । ऋषभः स्वरः ।

ओम् सुपर्णोऽसि गरुत्माँस्त्रिवृत्ते शिरो गायत्रं चक्षुर्बृहद्रथन्तरे पक्षौ ।
स्तोमऽआत्मा छन्दा ꣳसि स्यङ्गानि यजूꣳषि नाम ।
साम ते तनूर्वामदेव्यं यज्ञा यज्ञियं पुच्छं धिष्ण्याः शफाः ।
सुपर्णोऽसि गरुत्मान्दिवं गच्छ स्वः पत ॥

(यजु० अ० १२ । मं० ४, पार० गृ० सू० १ । १४ । ५) ॥

अर्थ—हे गर्भस्थ जीव ! (सुपर्णः गरुत्मान्) तू ईश्वर कृपा से शोभन तथा विष रहित है (त्रिवृत्त ते शिरः) ज्ञान कर्म तथा उपासना तेरा शिर हो (गायत्रं चक्षुः) गायत्री छन्द नेत्र हों (बृहद्रथन्तरे पक्षौ) बृहद्रथन्तर साम भुजा रूपी पंख हों (स्तोमं आत्मा) स्तोम अर्थात् ऋचाऐं तेरी आत्मा हो (छन्दाꣳसि अङ्गानि) अथर्ववेद तेरा अङ्ग हो (यजुꣳषि) यजुर्वेद तेरा नाम हो (साम ते तनूः) सामवेद

तेरा शरीर हो (वामदेव्यं) हे वामदेव ! (यज्ञा यज्ञियं पुच्छं) यज्ञ तथा याजक तेरी पूंछ हों (धिष्ण्या शफाः) बुद्धि तेरे पञ्जे हों, (सुपर्णः असि) हे शोभन पंखयुक्त (गरुत्मान्) निर्विष पक्षी ! (दिवं गच्छ) प्रकाशमय लोक को प्राप्त होकर (स्वःपत) सुख को भोग।

इसके पश्चात् गर्भवती स्त्री नियमपूर्वक युक्ताहार विहार करे। विशेषकर सोंठ, ब्राह्मी तथा गिलोय का बारीक चूर्ण दूध के साथ थोड़ी-थोड़ी मात्रा में खाया करे। अधिक शयन, अधिक वार्तालाप अधिक खारा व खट्टा तीक्ष्ण तथा रेचक हरड़ आदि न खावे, सूक्ष्म आहार करे। क्रोध, द्वेष, लोभादि दोषों में न फंसे। चित्त को सदा प्रसन्न रक्खे, इत्यादि शुभाचरण करे।

॥ इति पुंसवन प्रकरणम् ॥

सीमन्तोन्नयन संस्कारः ।

सीमन्तोन्नयन संस्कार तीसरा संस्कार है जिससे गर्भवती स्त्री का मन सन्तुष्ट, आरोग्य, गर्भ स्थिर तथा उत्कृष्ट होवे और प्रतिदिन बढ़ता जावे । इसमें निम्नलिखित प्रमाण हैं—

चतुर्थे गर्भ मासे सीमन्तोन्नयनम् ॥ १ ॥

(आश्वला० गृ० सू० अ० १ । कं० १८ । सू० १) ॥

अर्थ—गर्भ मास से चौथे मास में सीमन्तोन्नयन संस्कार करें ।

आपूर्यमाण पक्षे यदा पुंसानक्षत्रेण चन्द्रमा युक्तः स्यात् ॥ २ ॥

(आश्वला० गृ० सू० अ० १ । कं० १० । सू० २) ॥

अर्थ—उस दिन जब कि शुक्ल पक्ष हो तथा चन्द्रमा पुरुष वाची नक्षत्र में हो ।

अथास्यै युग्मेन शलादुग्लप्सेन त्र्येण्या च शलल्या त्रिभिश्च कुश पिञ्जूलैरुर्ध्व सीमन्तं व्यूहति भूर्भुवः स्वरोमिति त्रिःचतुर्वा ॥

(आश्वला० अ० १ । कं० १४ । सू० ४, ५) ॥

अर्थ—(युग्मेन) दो समान फल वाले (शला दुग्लप्सेन) कच्चे गूलरों के समूह से अर्थात् दो दो गूलरों के बनाये गुच्छों के साथ (च) अथवा (त्र्येण्या) तीन (शलल्या) स्थानों में जो सफेद हो ऐसे साही के कांटे के साथ (च) अथवा (त्रिभिः) तीन (कुश पिञ्जूलै) तरुण कुशाओं के साथ (अस्यै सीमान्तम्) गर्भवती स्त्री की केश राशि को (ऊर्ध्वम्) माथे से ऊपर की तरफ (भू र्भुवः स्वः ओम् इति त्रिः चतुः वा) "भूर्भुवः स्वरोम्" इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए तीन या चार बार (व्यूहति) पृथक्-पृथक् दोनों ओर करें ॥ पुं॰ सवनवत् ॥ २ ॥

प्रथमे मासे षष्ठेऽष्टमे वा ॥ ३ ॥

(पार० गृ० सू० कां० १ । कंस्त्र १५ । सू० २, ३) ॥

अर्थ—(पुंसवनवत्) पुंसवन संस्कारवत् (प्रथमे गर्भे मासे) प्रथम गर्भ मास से (षष्ठेऽष्टमें वा) छठवें या आठवें मास में पुंसवन संस्कार पूर्वोक्त पुरुष संज्ञक नक्षत्र तथा शुक्ल पक्ष में करें ।

इसी प्रकार गोभिलीय तथा शौनिक गृह्य सूत्र में भी लिखा है ।

गर्भ मास से चौथे महिने में, शुक्ल पक्ष में जिस दिन, पुनर्वसु, पुष्य, अनुराधा, मूल, श्रवण, अश्विनी और मृगशिरा आदि पुल्लिङ्ग वाचक नक्षत्रों से युक्त चन्द्रमा हो, उसी दिन सीमन्तोन्नयन संस्कार करें, अथवा पुंसवन संस्कार के तुल्य छठे अथवा आठवे मास में पूर्वोक्त पक्ष और नक्षत्र युक्त चन्द्रमा के दिन सीमन्तोन्नयन संस्कार करें।

चावल, मूंग और तिल इन तीनों को सम भाग लेकर—

ओम् प्रजापतये त्वा जुष्टं निर्वपामि॥

अर्थ—(प्रजापतये) यज्ञ रूप प्रजापति (त्वा जुष्टं) आपके लिये प्रीतिपूर्वक (निर्वपामि) डालता हूँ।

ओम् प्रजापतये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि॥

अर्थ—(प्रजापतये त्वा) हे यज्ञरूप प्रजापति ! आपके लिये (जुष्टं प्रोक्षामि) प्रीतिपूर्वक प्रोक्षण करता हूँ अर्थात् धोता हूँ।

उपयुक्त वाक्यों का उच्चारण करते हुए धोकर इनकी नमक मिर्च मसाले रहित खिचड़ी बनाकर पुष्कल घृत डालकर रक्खे।

यज्ञ प्रकरणान्तर्गत लिखे प्रमाणे प्रथम वेदी बना चारो ओर सुन्दर आसन बिछा समिधा सामग्री तथा यज्ञ पात्र रखकर यज्ञ वेदी के पश्चिम में पत्नी को वाम भाग में रखकर पूर्वाभिमुख बैठ अर्थ सहित ईश्वर स्तुति प्रार्थनोपासना स्वस्ति वाचन तथा शान्तिकरण के मन्त्रों का पाठकर ऋत्विज वरण पूर्वक सङ्कल्पोच्चारण करें। तत्पश्चात् आचमन अङ्ग स्पर्श, अग्न्याधान से लेकर घृत की चार आघारावाज्यभागाहुति पर्यन्त सम्पूर्ण विधि कर "ओम् भूर्भुवः। अग्न आयूंषि"[७] आदि चार मन्त्रों से चार आज्याहुति देकर निम्नलिखित मन्त्रों से खिचड़ी की सात आहुति देवें।

(ऋ० खि० सू० ३। ७, निरुक्त अ० ११। खं०, आश्वला० गृ० सू० १। १४। १३)॥

ओम धाता ददातु दाशुषे प्राचीं जीवातु मुक्षितम्।
वयं देवस्य धीमहि सुमतिं वाजिनीवति स्वाहा॥ इदंधात्रे-इदन्नमम

॥ १ ॥

अर्थ—(वाजिनी वति) बलयुक्त सन्तान वाली स्त्री (प्राची) भली भांति संस्करणीय (उक्षितम्) रसादि से (जीवातुम) जीवनौषध को (हविषा) हविरादि देने वाले के लिये (धाता) जगत् को धारण करने वाला परमेश्वर (ददातु) देवे (वयम्) हम सब (देवस्य) उसी ईश्वर की (सुमतिम) सुमति को (धीमहि) धारण करते हैं (स्वाहा) इसके लिये यह सुहुत है॥ ये धाता के लिये है-मेरे लिये नहीं॥ १॥

ओम् धाता प्रजानामुत रायईशे धात्रेदं विश्वं भुवनं जजान।
धाता कृष्टीरनिमिषाभिचष्टे धात्र ऽइद्धव्यं घृतवज्जुहोत स्वाहा॥ इदं धात्रे-इदन्नमम॥ २॥

(ऋ० खि० सू०सं० ९। मं० ८, आश्वला० गृ० सू० १। १४। ३)॥

अर्थ—(धाता) परमेश्वर (प्रजानाम्) प्राणिमात्र का (उत) और (राय) धन का (ईशे) स्वामी है, (धाता) परमेश्वर से (इदं विश्वं भुवनं) यह सकल जगत् (जजान) उत्पन्न हुआ है (धाता) परमेश्वर (कृष्टीः) सब को (अनिमिषा) अनिमेष, अर्थात् बिना चक्षु व्यौपार के (अभिचष्टे) निरन्तर देखता है (धात्रः) परमेश्वर के लिये (घृतवत्) घृतयुक्त (इत् हव्यं) यह हवि (जुहोत) यज्ञ में अर्पित करो (स्वाहा) इसलिये यह सुहुत है। यह धाता के लिये है-मेरे लिये नहीं॥ २॥

गृत्समद ऋषिः। राका देवताः। विराट् जगती छन्दः। निषाद स्वरः।
ओम् राकामहं सुहवां सुष्टुती हुवे श्रृणोतुनः सुभगा बोधतुत्मना।
सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानयाददातु वीरं शतदाय मुक्थ्यं स्वाहा॥
इदं राकायै-इदन्नमम॥ ३॥ *(ऋ० मं० २। सू० ३२। मं ४)॥*

अर्थ—(अहं) मैं (सुहवां) आदरणीय श्रेष्ठ (राकां) पौर्णमासी के तुल्य मनोहर स्त्री को (सुष्टुती हुवे) सादर बुलाऊं (सुमगां) वह ऐश्वर्यमयी (नः श्रृणोतु) हमारी बात सुने (बोध तुत्मना) और मनन करे (सूच्या अच्छिद्य मानया) सुई से निरन्तर वस्त्र सीने की भांति (अपः सीव्यतु) उत्तम कर्म में संलग्न रहे (उक्थ्यं) प्रशंसनीय (शतदाय) दानशील (वीरं ददातु) वीर पुत्र उत्पन्न करे (स्वाहा) इसलिये यह सुहुत है। यह राका के लिये है-मेरे लिये नहीं॥ ३॥

गृत्समद ऋषिः । राका देवताः । विराट् जगती छन्दः । निषाद स्वरः ।
ओम् यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि ।
ताभिर्नो अद्य सुमना उपागहि सहस्र पोषं सुभगे ररााणा स्वाहा ॥
इदं राकायै-इदन्नमम ॥ ४ ॥

(ऋ० मं० २ । सू० ३२ । मं० ५) ॥

अर्थ—(राके) हे पौर्णमासी के समान प्रकाशमयी ! (सुपेशसः) शोभास्पद (सुमतयः) मननशील (याभिः) जिन विचारों से (दाशुषे) सर्वस्व अर्पित करने वाले मुझ पति के लिये (वसूनि) नाना प्रकार के ऐश्वर्यमय पदार्थ (ददासि) सम्पादित करती है (ताभिः) उनके साथ (समुनाः) हे मनस्विनी (अद्य उपागहि) आज ही हमें प्राप्त हों (सुभगे) हे ऐश्वर्य मयि ! (सहस्र पोषं) असंख्य समृद्धियों से युक्त (ररााणाः) मुझे प्राप्त हो (स्वाहा) इसलिये यह सुहुत है। (इदं राकायै) यह राका के लिये है-(इदन्नमम) यह मेरे लिये नहीं है ॥ ४ ॥

ओम् नेज मेष परापत सुपुत्रः पुनरापत ।
अस्यै मे पुत्र कामायै गर्भ माधेहि यः पुमान्स्वाहा ॥ ५ ॥

(ऋ० खि० सू० सं० ३४ । मं० १, आश्वला० गृ० सू० १ । १४ । ३) ॥

अर्थ—(यः पुमान्) यह मेरा पति (अस्यै मे पुत्र कामायै) सन्तान की इच्छा रखने वाली मेरे लिये (गर्भम् आधेहि) गर्भ धारण करा चुका है (एष्) यह मेरा पति (नेजम) अनिन्दित कार्य करता हुआ (परापत) मुझे प्राप्त हो (पुनः) फिर (सुपुत्र) सुपुत्रवान् होकर (आपत) मुझे मिले (स्वाहा) इसलिये यह सुहुत है ॥ ५ ॥

ओम् यथेयं पृथिवी मह्युत्ताना गर्भं मादधे ।
एवं तं गर्भ माधेहि दशमे मासि सूतवे स्वाहा ॥ ६ ॥

(ऋ० खि० सू० सं० ३४ । मं० २, आश्वला० गृ० सू० १ । १४ । ३) ॥

अर्थ—(यथा इयम्) जैसे यह (मही उत्ताना पृथिवी) महान् और ऊँची पृथिवी (गर्भं आदधे) नाना पदार्थों को गर्भ में धारण करती है (एवं तं गर्भ माधेहि) ऐसे ही सुभगे तुम गर्भ को धारण करो (दशमें मासि सूतवे) दशमें मास में प्रसव के लिये (स्वाहा) इसलिये यह सुहुत है ॥ ६ ॥

ओम् विष्णोः श्रेष्ठेन रूपेणा स्यांनार्या गवीन्याम् ।
पुमांसं पुत्रानां धेहि दशमे मासि सूतवे स्वाहा ॥ ७ ॥

(ऋ० खि० सू० सं० ३४ । मं० ३, आश्वला० गृ० सू० १ । १४ । ३) ॥

अर्थ—हे पुरुष ! (गवि इन्याम्) उत्तम इन्द्रियों वाली (अस्या) इस (नार्या) नारी में (विष्णोः) विष्णु के (श्रेष्ठेन रूपेण) श्रेष्ठ शोभन रूप से युक्त (दशमें मासि सूतवे) दशमे मास में उत्पन्न होने के लिये (पुमांसं पुत्रानां धेहि) वीर्यवान पुत्रों को धारण करा (स्वाहा) इसलिये यह सुहुत है ॥ ७ ॥

उपर्युक्त सात मन्त्रों से खिचड़ी की सात आहुति देकर "ओम् प्रजापते न त्वदेता नन्यो"० मन्त्र से खिचड़ी की एक आहुति देवे । तत्पश्चात् "ओम् त्वन्नो अग्ने वरुणस्य"० आदि आठ मन्त्रों से घृत की आठ अष्टाज्याहुति देकर घृत की चार आघारावाज्यभागाहुति देने के पश्चात् चार व्याहृति आहुति घृत की देवें । "ओम् यदस्य कर्मणो"० मन्त्र से खिचड़ी की आहुति देकर "ओम् प्रजापतये स्वाहा" ॥ इदं प्रजापतये-इदन्नमम ॥ मन्त्र से प्राजापत्याहुति घृत की देवें ! इसके पश्चात् "ओम् सर्वं वै पूर्णं स्वाहा ।" मन्त्र से तीन बार में पूर्णाहुति करें ।

तत्पश्चात् पति पत्नी एकान्त में जाकर पत्नी उत्तमासन पर पूर्वाभिमुख बैठे तथा पत्नी की पीठ के पीछे उत्तमासन पर पति बैठे—

दीर्घतमा ऋषिः । वरुणो देवताः । त्रिपाद् विराड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ।

ओम् सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रिया स्तस्मै सन्तु योऽस्मान्द्वेष्टि यञ्च वयं द्विष्मः ॥ १ ॥

(य० ६ । मं० २२)

अर्थ—(नः) हमारे लिये (आपः ओषधयः) जल तथा ओषधियां (सुमित्रिया सन्तु) सुमित्र की भांति सुखदायक हों (यः अस्मान् द्वेष्टि) जो हमसे द्वेष करता है (च यं वयं द्विष्मः) अथवा हम जिनसे द्वेष करते हों (तस्मै दुर्भित्रियाः सन्तु) उनके लिये यह शत्रुवत् दुःखदायक हों ॥ १ ॥

भरद्वाज ऋषिः । विश्वे देवाः देवताः । आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।

ओम् मूर्द्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानर मृत आ जातमग्निम् ।
कविँ सम्राजमतिथिं जनाना मासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः ॥ २ ॥

(य० अ० ७ । मं० २४)

अर्थ–(दिवो मूर्द्धानं देवा) देदीप्यमान् मूर्द्धन्य विद्वान् (पृथिव्या अरतिं) पार्थिव सुखों में अनासक्त (ऋते आतं वैश्वानरं) सत्यनिष्ठा से युक्त अग्नि होत्र करने वाले (सम्राजं) भली भांति सुशोभित (अनानां पात्र अतिथिम्) मनुष्यों में अतिथिवत् पूज्य (अग्निम्) तेजस्विन् को (आसन्) मुख्य पद पर अभिषिक्त करने हेतु (आ जनयन्त) उत्पन्न करें ॥ २ ॥

ओम् अयमूर्ज्जावतो वृक्ष ऊर्ज्जीव फलिनी भव ।
पर्णं वनस्पते नुत्वानुत्वा सूयताᳩ रयिः ॥ ३ ॥

(मं० ब्रा० १ । ५ । ६, गोभिलीय गृ० सू० २ । ४ । ६) ॥

अर्थ–हे सुभगे ! (अयम्) यह (ऊर्ज्जावतो वृक्ष) ओजस्वी गूलर वृक्ष (ऊर्ज्जा इव) जैसे ओजस्वी गूलर के सुपक्व फलों से युक्त है (फलिनी) वैसे ही तू भी ओजस्वी संतान वाली (भव) हो (पर्णं वनस्पते) जैसे वनस्पति के पत्तों से (नुत्वा नुत्वा) रस संचयन करता है तद्वत् (रयिं सूयताम्) धनादि ऐश्वर्य का संग्रह किया जाये ॥ ३ ॥

ओम् येनादिते सीमानं नयति प्रजापति महते सौभगाय ।
तेनाहमस्यै सीमानं नयामि प्रजामस्य जरदष्टिं कृणोमि ॥ ४ ॥

(मं० ब्रा० १ । ५ । ६, गोभिलीय गृ० सू० २ । ४ । ६) ॥

अर्थ–(प्रजापतिः) परमात्मा (महते सौभगाय) जीवों के कल्याण रूपी महान् सौभाग्य के लिये (अदिते) अखण्डित पृथिवी को (सीमानं नयति) सीमा वाली बनाता है (तेन अहम् सीमानं) उसी भांति मैं सौभाग्यवती (अस्यै) अर्थात् इसको (नयामि) ग्रहण करता हूँ (अस्यै) इसकी (प्रजाम्) प्रजा अर्थात् सन्तान को (जर दष्टिं करोमि) वृद्धावस्था पर्यन्त जीवित रहने वाली बनाता हूँ ॥ ४ ॥

गृत्समदः ऋषिः । राका देवताः । विराट् जगती छन्दः ।
निषाद स्वरः ।

ओम् राकामहँ सुहवाँ सुष्टुती हुवे
शृणोतु नः सुभगा बोधतुत्मनाः।
सीव्यत्वपः सूच्या छिद्यमानया
ददातु वीरँ शतदायु मुख्यम्॥ ५॥

(ऋ० मं० २। सू० ३२। मं० ४, मं० ब्रा० १। ५। ३, गोभिलीय गृ० सू० २। ४। ८)॥

गृत्समदः ऋषिः। राका देवताः। विराट् जगती छन्दः।
निषाद स्वरः।
ओम् यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो
याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि।
ताभिर्नो अद्य सुमनाउपागहि
सहस्र पोषं सुभगे रराणा॥ ६॥

(ऋ० मं० २। सू० ३२। मं० ५, मं० ब्रा० १। ५। ४, गोभिलीय गृ० सू० ३। ७। ९)॥

ओम् किं पश्यसि प्रजां पशून्सौभाग्यं मह्यं दीर्घा युष्ट्वं पत्युः
॥ ७॥

(मं० ब्रा० १। ५। ५।, गोभिलीय गृ० सू० २। ७। १०)॥

अर्थ—(किं पश्यसि) क्या देखती हो ! (मह्यं) अपने लिये ! (प्रजां पशून् सौभाग्यं) उत्तम संतति, गवादि पशु, और सौभाग्य को तथा (त्वं पत्युः दीर्घायुः) अपने पति के दीर्घायु को देखती हूँ॥ ७॥

इन उपर्युक्त सात मन्त्रों को पढ़ कर पति अपने हाथ से पत्नी के केशों में सुगन्धित तैल डाल कन्घे से केशों को संवार हाथ में उदुम्बर अथवा अर्जुन वृक्ष की शलाका वा कुशा की मृदु छीपी वा शाही पशु के कांटे से पत्नी के केशों को व्यवस्थित कर पट्टी निकाल पीछे की ओर सुन्दर जूड़ा बांधकर यज्ञशाला में आकर यथा पूर्व स्थान पर बैठें। उस समय वीणा आदि वाद्य यन्त्रों से वादन करबावे। पश्चात्—

ओम् सोम एव नोराजेमा मानुषीः प्रजाः।
अविमुक्त चक्र आसीरंस्तीरे तुभ्यम् असौ॥

(पार० गृ० सू० कां० १। कं० १५। सू० ८)॥

अर्थ—(इमा मानुषीः प्रजा नः) इस मानुषी प्रजा का तथा हमारा (सोम एव राजा) सोम ही राजा है (अविमुक्त चक्र तीरे) चक्रवात रहित नदी के तटवत् (तुभ्यम्) तेरे लिये (आसीरन्) जैसे पूर्व में रहते थे रहें।

उपर्युक्त मन्त्र में असौ पद के स्थान पर किसी नदी के नाम का उच्चारण करते हुए पति पत्नी उपर्युक्त मन्त्र का गान कर वामदेव्य गान करें।

इसके पश्चात् पुरोहितादि ऋत्विज तथा अन्य उपस्थित जन निम्नलिखित वाक्य उच्चारणपूर्वक आशीर्वाद दें।

ओम् वीर सूस्त्वं भव, जीव सूस्त्वं भव, जीव पत्नी त्वं भव॥

(गोभिलीय गृ० सू० २। ७। १२)॥

अर्थ—(वीर सूः त्वंभव) तू वीर उत्पन्न करने वाली हो (जीव सूः त्वं भव) तू जीवित सन्तान को जन्म देने वाली हो तथा (जीव पत्नी त्वं भव) तू जीवित पति की पत्नी हो।

तत्पश्चात् पति पत्नी नमस्ते कहकर पुरोहितादि ऋत्विजों का अभिवादन कर परस्पर नमस्ते कहकर अभिवादन करें। आये हुए समस्त लोगों का नमस्ते कहकर अभिवादन कर परमेश्वर का धन्यवाद करें। इसके पश्चात् सब का धन्यवाद कर पुरोहितादि ऋत्विजों को दक्षिणा देकर त्यागी दानशील परोपकारपरायण वैदिक विद्वानों एवम् धर्मपरायण संन्यासियों को सुवर्ण, रत्न, धन, अन्न, वस्त्र तथा पात्रादि दान देकर सत्कार करे। पुरोहितादि ऋत्विजों एवम् विद्वानों को सादर भोजन करा दक्षिणा दे सादर विदा करें। आये हुए जिनको भोजन कराना हो करा सादर विदा करें।

॥ इति सीमन्तोन्नयन संस्कारः ॥

जात कर्म संस्कार

सोष्यन्ती मद्भिरभ्युक्षति ॥

(पार० गृ०सू० का० १ । कं० १६ । सू० १) ॥

अर्थ—(सोष्यन्तीम्) गर्भ पीड़ा के समय (अद्भिः) जल से (अभ्युक्षति) मार्जन करे ।

ऐसा ही आश्वलायन, गोभिलीय तथा शौनक आदि गृह्य सूत्रकारों ने भी लिखा है ।

जब प्रसवकाल आवे तब निम्नलिखित मन्त्र के उच्चारणपूर्वक गर्भवती स्त्री के शरीर पर जल से मार्जन करें ।

अत्रि ऋषिः । दम्पती देवताः । भुरिक् भुरिक्साच्युष्णिक छन्दः, प्राजापत्यानुष्टुप छन्दः, भुरिगासुर्य्युष्णाक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ।

ओम् एजतु दशमास्यो गर्भो जरायुणा सह ।
यथायं वायुरेजति यथा समुद्र एजति ।
एवायं दश मास्यो अस्त्रज्जरायुणा सह ॥

(य० अ० ८ । मं० २८, पार० गृ०सू० १ । १६ । १) ॥

इस मन्त्र से मार्जन करने के पश्चात्—

ओम् अवैतु पृश्नि शेवलꣳ शुने जराय्वत्तवे ।
नैवमाश्ꣳ सेन पीवरीं न कस्मिश्चनायतनभव जरायु पद्यताम् ॥
(पार० गृ० सू० १ । १६ । २)

अर्थ—हे सन्तति कारक ! तेरा (जरायु) जरायु (पृश्नि) नाना रूप वाला तथा (शेवलम्) विच्छिल गाढ़ा है (शुने अत्तवे) यह कुत्ते आदि के भक्षणार्थ (अव एतु) नीचे उतर आवे (पीवरी) हे पुष्ट शरीर वाली ! वह जरायु (मांसेन) मांस के साथ (आयतन) फैला हुआ (नैव) न गिरे और (कस्मिश्चन) किसी कारण भी कोई अन्तर्भाग (अव पद्यताम्) न गिरावे ।

इस मन्त्र का जप कर पुनः जल से मार्जन करे ।

कुमारं जातं पुरा ऽन्यैरालम्भात् सर्पिमधुनी हिरण्यनिकाषं हिरण्येन प्राशयेत्॥

(आश्वला० गृ०सू० १।१५।१)॥

अर्थ—(कुमार जातम्) नवजात बालक को (अन्यैः आलम्भनात्) अन्यों के गोद में लेने से पूर्व (सर्पिमधुनी) घृत और मधु को (हिरण्य निकाषम्) स्वर्ण के साथ घिस कर (हिरण्येन) स्वर्ण की शलाका से (प्राशयेत्) खिलावे।

सन्तान के जन्म होने पर दायी आदि स्त्रियाँ बालक के शरीर का जरायु पृथक् कर मुख, नासिका, कान, आंख आदि में से मल को शीघ्र दूर कर कौमल वस्त्र से पोंछ शुद्ध कर बालक को पिता की गोद में देवें।

जहाँ वायु और शीत का प्रकोप न हो बालक का पिता वहाँ बैठ के बीता भर नाड़ी को छोड़ ऊपर सूत से बांध के उस बन्धन के ऊपर से नाड़ी छेदन करके किञ्चित् उष्ण जल से बालक को स्नान करा, कोमल शुद्ध वस्त्र से पोंछ, नवीन शुद्ध वस्त्र धारण करा प्रसूतागार के बाहर पूर्वोक्त प्रकार से जो हवनकुण्ड बना रक्खा हो अथवा ताम्बे का यज्ञकुण्ड, समिधाऐं, हवन सामग्री, घृत तथा यज्ञ पात्र एवम् आसनादि रख के, हाथ पैर तथा मुखादि पृक्षालन कर स्थिर चित्त से आनन्दपूर्वक आसन पर पूर्वाभिमुख बैठकर अर्थ सहित ईश्वर स्तुति प्रार्थनोपासना, स्वस्तिवाचन, तथा शान्तिकरण के मन्त्रों का पाठ कर ऋत्विज वरण करे। पुरोहित यज्ञ कुण्ड के समीप दक्षिण में उत्तराभिमुख आसन परबैठ सङ्कल्पोच्चारण पूर्वक विधिपूर्वक कर्म करावे। बालक का पिता उपवस्त्र ओढ़कर पुरोहित की व्यवस्थानुसार कर्म करे।

यज्ञ प्रकरण में लिखे अनुसार आचमन से लेकर आघारावाज्यभागाहुति पर्यन्त यज्ञ कर घृत की चार आज्याहुति "ओम् भुर्भुवः स्वः। अग्न आयूंषि"० आदि चार मन्त्रों से देकर "ओम् अग्न आयूंषि"० आदि आठ मन्त्रों से अष्टाज्याहुति देवे। तत्पश्चात्—

ओम् या तिरश्ची निपद्यते अहं विधरणीइति।
ता त्वां घृतस्य धारया यजे सँ राधनी महम् सँ राधिन्यै स्वाहा॥ इदं संराधिन्ये-इदन्नमम॥ १॥

(मं० ब्रा० १।५।६, गोभिलीय गृ० सू० २।७।१५)

अर्थ—(या) जो मेरी पत्नी (अतिरश्ची) अनुकूल आचरण वाली (निपद्यते) है (अहम्) मैं अपने पति के गृह को (विधरणी इति) विशेषकर सम्भालने वाली हूँ (तं त्वा) उस तेरा (अहम्) मैं (घृतस्यं धारया) घृत की धारा से (यजे) यज्ञ द्वारा सत्कार करता हूँ (अहम्) मैं तुमको (संराधिनीम्) कार्यों को अच्छे प्रकार निर्वहन करने वाली मानता हूँ (सं राधिन्यै स्वाहा) कार्यों को भली भांति निर्वहन करने वाली देवी के लिये सुहुत है। (इदं स ँ राधिन्यै) यह कार्य करने वाली देवी के लिये है, (इदन्नमम) यह मेरे लिये नहीं है॥ १॥

ओम् विपश्चित्पुच्छमभरतद्धाता पुनराहरत्।
परेहि त्वं विपश्चित्पुमानयं जनिष्यते ऽसौ नाम स्वाहा॥
इदं धात्रे-इदन्नमम॥ २॥

(मं० ब्रा० १। ५। ७, गोभिलीय गृ सू० २। ७। १६)॥

अर्थ—(विपश्चित्) विद्वानों ने संतान को (पुच्छम्) प्रतिष्ठा का स्थान (अभरत) कहा है (तत् धाता) उसे परमेश्वर ने भी (पुनः आहरत्) फिर प्रतिष्ठास्पद कहा है, अतः हे (विपश्चित्) विद्वत् जन (त्वम्) तुम (परेहि) आया करो (अयं पुमान्) मेरा वीर्यवान् (असौ नाम) विशिष्ट नाम वाला मेरा पति (जनिष्यते) पुनः सन्तान उत्पन्न करे।

इन दोनों मन्त्रों से दो घृताहुति देकर घृत की चार आघारावाज्यभागाहुति दे। घृत की चार व्याहृति आहुति देकर स्थालीपाक अथवा घृत से स्विष्टकृत् आहुति देवे। मौनपूर्वक प्राजापत्याहुति देकर "ओम् सर्व ँ वै पूर्ण स्वाहा" मन्त्र से तीन बार आहुति पूर्वक पूर्णाहुति करे।

तदनन्तर शान्त चित्त से आनन्दपूर्वक वामदेव्य गान कर अर्थ सहित ईश्वर स्तुति प्रार्थनोपासना के मन्त्रों के पाठ पूर्वक ईश्वरोपासना करे। तत्पश्चात् पुरोहित बालक को—

ओम् त्र्यायुषं जमदग्ने कश्यपश्य त्र्यायुषम्।
यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम्॥ (य० ३। ६२) ॥

इस मन्त्र को बोलकर आशीर्वाद दे। बालक का पिता पुरोहितादि ऋत्विजों को दक्षिणा दे तथा धर्मपरायण परोपकारी वैदिक विद्वानों तथा संन्यासियों को यथा शक्ति धन, अन्न वस्त्र, पात्रादि दान देकर सादर विदा करे।

तत्पश्चात् बालक का पिता एक भाग गौ घृत तीन भाग मधु चाँदी के पात्र में सोने की शलाका से घिसते हुए मिलाकर, सोने की शलाका से घृत मिश्रित मधु से बालक की जिह्वा पर "ओ३म्" यह अक्षर लिखकर बालक के दक्षिण कान में "वेदो सीति" अर्थात् तेरा गुप्त नाम वेद है ऐसा सुना के पूर्व मिलाये घृत और मधु को स्वर्ण की शलाका से निम्नलिखित मन्त्रों के पाठ पूर्वक थोड़ा-थोड़ा चटावे।

ओम् प्रते ददामि मधुनो घृतस्य वेद सवित्रा प्रसूतं मधोनाम्।
आयुष्मान् गुप्तो देवताभिः शतं जीव शरदो लोके अस्मिन्॥ १॥

(आश्वला० गृ०सू० १।१५।१)॥

अर्थ—हे बालक ! (ते) तुझको (मधुनः घृतस्य) मधु और घृत को (प्रददामि) भली भांति देता हूँ (सवित्रा) यह ऐश्वर्य के सृष्टा द्वारा ही (प्रसूतं) उत्पन्न किया गया है (अस्मिन् लोके) इस संसार में (देवताभिः) देवताओं के द्वारा (गुप्तः) रक्षित (आयुष्मान्) हे आयुष्मान् ! तू (शतं जीव) सैकड़ों वर्ष तक जी।

ओम् भूस्त्वयि दधामि॥ २॥ *(पार० गृ० सू० १।१३।४)॥*

अर्थ—(भूः) प्राण शक्ति को (त्वयि) तुझमें धारण करता हूँ॥ २॥

ओम् भुव स्त्वयि दधामि॥ ३॥ *(पार० गृ० सू० १।१३।४)॥*

अर्थ—(भुवः) दुःखनाशक सामर्थ्य को (त्वयि) तुझमें (दधामि) धारण करता हूँ॥ ३॥

ओम् स्वस्त्वयि दधामि॥ ४॥ *(पार० गृ० सू० १।१३।४)॥*

अर्थ—(स्वः) सुख प्राप्ति की सामर्थ्य को (त्वयि) तुझमें (दधामि) धारण करता हूँ॥ ४॥

ओम् भू र्भुवः स्वस्त्वयि दधामि॥ ५॥

(पार० गृ० सू० १।१३।४)॥

अर्थ—(भू भुवः स्वः) प्राण शक्ति, दुःखनाशक सामर्थ्य तथा सुख प्राप्ति की सामर्थ्य को (त्वयि) तुझमें (दधामि) धारण करता हूँ ॥ ५ ॥

मेधा कामः ऋषिः । इन्द्रो देवताः । भुरिग्गायत्री छन्दः ।
षड्जः स्वरः ।

ओम् सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।
सनिं मेधामयासिषँ स्वाहा ॥ ६ ॥

(य०अ० ३२ । मं० १३, गोभिलीय गृ०सू० २ । ७ । २१) ॥

अर्थ—(सदसः पतिम्) वेद ज्ञान के स्वामी (अद्भुतं) आश्चर्यमय (प्रियं) प्रिय (इन्द्रस्य काम्यम्) जीवात्मा के कामना करने योग्य (सीनं) भोग्य सामर्थ्य तथा (मेधाम्) बुद्धि को (अयासिषं) प्राप्त होऊं ॥ ६ ॥

इन उपर्युक्त मन्त्रों में से प्रत्येक मन्त्र से छः बार घृत मधु प्राशन कराके बालक का मुख जल से स्वच्छ कर कौमल वस्त्र से पोंछ तत्पश्चात् चावल और जौ को जल से स्वच्छ कर जल मिलाकर पीस वस्त्र से शुद्ध पात्र में छानकर दक्षिण हाथ में थोड़ा सा लेकर बालक का पिता—

ओम् इदमाज्यमिदमन्नमिदमायुरिदममृतम् ॥

(मं०ब्रा० १ । ५, गोभिलीय गृ० सू० २ । ७ । २०) ॥

अर्थ—(इदं आज्यम्) यह घृत है, (इदं अन्नम्) यह अन्न है (इदं आयुः) यह जीवन है तथा (इदं अमृतं) यह अमृत है।

इस मन्त्र का उच्चारण कर बालक के मुख में एक बिन्दु छोड़ दवें।

यह गोभिलीय गृह्य सूत्र का मत है, अन्य सबका नहीं।

तत्पश्चात् बालक का पिता बालक के दक्षिण कान में अपना मुख लगा धीरे-धीरे मधुर स्वर में निम्नलिखित मन्त्र बोले—

ओम् मेधांते देवः सविता मेधां देवी सरस्वती ।
मेधान्ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्कर स्त्रजौ ॥ १ ॥

(आश्वला० गृ० सू० १ । १५ । २) ॥

अर्थ—हे बालक ! (ते) तेरे लिये (सविता देव) जगत् को उत्पन्न करने वाला परमेश्वर (मेधां) श्रेष्ठ बुद्धि दे (अश्विनौ ते मेधां) अश्विनी कुमार तुझे उत्तम बुद्धि दें (देवाः) देवगण (पुष्कर स्रजौ) आकाशवत् व्यापक बुद्धि (अव आधत्तां) प्राप्त करावें ॥ १ ॥

ओम् अग्निरायुष्मान् सवनस्पतिरायुष्माँस्तेन त्वाऽऽयुषा ऽऽयुष्मन्तं करोमि ॥ *(पार० गृ० सू० १।१६।६)॥*

अर्थ—(अग्निः आयुष्मान्) अग्नि दीर्घजीवी है (सवनस्पतिः आयुष्मान्) वह वनस्पतियाँ दीर्घ जीती हैं (तेन त्वा आयुषा) उनके दीर्घ जीवन से तेरे जीवन को (आयुष्मन्तं करोमि) दीर्घ जीवन युक्त करता हूँ ॥ २ ॥

ओम् सोम आयुष्मान् स ओषधीभिरायुष्माँस्तेन त्वा आयुष्मन्तं करोमि ॥ ३ ॥ *(पार० गृ० सू० १।१६।६)॥*

अर्थ—(सोम आयुष्मान्) सोम दीर्घजीवी है (स ओषधीभिः आयुष्मान्) वह ओषधियां भी दीर्घजीवी हैं (तेन त्वा आयुषा) उनके दीर्घ जीवन से (त्वा आयुषा आयुष्मन्तं करोमि) तेरे जीवन को दीर्घ जीवन युक्त करता हूँ ॥ ३ ॥

ओम् ब्रह्मा ऽऽयुष्मत् तद् ब्राह्मणौरायुष्म तेन त्वा ऽऽयुषा ऽऽयुष्मन्तं करोमि ॥ ४ ॥ *(पार० गृ० सू० १।१६।६)॥*

अर्थ—(ब्रह्मा आयुष्मत्) ब्रह्मा दीर्घजीवी है (तत् ब्राह्मणः आयुष्म) उससे ब्राह्मण दीर्घजीवी हैं (तेन त्वा आयुषा) उनके दीर्घ जीवन से तेरे जीवन को (आयुष्मन्तं करोमि) दीर्घ जीवनयुक्त करता हूँ ॥ ४ ॥

ओम् देवा आयुष्मन्तस्ते ऽमृतेनायुष्मन्त स्तेन त्वा ऽऽयुषा ऽऽयुष्मन्तं करोमि ॥ ५ ॥ *(पार० गृ० सू० १।१६।६)॥*

अर्थ—()देवा आयुष्मन्तः देवगण दीर्घजीवी हैं (ते अमृतेन आयुष्मन्तः) वे अमृतपान के कारण दीर्घजीवी हैं (तेन त्वा आयुषा) उनके दीर्घ जीवन से तेरे जीवन को (आयुष्मन्तं करोमि) दीर्घ जीवन से युक्त करता हूँ ॥ ५ ॥

ओम् ऋषयः आयुष्मन्तस्ते व्रतैरायुष्मन्तस्तेन त्वां ऽऽयुषा ऽऽयुष्मन्तं करोमि ॥ ६ ॥ *(पार० गृ० सू० १।१६।६)॥*

अर्थ—(ऋषयः आयुष्मन्तः) ऋषि दीर्घजीवी है (ते व्रतैः आयुष्मन्तः) वे व्रत पालन करने के कारण दीर्घजीवी हैं (तेन त्वा आयुषा) उनके दीर्घ जीवन से तेरे जीवन को (आयुष्मन्तं करोमि) दीर्घ जीवन युक्त करता हूँ॥ ६॥

ओम् पितर आयुष्मन्तस्ते स्वधाभिरायुष्मन्तस्तेन त्वा ऽऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि॥ ७॥

(पार० गृ० सू० १। १६। ६)॥

अर्थ—(पितर आयुष्मन्तः) पितर दीर्घजीवी हैं (ते स्वधाभिः आयुष्मन्तः) वे स्वधा के कारण दीर्घजीवी हैं (तेन त्वा आयुषा) उनके दीर्घ जीवन से तेरे जीवन को (आयुष्मन्तं करोमि) दीर्घ जीवनयुक्त करता हूँ॥ ७॥

ओम् यज्ञ आयुष्मान् स दक्षिणाभिरायुष्माँस्तेन त्वाऽऽयुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि॥ ८॥

(पार० गृ० सू० १। १६। ६)॥

अर्थ—यज्ञ दीर्घजीवी है (स दक्षिणाभिः आयुष्मान्) वह दक्षिणा के कारण दीर्घजीवी है (तेन त्वा आयुषा) उसके दीर्घ जीवन से तेरे जीवन को (आयुष्मन्तं करोमि) दीर्घ जीवन युक्त करता हूँ॥ ८॥

ओम् समुद्र आयुष्मान् स स्रवन्तीभिरायुष्मांस्तेन त्वाऽऽ आयुषा ऽऽयुष्मन्तं करोमि॥ ९॥ *(पार० गृ० सू० १। १६। ६)॥*

अर्थ—(समुद्र आयुष्मान्) समुद्र दीर्घजीवी है (स स्रवन्तीभिः) वह नदियों के कारण (आयुष्मान्) दीर्घजीवी है (तेन त्वा आयुषा) उसके दीर्घ जीवन से तेरे जीवन को (आयुष्मन्तं करोमि) दीर्घ जीवन युक्त करता हूँ॥ ९॥

इन उपर्युक्त नौ मन्त्रों का जाप कर इसी प्रकार बायें कान पर मुख धर पुनः इन्हीं नौ मन्त्रों का जप करें। तत्पश्चात् बालक के कन्धों पर कोमल स्पर्शपूर्वक हाथ धर निम्नलिखित मन्त्र बोले—

गृत्समद ऋषिः। इन्द्रो देवताः। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः।

ओम् इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहिचित्तिं दक्षस्यसुभगत्व मस्मे।
पोषं रयीणामरिष्टि तनूनां स्वाद्मानंवाचः सुदिनत्व मह्नाम्॥ १॥

(०म० २। सू० २१। मं० ६, आश्वला० गृ० सू० १। १५। ३)॥

अर्थ—(इन्द्रः) हे परमेश्वर ! (श्रेष्ठानि द्रविणानि) उत्तम धनों को (अस्मे) हमारे लिये (धेहि) दीजिये (दक्षस्य चित्तिं) चित्त की कार्य कुशलता एवम् (सुभगत्वम्) सफलता दीजिये (पोषं रयीणां) धन के द्वारा पोषक वृत्ति (अरिष्टिं तनूनाम्) शारीरिक आरोग्य (स्वाध्यानं वाचः) वाणी का माधुर्य तथा स्वादिष्ट भोजन एवम् (सुदिनत्वम् अह्नाम्) सुखद दिन दीजिये॥ १॥

घोर आङ्गिरस ऋषिः। इन्द्रो देवताः। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः।

ओम् अस्मे प्र यन्धि मधवन्नृजीषिन्निन्द्र रायो विश्ववारस्य भूरेः।
अस्मे शतं शरदो जीवसे धा अस्मे वीराच्छश्वत इन्द्र शिप्रिन्॥ २॥

(० मं० ३। सू० ३६। मं० १, आश्वला० गृ० सू० १। १५। ३)॥

अर्थ—(मद्यवन् नृजीषिन् इन्द्र) हे निष्पाप पवित्र स्वभावयुक्त ऐश्वर्यशाली परमात्मन्! (विश्व वारस्य भूरेः रायः) समस्त आपत्ति निवारक, विपुल धन (अस्मे प्रयन्धि) हमें दीजिये (शतं शरदो धा जीव से) सैकड़ों शरद ऋतु हेतु धारणार्थ जीवन दीजिये (शिप्रिन् इन्द्र) हे ज्ञान युक्त ऐश्वर्य शालिन् ! (अस्मे शाश्वत वीरान्) हमें बहुत वीर संतति दीजिये॥ २॥

ओम् अश्मा भव परशुर्भव हिरण्यमस्तृतं भव।
वेदो वै पुत्र नामासि स जीव शरदः शतं॥ ३॥

(मं० ब्रा० १। ५। १८, आश्वला० गृ० सू० १। १५। ३)॥

अर्थ—हे बालक ! तू (अश्मा भव) पाषाणवत् दृढ़ और स्थिर हो (परशुः भव) परशु की धार के समान तीक्ष्ण बुद्धि युक्त हो (हिरण्यं अमृतं भव) शुद्ध स्वर्णवत् तेजस्वी हो (वेदः वै पुत्र नामासि) पुत्र तू वेद नाम वाला है (जीव शरदः शतम्) तू सैकड़ों वर्ष तक जी॥ ३॥

उपर्युक्त तीन मन्त्रों का उच्चारण करने के पश्चात्—

नारायणः ऋषिः। रुद्रो देवताः। भुरिग्पंक्तिश्छन्दः।
पञ्चमः स्वरः।

ओम् त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्।
यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम्॥

(य०अ० ३। मं० ६२, (पार० गृ० सू० १। १६। ७)॥)

अर्थ—(त्र्यायुषं जमदग्नेः) तीन आयु प्राप्त करने वाले जमदग्नि संज्ञक विद्वान् (कश्यपस्य त्र्यायुषं) तीन आयु पर्यन्त सुख को देखने वाले कश्यप संज्ञक विद्वान् (यत देवेषु त्र्यायुषं) जिससे देवगण तीन आयु से युक्त हैं (तं नः अस्तु त्र्यायुषम्) वह हमें तीन आयु और प्राप्त करावे॥

इस मन्त्र का तीन बार जप कर, बालक के स्कन्धों पर से अपना हाथ उठाकर प्रसूतागार में जाकर—

ओम् वेदते भूमि हृदयं दिवि चन्द्रमसि श्रितम्।
वेदाहं तन्मां तद्विद्यात्पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं श्रृणुयाम शरदः शतं॥ १॥

(पार० गृ० सू० १। १६। १०)॥

अर्थ—(भूमि) हे आधार रूप देवि ! (वेद ते हृदयं) मैं तेरे हृदय को जानता हूँ (दिवि चन्द्रमसि श्रितं) जो चन्द्रमा के समान आह्लाद में स्थित है (तत्) वह (मा विद्यात्) मुझे अच्छे प्रकार से जाने (पश्येम शरदः शतः) हम सौ वर्ष तक देखें (जीवेम शरदः शतं) सौ वर्ष तक जीवित रहें (श्रृणु याम शरदः शतं) सौ वर्ष तक सुनें॥ १॥

इस मन्त्र का जप करें तथा—

ओम् यत्ते सुसीमे हृदय ँ हितमन्तः प्रजापतौ।
वेदाहं मन्येतद् ब्रह्म माहं पौत्र मघं निगाम्॥ २॥

अर्थ—हे (सुसीमे) शोभन केशों वाली (अन्तः ते हृदयम्) भीतर विद्यमान तेरा हृदय (प्रजापतौ हितम्) परमात्मा में स्थित है (अहम् वेद) मैं जानता हूँ (तत् ब्रह्म) यह उदार है (मन्ये) मानता हूँ (अहम्) मैं (पौत्रम् अद्यम् मा निगाम्) सन्तान के अभाव रूपी दुःख को न प्राप्त होऊं॥ २॥

ओम् यत्पृथिव्या अनामृतं दिवि चन्द्रमसि श्रितम्।
वेदामृतस्याहं नाम माहं पौत्र मघ ँ रिषम्॥ ३॥

अर्थ—(यत् पृथिव्या अनामृतं) जो तेरा आह्लाद रहित पार्थिव हृदय (दिवि चन्द्रमसि श्रितम्) चन्द्रमा के स्वर्गिक आह्लाद् से पूरित है (वेद अमृतस्य अहम् नाम) मैं आह्लाद के स्वरूप को जानता हूँ (अहं पौत्रम् अघं मा रिषाम्) मुझे सन्तान के अभाव का दुःख न प्राप्त हो॥ ३॥

ओम् इन्द्राग्नी शर्म यच्छतं प्रजायै मे प्रजापती।
यथायं न प्रमीयते पुत्रो जनित्र्या अधि॥ ४॥

अर्थ—हे (प्रजापती) परमात्मन् ! (इन्द्र अग्नी) इन्द्र और अग्नि (मे प्रजायै) मेरी प्रजा को (शर्म यच्छतं) सुख देवें (यथा अयं पुत्र) जिससे यह पुत्र (जनित्र्या अधि) माता पिता से पूर्व (यत् न प्रमीयते) मृत्यु को प्राप्त न हो॥ ४॥

ओम् यददश्चन्द्रमसि कृष्णं पृथिव्या हृदयँ श्रितम्।
तदहं विद्वाꣳस्तत्पश्यन् माहं पौत्रमघँ रुद्रम्॥ ५॥

(न० ब्रा० १।५।१०-१३, गोभिलीय गृ०सू० २।८।१-५)॥

अर्थ—(यद् अदः) यह जो (चन्द्रम्) चन्द्रमा में (कृष्णम् असि) काले धब्बे हैं (पृथिव्या हृदयं श्रितम्) वे पृथिवी के सार भाग के रूप में स्थित हैं (अहं तद् विद्वान्) मैं उनको जानता हूँ (तत् पश्यन्) उसे देखता हुआ (अहं पौत्रम् अद्यम् मा रुद्रम्) मैं सन्तान के अभाव रूपी दुःख से न रोऊं॥ ५॥

इन उपर्युक्त मन्त्रों का उच्चारण करते हुए स्वच्छ सुगन्धित जल से प्रसूता स्त्री के शरीर का मार्जन करे।

ओम् कोऽसि कतमोऽस्येषो ऽस्यमृतोऽसि।
आहस्पत्यं मासं प्रविशासौ॥ ६॥

(मं० ब्रा० १।५।१४, गोभिलीय गृ० सू० २।८।१३)॥

अर्थ—हे बालक ! (कोऽसि) तू कौन है (मतमोसि) कौन सा है (एषोसि) तू आत्म रूप है (अमृतोऽसि) तू अमृत रूप है (असौ) वह तू (आहस्पत्यं मासं) सौर मास में (प्रविश) प्रवेश कर॥ ६॥

ओम् स त्वाह्ने परिददात्वहस्त्वा रात्र्यै पदिददातु रात्रि स्त्वाहोरात्राभ्यां परिददात्वहोरात्रौ त्वार्द्धमासेभ्यः परि दत्तामर्द्धमासास्त्वा मासेभ्य परिददतु मासस्त्वर्तुभ्यः परिददत्वृतवस्त्वा सम्वत्सराय परिददतु सम्वत्सर स्त्वायुषे जरायै परिददात्वसौ॥ ७॥

(मं० ब्रा० १।५।१५, गोभिलीय गृ० सू० २।८।१०)

अर्थ—(सत्वा) वह तुझे (अह्नोददातु) दिन को दे, (अहः त्वा रात्र्यै परिददातु) दिन तुझे रात्रि को दे, (रात्रिः त्वा अहोरात्राभ्यां परिददातु) रात्रि तुझे अहो रात्र को दे (अहोरात्रौ त्वा अर्द्ध मासेभ्य परिदत्ताम्) अहोरात्र तुझे अर्द्धमास को दे (अर्द्धमासः त्वा मासेभ्यः परिददतु) अर्द्धमास तुझे मास को दे (मासः त्वा ऋतुभ्यः परिददतु) मास तुझे ऋतुओं को दे (ऋतवः त्वा सम्वत्सराय परिददातु) ऋतुऐं तुझे सम्वत्सर को दें (सम्वत्सर त्वा आयुषे) सम्वत्सर तेरे जीवन को (जरायै परिददातु असौ) वृद्धावस्था को दे॥ ७॥

इन उपर्युक्त दो मन्त्रों को पढ़ कर बालक को आशीर्वाद दे। पुनः—

ओम् अङ्गादङ्गात्स ँ स्त्रवसि हृदयादधि जायसे।
प्राणं ते प्राणेन सन्दधामि जीव मे यावदायुषम्॥ ८॥

अर्थ—(अङ्गात् अङ्गात् संस्त्रवसि) तू मेरे अङ्ग से उत्पन्न हुआ है (हृदयात् अधि जायसे) विशेषतः हृदय से उत्पन्न हुआ है (यावत् आयुषं) जीवन पर्यन्त (प्राणं ते प्राणेन) अपने प्राणों से तेरे प्राणों का (सन्दधामि) पोषण करता हूँ॥ ८॥

ओम् अङ्गादङ्गात्संभवसि हृदयादधि जायसे।
वेदो वै पुत्र नामासि स जीव शरदः शतम्॥ ९॥

अर्थ—हे जातक ! (अङ्गात् अङ्गात्) तू मेरे प्रत्येक अङ्ग से (सम्भवसि) उत्पन्न हुआ है (हृदयात् अधि जायसे) तू मेरे हृदय से उत्पन्न हुआ है (वेदः वै पुत्र नामासि) हे पुत्र ! तेरा नाम वेद ही है (स जीव शरदः शतम्) तू सैकड़ों वर्ष तक जी॥ ९॥

ओम् अश्माभव परशुर्भव हिरण्यमस्तृंत भव।
आत्मासि पुत्र मा मृथाः सजीव शरदः शतम्॥ १०॥

अर्थ—(अश्मा भव) तू पाषाणवत् दृढ़ तथा स्थिर चित्त वाला हो (परशुः भव) तू परशुवत् तीक्ष्ण बुद्धि वाला हो (हिरण्यं अस्तृतं भव) तू स्वर्णवत् स्वच्छ और तेजस्वी हो (आत्मासि पुत्र) पुत्र तू ज्ञान शील है (मा मृथाः) तू मृत्यु को मत प्राप्त हो (स जीव शरदः शतम्) वह तू सौ वर्ष तक जीवित रह॥ १०॥

ओम् पशूनां त्वा हिङ्कारेणभिजिघ्राम्यसौ ॥ ११ ॥

(मं०ब्रा० १।५।१६-१९, गोभिलीय गृ० सू० २।८।२१-२२)॥

अर्थ—हे पुत्र ! (पशूनां हिङ्कारेण) पशुओं के द्वारा हिङ्कार पूर्वक सूंघे जाने के समान (अभि जिघ्रामि असौ) तुझे सूंघता हूँ॥ ११ ॥

इन उपर्युक्त मन्त्रों को पढ़कर पिता बालक के शिर का आघ्राण करे अर्थात् सूंघे। इसी प्रकार जब जब परदेश से आवे तब तब भी इसी भांति बालक के शिर का आघ्राण करे। जिससे संतान और पिता माता में परस्पर अति प्रेम बढ़े।

ओम् इड़ासि मैत्रा वरुणी वीरे वीरम जी जनथाः।
सा त्वं वीरवती भव या ऽस्मान्वीर वतोऽकरत्॥ १ ॥

अर्थ—हे (वीरे) वीर स्त्री ! तू (मैत्रा वरुणी) तू मित्रा और वरुणी की भांति (इड़ासि) स्तुत्य है (वीरं अजीजनथाः) तू वीर को उत्पन्न कर चुकी है (याऽ अस्मान्) जो हमको (वीरवतः अकरत्) वीर पुत्र वाला बना चुकी है (सात्वं वीरवती भव) वही तू पुनः वीर पुत्रों वाली हो॥

इस मन्त्र से ईश्वर की प्रार्थना करके प्रसूता स्त्री को प्रसन्न कर उसके दोनों स्तन किञ्चित् उष्ण सुगन्धित जल से प्रक्षालन कर शुद्ध वस्त्र से पोंछकर—

सप्त ऋषयः ऋषिः। अग्नि र्देवताः। आर्षी त्रिष्टुप् छन्दः।
धैवतः स्वर।

ओम् इ॒मँ॒ स्तन॒मूर्ज्जस्वन्तं धया॒पां प्रपी॑नमग्ने सरिर॒स्य मध्ये॑।
उत्सं॑ जुषस्व॒ मधु॑मन्तमर्वन्त्समु॒द्रिय॑ँ॒ सद॑न॒ आविशस्व॥ १ ॥

(य० अ० १७। मं० ८७, पार० गृ० सू० कां० १। कं० १६। सू० १९)॥

अर्थ—हे (अग्ने) तेजस्वी बालक ! (सरिरस्य मध्ये) गतिशील संसार में (अपां प्रवीनं) दुग्ध पूरित सुपुष्ट (ऊर्ज्ज स्वन्तं) ओजपूर्ण (इमं स्तनं धय) इस स्तन का पानकर (मधुमन्तं उत्सम्) मधुवत् सुस्वादु जानकर (जुषस्व) ग्रहण कर (अर्वन् समुद्रियं सदनं) निरन्तर स्रवित दुग्ध के सागर को (आविशस्व) प्राप्त हो।

इस मन्त्र का उच्चारण कर प्रथम दक्षिण स्तन बालक के मुख में देवें। इसके पश्चात्—

दीर्घतमा ऋषिः। अश्विनौ देवताः। निचृदति जगती छन्दः। निषाद स्वरः।

ओम् यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्यो रत्नधा वसुविद्यः सुदत्रः।
येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि सरस्वति तमिह धातवे कः॥ १॥

(यु०अ० ३८। मं० ५, श० ब्रा० १४। ९। ४। २८, पार० गृ०सू० कां० १। कं० १६। सू० २२)॥

अर्थ—हे (सरस्वति) सरस्वति! (तेयः स्तनः) तेरा जो स्तन (शशयः) शरीर में विद्यमान है (यः मयः भूः) जो सुखदायक है (येन) जिससे तू (विश्वा वार्याणि) बालक के समस्त अङ्गों का (पुष्यसि) पोषण करती है (यः रत्नधा) जो दुग्ध रूप रत्न को धारण करता है (वसुविद्) बसने की शक्ति देता है (यः सुदत्रः) जो भली भांति दुग्ध देता है (इह) यहाँ (तम्) उस (कः) सुखदायक स्तन को बालक को (धातवे) पीने के लिये दो।

इस मन्त्र को पढ़कर वाम स्तन बालक के मुख में देवें। तत्पश्चात्—

ओम् आपोदेवेषु जाग्रथ यथा देवेषु जाग्रथ।
सवमस्या ७ सूतिकाया ७ सपुत्रिकायां जागृथ॥

(पार० गृ० सू० कां० १। कं० १६। सू० २२)॥

अर्थ—हे (आपः) जल! तुम (देवेषु) दिव्य कार्यों के लिये (जाग्रथ) तत्पर रहते हो (यथा) जैसे (देवेषु) देवताओं के लिये (जाग्रथ) तत्पर रहते हो (एवम् अस्यां) इसी भांति (सूतिकायाम् सुपुत्रिकायां) सद्य प्रसवा पुत्रवती स्त्री के प्रति (जाग्रथ) तत्पर रहो।

इस मन्त्र से सद्य प्रसूता स्त्री के शिर की ओर जलपूरित एक कलश रक्खे जो दश रात्रि पर्यन्त वहीं रक्खा रहे तथा प्रसूता स्त्री दश दिन पर्यन्त प्रसूतागार में ही रहे। वहाँ नित्य सायं प्रातः सन्धि वेला में निम्नलिखित मन्त्रों से भात और सरसों मिलाकर दश दिन पर्यन्त निरन्तर आहुतियां देवें—

ओम् शण्डामर्का उपवीरः शौण्डिकेय उलूखलः।

मलिम्लुचो द्रोणासश्च्यवनो नश्यतादितः स्वाहा ॥
इदं शण्डामर्काभ्यामुपवीराय शौण्डिकेयायोलूखलाय मलिम्लुचाय द्रोणेभ्यश्च्यवनाय-इदन्नमम ॥ १ ॥

(पार० गृ० सू० कां० १ । कं० १६ । सू० २३) ॥

अर्थ—(शण्डामर्काः) घातक, दुष्ट रोग के जन्तु (उपवीरः) पीड़ा पहुँचाने में समर्थ (शौण्डिकेय) घातक रोग के जन्तु (उलूखलः) तथा पापियों के सानिध्य से उत्पन्न रोग (मलिम्लुचः) मलिन पदार्थों के सम्बन्ध से उत्पन्न रोग (द्रोणासः) नासिका को बिगाड़ने वाला जन्तु (च्यवनः) शरीर को कृश करने वाला जन्तु (इतः) इस बालक के (नश्यात्) नष्ट हो जावे, (स्वाहा) इसलिये यह सुहुत है ॥

(इदं शण्डामर्काभ्याम् उपवीराय) यह शण्डा मर्क के लिये, उपवीर के लिये, (शौण्डिकेय उलूखलाय) शौण्डिकेय के लिये, उलूखल के लिये (मलिम्लुचाय द्रोणेभ्यः) मलिम्लुचाय के लिये, द्रोणेभ्य के लिये तथा (च्यवनाय) च्यवन के लिये है (इदन्नमम) मेरे लिये नहीं ॥ १ ॥

ओम् आलिखन्ननिमिषः किंवदन्त उपश्रुतिर्हर्यक्षः कुम्भीशत्रुः पात्र पाणिर्नृमणिर्हन्त्रीमुखः सर्षपारूणश्च्यवनो नश्यतादितः स्वाहा ॥
इदमालिखितेऽनिमिषाय किंवद्भ्यः उपश्रुतयेहर्यक्षाय कुम्भीशत्रवे पात्र पाणये नृमणये हन्त्रीमुखाय सर्षपारूणाय च्यवनाय-इदन्नमम ॥ २ ॥

(पार० गृ० सू० कां० १ । कं० १६ । सू० २३) ॥

अर्थ—(आलिखन् न अनिमिषः) पदार्थों को बिगाड़ने वाला तथा घूरकर देखने वाला न हो (किंवदन्त) गप्प मारने वाला (उपश्रुति) चाटुकार (हर्यक्ष) बन्दर जैसे नेत्रों वाला (कुम्भी) शोषक (शत्रुः) शत्रुता रखने वाला (पात्र पाणि) भिक्षाचारी (नृमणि) नरहन्ता (हन्त्री मुखः) हिंसक वाणी युक्त (सर्षप अरूणः) लाल पीली मुद्राकृति वाला (च्यवनः) सङ्ग दोष से धर्म से च्युत करने वाला (इतः) इस बालक से (नश्यतात्) दूर कर दिये जाय (स्वाहा) इसलिये यह सुहुत है ॥

(इदमालिखिते अनिमिषाय) यह पदार्थों को बिगाड़ने वाले, घूरकर देखने वाले

(किंवद्भ्य उपश्रुतये) गप्पी, चाटुकार (हर्यक्षाय कुम्भी शत्रवे) बन्दर जैसे नेत्रों वाले, शोषक, शत्रुता रखने वाले (पात्र पाणाये नृमणये) भिक्षुक, नरहन्ता (हन्त्रीमुखाय सर्षप आरूणाय) हिंसक वाणी युक्त, लाल पीली मुखाकृति वालों (च्यवनाय) सङ्ग दोष से धर्म से च्युत करने वालों के लिये है (इदन्नमम) यह मेरे लिये नहीं है ॥ २ ॥

इन दोनों उपर्युक्त मन्त्रों से दश दिन तक प्रसूतागार में नित्य सायं प्रातः हवन करके पश्चात् अच्छे-अच्छे विद्वान् धार्मिक वैदिक मत वाले प्रसूतागार के बाहर खड़े रहकर तथा बालक का पिता प्रसूतागार के अन्दर रहकर आशीर्वादपरक निम्नलिखित मन्त्रों का पाठ आनन्दपूर्वक करें—

ब्रह्मा ऋषिः । दैव्या ऋषयः देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।
ओम् मानो हासिषुर्ऋषयो दैव्या ये तनूपा ये नस्तन्वऽ तनूजा ।
अमर्त्या मर्त्यॉ अभिनः सचध्व मायुर्धत्त प्रतरं जीवसे नः ॥ १ ॥

(अ० का० ६ । सू० ४१ । मं० ३) ॥

अर्थ—(ये तनूपः) जो शरीर की रक्षा करने वाले (दैव्या ऋषयः) देव ऋषि हैं (नः) हमें (मा हासिषु) न त्यागें (ये तन्वः) जो शरीर से (तनूजा) उत्पन्न पुत्रादिक हैं वे भी हमें न त्यागें, हे (अमर्त्या) दीर्घजीवी एवम् यशस्वी विद्वानों (नः मर्त्याम्) हम मनुष्यों से (अभि सचध्वम्) सब प्रकार से सम्बन्ध रक्खो (नः) हमारे (जीवसे) जीवन के लिये (प्रतरं) प्रकृष्ट (आयुः) आयु (धत्त) दीजिये ॥ १ ॥

भृगु ऋषिः । मन्त्रोक्ता देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।
ओम् इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि नैषांनु गादपरो अर्थमेतम् ।
शतं जीवन्तः शरदः पुरुचीस्तिरो मृत्युं दधतां पर्वतेन ॥ २ ॥

(अ० कां० १२ । सू० २ । मं० २३) ॥

अर्थ—(जीवेभ्यः) जीवों के लिये (इमम् परिधिं) इस सृष्टि क्रम रूप व्यवस्था को (दधामि) देता हूँ (एषाम्) इन जीवों में (एतम् अर्थम्) इस गन्तव्य मरण मार्ग को (नु मागात्) शीघ्र प्राप्त न हो (पुरुची) बहुत प्रकार से ज्ञान युक्त होकर (जीवन्तः शरदः शतं) सौ वर्षों तक जीवित रहते हुये (पर्वतेन) प्रयत्नपूर्वक (मृत्युं तिरोधत्तां) मृत्यु को दूर रक्खें ॥ २ ॥

अथर्वा ऋषिः । यम देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।
ओम् विवस्वान्नो अभयं कृणोतु यः
सुत्रामा जीरदानुः सुदानुः ।
इहेमे वीरा बहवो भवन्तु
गोमदश्वव वन्मय्यस्तु पुष्टम् ॥ ३ ॥

(अ० कां० १८ । सू० ३ । मं० ६१) ॥

अर्थ—(विवस्वान् नः) यम हमें (अभयं कृणोतु यः) निर्भय करे (सुत्रामा) भली भांति रक्षा करने वाला (जीरदानुः) प्राणदाता और (सुदानुः) कल्याण करने वाला है (इह इमे) इस घर में ये (बहवः वीराः) बहुत से वीर (भवन्तु) हों (मयि) मुझे (अश्ववत्) घोड़े और (गोमत्) गौओं की (पुष्टिं) पुष्टि (अस्तु) प्राप्त हो ।

॥ इति जातकर्म प्रकरणम् ॥

नामकरण संस्कारः

नाम चास्मैदद्युः ॥ १ ॥

अर्थ—(नाम च अस्मै) तथा इसका नाम (दद्युः) रक्खे ॥ १ ॥

घोषवदाद्यन्तरन्तः स्थमाभिनिष्ठानान्तं द्वयक्षरम् ॥ २ ॥

अर्थ—(घोषवत् आद्य) आदि में घोषवत् अक्षर (अन्तः अन्तस्थाम्) मध्य में अन्तस्थ वर्ण (अभिनिष्ठानान्तं) अभिनिष्ठानान्त अर्थात् विसर्जनीय अन्त में हो (द्वय अक्षरम्) दो अक्षर वाला नाम हो।

चतुरक्षरं वा ॥ ३ ॥

अर्थ—(चतुः अक्षरं वा) अथवा चार अक्षर का नाम रक्खे ॥ ३ ॥

द्वयक्षंर प्रतिष्ठाकामश्चतुरक्षरं ब्रह्मवर्चस कामः ॥ ४ ॥

अर्थ—(अद्वय अक्षरं) दो अक्षर का नाम प्रतिष्ठा की कामना से (चतुः अक्षंर) चार अक्षर का नाम (ब्रह्मवर्चस कामः) ब्रह्मवर्चस अर्थात् विशिष्ट विद्वान् होने की कामना से रक्खे ॥ ४ ॥

युग्मानि त्वेव पुंसाम्। ५ ॥

अर्थ—(युग्मानि तु एव पुंसाम) पुरुषों के नाम दो अक्षर के होने चाहिये।

अयुजानि स्त्रीणाम् ॥ ६ ॥

अर्थ—(अयुजानि) अयुग्म अक्षरों वाले नाम (स्त्रीणाम्) स्त्रियों के होने चाहिये ॥ ६ ॥

अभिवादनीय च समीक्षत तन्माता पितरौ विद्याता मोपनयनात् ॥ ७ ॥

(आश्वला ग० सू० १। १५। ४–१०)॥

अर्थ—(अभिवादनीय च समीक्षेत) अभिवादनीय अर्थात् जिससे अभिवादन किया जायेऐसा नाम रक्खे (तत् माता पितरौ) उस नाम को माता पिता ही (उपनयनात्) उपनयन पर्यन्त (विद्याताम्) जानें ॥ ७ ॥

तथा पारस्कर गृह्य सूत्र में—

दशम्यामुत्थाय ब्राह्मणान्भोजयित्वा पिता नाम करोति ॥ १ ॥

अर्थ—(दशम्याम् उत्थाय) दशवें दिन के पश्चात् (ब्राह्मणान् भोजयित्वा) ब्राह्मणों को भोजन कराकर (पिता नाम करोति) पिता संतान का नामकरण करता है ॥ १ ॥

द्वयक्षरं चतुरक्षरं वा घोषवदाद्यन्तरन्तः स्थं दीर्घाभिनिष्ठानान्तं कृतं कुर्यान्न तद्धितम् ॥ २ ॥

अर्थ—(द्वयक्षर वा चतुः अक्षरः) दो अक्षर वा चार अक्षर का (कृतं कुर्यात्) कृत् प्रत्ययान्त नाम रक्खे (न तद्धितम्) तद्धित परक नाम न रक्खे (घोषवत् आद्य) घोषवान् वर्ण आदि में हो (अन्तः अन्तस्थं) मध्य में अन्तस्थ वर्ण हों (दीर्घ अभि निष्ठानान्तं) अन्त में जिसके विसर्ग हो ॥ २ ॥

अयुजाक्षरमाकारान्तँ स्त्रियै तद्धितम् ॥ ३ ॥

अर्थ—(स्त्रियै) स्त्रियों का नाम (अयुज अक्षंर आकारान्तं) अयुज अक्षरों वाला अन्त में आकार युक्त तद्धितपरक होना चाहिये ॥ ३ ॥

शर्म ब्राह्मणस्य वर्म क्षत्रियस्य गुप्तेति वैश्यस्य ॥ ४ ॥

अर्थ—(ब्राह्मणस्य शर्म) ब्राह्मण के बालक का नाम शर्मा परक (वर्म क्षत्रियस्य) क्षत्रिय के बालक का नाम वर्मा परक तथा (गुप्त इति वैश्यस्य) वैश्य के बालक का नाम गुप्त परक रक्खे ॥ ४ ॥ (पार० गृ० सू० १। १७। १—४) ॥

इसी प्रकार गोभिलीय गृ० सू० २। ८। ८—१८ और शौनक गृह्य सूत्र में भी लिखा है।

ग घ ङ; ज झ ञ, ड ढ, ण, द; ध, न, ब, भ, म, ये स्पर्श वर्ण य र ल व ये चार अन्तस्थ वर्ण और ह एक ऊष्मा वर्ण, इतने अक्षर नाम में होने चाहियें और स्वरों में कोई भी स्वर हो जैसे भद्रसेन, देवदत्त, भव, भवनाथ, नागदेव, रुद्रदत्त हरिदेव इत्यादि। पुरुषों का समाक्षर नाम रखना चाहिये तथा स्त्रियों का विषमाक्षर नाम रक्खें। अन्त में दीर्घ स्वर और तद्धितान्त भी होवे जैसे श्री, ह्री, यशोदा, सुखदा, गान्धारी, सौभाग्यवती, कल्याण क्रोडा इत्यादि।

स्त्रियों के इस प्रकार के नाम कभी न रक्खे, उसमें प्रमाण

नर्क्ष वृक्ष नदी नाम्नीं नान्त्य पर्वत नाभिकाम्।
न पक्ष्यहि प्रेष्य नाम्नीं न च भीषण नामिकाम्॥ (मनु० ३। ९) ॥

अर्थ—(ऋक्ष) रोहिणी, रेवती इत्यादि (वृक्ष) चम्पा तुलसी इत्यादि (नदी) गङ्गा यमुना इत्यादि (पक्षी) कोकिला हंसा इत्यादि (अन्त्य) चाण्डाली इत्यादि (पर्वत) विन्ध्याचला हिमालया इत्यादि (अहि) सर्पिणी नागी इत्यादि (प्रेष्य) दासी किङ्करी इत्यादि (भयंकर) भीमा, भयंकरी, चण्डिका इत्यादि नाम निषिद्ध हैं।

"नामकरण" अर्थात् जन्म बालक का सुन्दर नाम रक्खे। नामकरण का काल, जिस दिन जन्म हुआ हो उस दिन से लेकर दश दिन तक छोड़कर ग्यारहवें दिन वा एक सौ एकवें दिन अथवा दूसरे वर्ष के आरम्भ में जिस दिन जन्म हुआ हो नाम रक्खे।

जिस दिन नाम रखना हो उस दिन प्रसन्नतापूर्वक इष्ट मित्र हितैषी सज्जनों को बुला यथावत् सत्कार कर क्रिया का आरम्भ यजमान अर्थात् बालक का पिता और पुरोहितादि ऋत्विज करें।

यज्ञ प्रकरण में लिखे प्रमाणे अर्थ सहित ईश्वर स्तुति प्रार्थनोपासना, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण का पाठ कर ऋत्विज वरण करें। सङ्कल्पोच्चारण पूर्वक आचमन तथा अङ्ग स्पर्श करें। अग्न्याधान पूर्वक यज्ञ आरम्भ कर सम्पूर्ण विधि करके घृत की चार आघारा वाज्यभागाहुति करके घृत की चार व्याहृति आहुति देवें। तत्पश्चात् "त्वन्नो अग्ने" आदि आठ मन्त्रों से अष्टाज्याहुति घृत की दें अर्थात् सब मिला के सोलह घृताहुति करें।

तत्पश्चात् बालक को किञ्चित् उष्ण शुद्ध सुगन्धित जल से स्नान करा सुकौमल शुद्ध वस्त्र से पोंछ शुद्ध वस्त्र पहिना कर उसकी माता यज्ञ वेदी के समीप बालक के पिता के पीछे से आ दक्षिण भाग में होकर बालक का सिर उत्तर दिशा में रख बालक को पति के हाथ में देकर स्त्री पुनः उसी प्रकार पति के पीछे से होकर पति के वाम भाग में पूर्वाभिमुख बैठे।

तत्पश्चात् पिता उस बालक का उत्तर में शिर दक्षिण में पैर करके पत्नी को देवे। पश्चात् जो उसी संस्कार के लिये कर्त्तव्य हो उस प्रधान होम को

करे। पूर्वोक्त प्रकार घृत और सब शाकल्य जो सिद्ध कर रक्खे, उसमें से प्रथम घृत का चमसा भर के—

"ओम् प्रजापतये स्वाहा" ॥

(गोभिलीय गृ० सू० प्रपा० २। खं० ८। सू० १२)॥

अर्थ—(प्रजापतये) प्रजापति के लिये (स्वाहा) यह सुहुत है।

इस मन्त्र से आहुति देकर पश्चात् जिस तिथि व जिस नक्षत्र में बालक का जन्म हुआ हो उस तिथि और उस नक्षत्र का नाम लेकर उस तिथि और उस नक्षत्र के देवता के नाम से चार आहुति देवें। अर्थात् एक तिथि, दूसरी तिथि के देवता, तीसरी नक्षत्र और चौथी नक्षत्र के देवता के नाम से, अर्थात् तिथि नक्षत्र और उनके देवताओं के नाम के अन्त में चतुर्थी विभक्ति का रूप और अन्त में स्वाहा लगाकर घृत की चार आहुति देवें। जैसे किसी बालक का जन्म प्रतिपदा और अश्विनी नक्षत्र में हुआ हो तो—

ओम् प्रतिपदे स्वाहा ॥ १ ॥

अर्थ—(प्रतिपदे) प्रतिपदा के लिये (स्वाहा) सुहुत है॥ १ ॥

ओम् ब्रह्मणे स्वाहा ॥ २ ॥

अर्थ—(ब्रह्मणे) ब्रह्म के लिये (स्वाहा) सुहुत है॥ २ ॥

ओम् अश्विन्यै स्वाहा ॥ ३ ॥

अर्थ—(अश्विन्यै) अश्विनी नक्षत्र के लिये (स्वाहा) सुहुत है॥ ३ ॥

ओम् अश्विभ्यां स्वाहा ॥ ४ ॥

अर्थ—(अश्विभ्यां) अश्वि देवता के लिये (स्वाहा) सुहुत है॥ ४ ॥

तत्पश्चात् यज्ञ प्रकरण में लिखे प्रमाणो घृत की चार आघारावाज्यभागाहुति देकर चार व्याहृति आहुति घृत की देवें। पश्चात् घृत अथवा मोहन भोग की स्विष्टकृत् मन्त्र "ओम् यदस्य कर्मणो"० से स्विष्टकृत् आहुति देकर "ओम् प्रजापतये स्वाहा" मन्त्र से, मन्त्र को मन में बालकर मौन रहकर प्राजापत्य आहुति देवें। पश्चात् ओम् सर्वं वै पूर्णं स्वाहा॥ मन्त्र तीन बार उच्चारण कर तीन बार में पूर्णाहुति करें।

तत्पश्चात् माता बालक को लेकर आसन पर पति के वाम भाग में पूर्वाभिमुख बैठे और पिता बालक के नासिका द्वार से बाहर निकलते हुये वायु का स्पर्श करके—

देवश्रवा ऋषिः। प्रजापतिर्देवताः। आर्ची पङ्क्तिः छन्दः, भुरिक् साम्नी पङ्क्तिः छन्दः। पञ्चमः स्वरः।

ओम् कोऽसि कतमोऽसि कस्यासि को नामासि।
यस्य ते नामामन्महि यं त्वा सोमेनातीतृपाम्।
भूर्भुवः स्वः। सु प्रजाः प्रजाभिः स्याꣳसुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः॥

(य० ७। २९)॥

अर्थ—हे बालक ! तू (कोऽसि) कौन है (कतमोऽसि) कौन सा है (कस्य असति) किसका है (को नामासि) क्या नाम है (यस्य ते) जिसका अर्थात् तेरा (नाम अमन्महि) हमने नाम रक्खा है और (यं त्वा) जिस तुझे (सोमेन) दुग्ध रूपी सोम से (अतीतृपाम्) अति तृप्त किया है हे (भूः भुर्वः स्वः) सर्वाधार, सर्वदुःख विनाशक, सुख स्वरूप परमात्मन् ! मैं (सुप्रजाः) सुयोग्य प्रजा से (प्रजाभिः) प्रजावान् होऊं (सुवीरः) सुवीरों से (वीरैः) युक्त होऊं (सुपोषः) सुपोषण की वृत्ति से (पोषैः) पोषण करने वाला होऊं॥

ओम् कोऽसि कतमोऽस्येषो ऽस्यमृतोऽसि।
आहस्पत्यं मासं प्रविशासौ॥

(म०ब्रा० १। ५। १४, गोभिलीय गृ० सू० २। ८। १३)॥

अर्थ—हे बालक ! (कोऽसि) तू कौन है (कतमोसि) कौन सा है (येषो असि) तू जो है (अमृतः ऽसि) जीवनरूप है।

जो यह "असौ" पद है इसके पीछे बालक का निश्चित किया हुआ नाम अर्थात् जो पुत्र हो तो नीचे लिखे अनुसार दो अक्षर का वा चार अक्षर का घोष संज्ञक ओर अन्तःस्थवर्ण अर्थात् पाँचों वर्गों के दो-दो अक्षर छोड़कर तीसरा चौथा पाँचवां और य र ल व ये चार वर्ण अवश्य आवें।

जैसे देव अथवा जयदेव। ब्राह्मण कुल का हो तो देव शर्मा, क्षत्रिय कुल का हो तो देव वर्मा, वैश्य कुल का हो तो देव गुप्त और शूद्र कुल का हो

तो देवदास इत्यादि नाम रक्खें। यदि पुत्री हो तो एक तीन वा पाँच अक्षर का नाम रक्खे, श्री, ह्री, यशोदा, सुखदा, सौभाग्य प्रदा इत्यादि नामों को घोषित करके "असौ" पद के स्थान में बालक का नाम रखके पुनः उपर्युक्त मन्त्र "ओम् कोऽसि"ॐबोलना—

ओम् स त्वाह्ने परिददात्व हस्त्या रात्र्यै परिददातु रात्रिस्त्वा होरात्राभ्यां परिददात्वहोरात्रौत्वार्द्ध मासेभ्यः परिदत्तामर्द्ध मासास्त्वा मासेभ्यः परिददतु मासास्त्वर्त्तुभ्यः परिददत्त्वृतवस्त्वा संवत्सराय परिददतु संवत्सरस्त्वायुषे जरायै परिददातु असौ॥

(म०ब्रा० १।५।१५, गोभिलीय गृ० सू० २।८।१५)॥

इस मन्त्र से बालक को आशीर्वाददेवें। बालक का नाम रखकर संस्कार में आये मनुष्यों के सामने बालक का नाम घोषित करें। तत्पश्चात् महावामदेव्यगान करें। परमेश्वर की स्तुति प्रार्थनोपासना कर बालक को आशीर्वाद देवें कि—

"हे बालक ! त्वमायुष्मान् वर्च्चस्वी तेजस्वी श्रीमान् भूयाः"॥

अर्थ—हे (बालक) बालक (त्वम्) तू (आयुष्मान्) दीर्घायु (वर्चस्वी) वर्चस्वी तथा (श्रीमान्) श्रीमान् (भूयाः) हो।

पुत्री के लिये आशीर्वाद—

"हे बालिके ! त्वमायुष्मती वर्चस्विनी तेजस्विनी श्रीमती भूयाः"॥

आशीर्वाद देने के पश्चात् पुरोहितादि ऋत्विजों को पुष्कल दक्षिणा दें, परोपकारी दानशील सुशील वैदिक विद्वानों तथा धर्मपरायण संन्यासी आदि परोपकारी मनुष्यों को, स्वर्ण, रत्न, धन, पात्र, वस्त्र व अन्नादि दान देकर उनका सत्कार करें। प्रथम परमेश्वर का धन्यवाद कर फिर सबका धन्यवाद करें।

प्रथम पुरोहितादि ऋत्विजों को सादर भोजन करा दक्षिणा देकर अन्यान्य जिनको भोजन कराना हो करा सबको धन्यवादपूर्वक सादर विदा करें।

विभक्ति पूर्वक विवरण

तिथिः	तिथि के देवताः
१. ओम् प्रतिपदे स्वाहा।	१. ओम् ब्रह्मणे स्वाहा।
२. ओम् द्वितीयायै स्वाहा।	२. ओम् त्वष्ट्रे स्वाहा।
३. ओम् तृतीयायै स्वाहा।	३. ओम् विश्णवे स्वाहा।
४. ओम् चतुर्थ्यै स्वाहा।	४. ओम् यमाय स्वाहा।
५. ओम् पञ्चम्यै स्वाहा।	५. ओम् सोमाय स्वाहा।
६. ओम् षष्ठयै स्वाहा।	६. ओम् कुमाराय स्वाहा।
७. ओम् सप्तम्यै स्वाहा।	७. ओम् मुनिभ्यः स्वाहा।
८. ओम् अष्टम्यै स्वाहा।	८. ओम् वसुभ्यः स्वाहा।
९. ओम् नवम्यै स्वाहा।	९. ओम् शिवाय स्वाहा।
१०. ओम् दशम्यै स्वाहा।	१०. ओम् धर्माय स्वाहा।
११. ओम् एकादश्यै स्वाहा।	११. ओम् रुद्रेभ्यः स्वाहा।
१२. ओम् द्वादश्यै स्वाहा।	१२. ओम् वायवे स्वाहा।
१३. ओम् त्रयोदश्यै स्वाहा।	१३. ओम् कामाय स्वाहा।
१४. ओम् चतुर्दश्यै स्वाहा।	१४. ओम् अनन्ताय स्वाहा।
१५. ओम् पौर्णमास्यायै स्वाहा।	१५. ओम् विश्वे देवेभ्यः स्वाहा।
१६. ओम् अमावस्यायै स्वाहा।	१६. ओम् पितृभ्यः स्वाहा।

नक्षत्र	नक्षत्र के देवता
१. ओम् अश्विन्यै स्वाहा।	१. ओम् अश्विभ्यां स्वाहा।
२. ओम् भरण्यै स्वाहा।	२. ओम् यमाय स्वाहा।
३. ओम् कृतिकाभ्यः स्वाहा।	३. ओम् अग्नये स्वाहा।
४. ओम् रोहिण्यै स्वाहा।	४. ओम् प्रजापतये स्वाहा।
५. ओम् मृगशिरसे स्वाहा।	५. ओम् सोमाय स्वाहा।
६. ओम् आर्द्रायै स्वाहा।	६. ओम् रुद्राय स्वाहा।
७. ओम् पुनर्वसुभ्यः स्वाहा।	७. ओम् अदितये स्वाहा।

८. ओम् पुष्याय स्वाहा ।
९. ओम् आश्लेषायै स्वाहा ।
१०. ओम् मघायै स्वाहा ।
११. ओम् पूर्वा फाल्गुन्यै स्वाहा ।
१२. ओम् उत्तरा फाल्गुन्यै स्वाहा ।
१३. ओम् हस्ताय स्वाहा ।
१४. ओम् चित्रायै स्वाहा ।
१५. ओम् स्वातये स्वाहा ।
१६. ओम् विशाखाभ्यां स्वाहा ।
१७. ओम् अनुराधायै स्वाहा ।
१८. ओम् ज्येष्ठायै स्वाहा ।
१९. ओम् मूलाय स्वाहा ।
२०. ओम् पूर्वाषाढ़ायै स्वाहा ।
२१. ओम् उत्तराषाढ़ायै स्वाहा ।
२२. ओम् श्रवणाय स्वाहा ।
२३. ओम् धनिष्ठायै स्वाहा ।
२४. ओम् शतभिषजे स्वाहा ।
२५. ओम् पूर्वाभाद्रपदायै स्वाहा ।
२६. ओम् उत्तराभाद्रपदायै स्वाहा ।
२७. ओम् रेवत्यै स्वाहा ।

८. ओम् बृहस्पतये स्वाहा ।
९. ओम् सर्पेभ्यः स्वाहा ।
१०. ओम् पितृभ्यः स्वाहा ।
११. ओम् भगाय स्वाहा ।
१२. ओम् अर्यम्णे स्वाहा ।
१३. ओम् सवित्रे स्वाहा ।
१४. ओम् त्वष्ट्रे स्वाहा ।
१५. ओम् वायवे स्वाहा ।
१६. ओम् इन्द्राग्निभ्यां स्वाहा ।
१७. ओम् मित्राय स्वाहा ।
१८. ओम् इन्द्राय स्वाहा ।
१९. ओम् निर्ऋतये स्वाहा ।
२०. ओम् अदभ्य स्वाहा ।
२१. ओम् विश्वे देवेभ्यः स्वाहा ।
२२. ओम् विष्णवे स्वाहा ।
२३. ओम् वसुभ्यः स्वाहा ।
२४. ओम् वरुणाय स्वाहा ।
२५. ओम् अजैएकपदे स्वाहा ।
२६. ओम् अहिर्बुध्न्याय स्वाहा ।
२७. ओम् पूष्णे स्वाहा ।

॥ इति नामकरण प्रकरणम् ॥

निष्क्रमण संस्कारः

निष्क्रमण संस्कार जो बलक को घर से बाहर जहाँ का स्थान तथा वायु शुद्ध हो वहाँ का भ्रमण कराना होता है। उसका समय जब अच्छा देखे तभी बालक को बाहर घुमावें अथवा चतुर्थमास में तो अवश्य भ्रमण करावें। इसमें प्रमाण—

चतुर्थे मासि निष्क्रमणिका। सूर्यमुदीक्षयति तच्चक्षुरिति॥

(पार० गृ० सू० १।२२।५, ६)

अर्थ—(चतुर्थे मासि निष्क्रमणिका) चतुर्थ मास में निष्क्रमण संस्कार होता है (सूर्यम् उदीक्षयति, तच्चक्षुः इति) "तच्चक्षुर्देवहितम्" मन्त्र का उच्चारण करते हुये सूर्य दर्शन कराया जाता है।

जननाद्यस्तृतीयो ज्योत्स्नस्तस्य तृतीयायाम्॥

(गोभिलीय गृ० सू० २।८।१)॥

अर्थ—(जननात् यः तृतीयः ज्योत्स्नः तस्य तृतीयायाम्) बालक के जन्म के पश्चात् तीसरे शुक्ल पक्ष में तृतीया को निष्क्रमण संस्कार करें।

निष्क्रमण संस्कार के काल के विषय में दो मत हैं। एक बालक के जन्म के पश्चात् तीसरे शुक्ल पक्ष की तृतीया में निष्क्रमण संस्कार करें। द्वितीय बालक के जन्म से चतुर्थ मास में जिस तिथि में बालक का जन्म हुआ हो उस तिथि में निष्क्रमण संस्कार करें।

निष्क्रमण संस्कार वाले दिन सूर्योदय के पश्चात् प्रातःकाल बालक को सुगन्धित शुद्ध जल से स्नान करा कर, सुन्दर स्वच्छ वस्त्र पहिनाकर बालक की माता बालक को यज्ञशाला में लाकर पति के दक्षिण पार्श्व में होकर पति के सन्मुख आकर बालक का शिर उत्तर और छाती ऊपर रख के बालक को पति के हाथ में देवे। पुनः पति के पीछे की ओर घूमकर पति के वाम पार्श्व में पूर्वाभिमुख बैठ जावे। तत्पश्चात् पति—

ओम् यत्ते सुसीमे हृदयँ हितमन्तः प्रजापतौ।
वेदाहं मन्ये तद् ब्रह्म पौत्रमघं निगाम्॥ १॥

ओम् यत्पृथिव्याममृतं दिवि चन्द्रमसि श्रितम्।
वेदामृतस्याहं नाम गाहं पौत्रमघं निगाय्ँ रिषम्॥ २॥
ओम् इन्द्राग्नी शर्म यच्छतं प्रजायै मे प्रजापती।
यथायं न प्रमीयेत पुत्रो जनित्र्या अधि॥ ३॥

(मं० ब्रा० १। ९। १०-१२, गोभिलीय गृ० सू० २। ८। १५)॥

इन मन्त्रों से परमेश्वर की आराधना करके यज्ञ प्रकरण में लिखे प्रमाणे अर्थ सहित ईश्वर स्तुति प्रार्थनोपासना स्वस्तिवाचन तथा शान्तिकरण के मन्त्रों का पाठ कर, ऋत्विज वरण करके सङ्कल्पोच्चारण करें। आचमन तथा अङ्ग स्पर्श कर अग्न्याधान से लेकर पूर्णाहुति पर्यन्त समस्त विधि सम्पन्न कर, सन्तान को देखकर इन तीन मन्त्रों का उच्चारण करते हुए सन्तान के शिर को स्पर्श करें—

ओम् अङ्गादङ्गात्सम्भवसि हृदयादधि जायसे।
आत्मा वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम्॥ १॥
ओम् प्रजापतेष्ट्वा हिङ्कारेणावजिघ्रामि।
सहस्त्रायुषाऽसौ जीव शरदः शतम्॥ २॥
ओम् गवांत्वा हिङ्कारेणावजिघ्रामि।
सहस्त्रायुषाऽसौ जीव शरदः शतम्॥ ३॥

(पार० गृ० सू० १। १८। २-४)

अर्थ—(अङ्गात् अङ्गात् सम्भवसि) हे पुत्र ! तू मेरे अङ्गअङ्ग से उत्पन्न हुआ है (हृदयात् अधि जायसे) तू मेरे हृदय से उत्पन्न हुआ है (आत्मा वै पुत्र नामासि) पुत्र रूप में मेरा ही रूप है (स जीव शरदः शतम्) वह तू सैकड़ों वर्ष जी॥ १॥

अर्थ—(प्रजापतेः त्वा) प्राणों के लिये तुझे (हिङ्कारेण) हिङ्कारवत् (अवजिघ्रामि) सूंघता हूँ (असौ) वह तू (सहस्त्र आयुषा) दीर्घायु होकर (जीव शरदः शतम्) सैकड़ों वर्ष जी॥ २॥

अर्थ—(गवां हिङ्कारेण) गायें हिङ्कार शब्दपूर्वक जैसे अपने वत्सों को सूंघती हैं तद्वत् मैं तुझे सूंघता हूँ (सहस्त्रा आयुषा) दीर्घ जीवन युक्त (असौ) वह तू (जीव शरदः शतम्) सैकड़ों वर्ष जी॥ ३॥ *(पार० गृ० सू० १। १८। २-४)॥*

निम्नलिखित मन्त्र बालक के दक्षिण कान में जपें—

ओम् अस्मे प्रयन्धि मघवन्नृजीषिनिन्द्र रायो विश्व वारस्य भूरेः।
अस्मे शतँ शरदो जीवसेधा अस्मे वीराञ्छश्वत इन्द्रशिप्रिन्॥ १॥

(ऋ०म० ३। सू० ३६। मं० १०, पार० गृ० सू० १। १८। ४)॥

निम्नलिखित मन्त्र बालक के वाम कान में जपें—

ओम् इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानिधेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे।
पोषं रयीणाअरिष्टं तनूनां स्वाद्मानंवाचः सुदिनत्वमह्नाम्॥ २॥

(ऋ०म० २। सू० २१। मं० ६, पार० गृ० सू० १। १८। ५)॥

जप करके बालक का शिर उत्तर तथा पैर दक्षिण दिशा में कर पत्नी की गोद में देवें तथा मौन रहकर पत्नी के शिर का स्पर्श करें। तत्पश्चात् आनन्दपूर्वक उठ कर बालक को सूर्य का दर्शन करावे तथा वहाँ निम्नलिखित मन्त्र बोले—

ओम् तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतँ शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्॥

(य० अ० ३६। मं० २४, पार० गृ० सू० १। १७। ६)॥

इस मन्त्र को बोल के बालक को शुद्ध वायु में थोड़ा सा भ्रमण कराकर यज्ञशाला में आकर यथा पूर्व स्थान पर बैठकर आनन्दपूर्वक वामदेव्य गान करें। तत्पश्चात् पुरोहित तथा अन्य सब लोग निम्नलिखित वाक्य का उच्चारण करते हुए बालक को आशीर्वाद दें।

"त्वं जीव शरदः शतं वर्धमानः"।

अर्थ—हे बालक ! (त्वं) तू (वर्धमानः) उन्नति करता हुआ (जीव शरदः शतम्) सैकड़ों वर्ष जी।

पुरोहितादि ऋत्विजों को दक्षिणा दें तथा धर्मात्मा सत्पुरुष वैदिक विद्वानों, परोपकारी संन्यासियों को धन, अन्न, वस्त्र, पात्र आदि दान देकर सत्कार करें। प्रथम परमेश्वर का धन्यवाद कर फिर सबका धन्यवाद करें।

पुरोहितादि विद्वानों को प्रथम भोजन करा दक्षिणा दें सादर विदा करें। अन्यान्य जिनको भोजन कराना हो कराकर सब को विदा करें।

रात्रि में जब चन्द्रमा प्रकाशमान हो तब बालक की माता बालक को शुद्ध वस्त्र पहिनाकर पति के पीछे से दायीं ओर होकर पति के सन्मुख आकर बालक का शिर उत्तर तथा पैर दक्षिण में कर पति को देवे, पति बालक को देखते हुए निम्नलिखित मन्त्र का उच्चारण करे—

ओम् यददश्चन्द्रमसि कृष्णां पृथिव्या हृदयँ श्रितम्।
तदहं विद्वाꣳस्तत्पश्यन्माहं पौत्र मघँ रुदम्॥

(मं० ब्रा० १।५।१३, गोभिलीय गृ० सू० २।८।६-७)॥

इस मन्त्र से परमेश्वर की स्तुति कर बालक को चन्द्र दर्शन करावे; तत्पश्चात् बालक की माता पति के पीछे से दायीं ओर से पति के सन्मुख आकर बालक का शिर उत्तर की ओर तथा पैर दक्षिण की ओर कर पति के दक्षिण पार्श्व से पीछे होकर पति के वाम पार्श्व में आकर खड़ी रहे तथा पति पुनः "ओम् यददश्चन्द्रमसि" मन्त्र द्वारा परमेश्वर की स्तुति करे। तत्पश्चात् दोनों बालक सहित प्रसन्न वदन घर आवें।

॥ इति निष्क्रमण प्रकरणम् ॥

अन्न प्राशन संस्कारः

अन्न प्राशन संस्कार तभी करें जब बालक की शक्ति अन्न पचाने योग्य होवे ।

षष्ठे मास्यन्नप्राशनम् ॥ १ ॥ *(आश्वला गृ० सू० १ । १६ । १) ॥*

अर्थ—(षष्ठे) छठे (मास्यन्नप्राशनम्) मास बालक को अन्न प्राशन करावे ॥ १ ॥

घृतौदनं तेजस्कामः ॥ २ ॥ *(आश्वला गृ० सू० १ । १६ । ४) ॥*

अर्थ—(तेजः कामः) जिसको बालक तेजस्वी करना हो, वह (घृतौदनं) बालक को घृत और भात प्राशन करावे ॥ २ ॥

दधि मधु घृत मिश्रमन्नं प्राशयेत् ॥ ३ ॥

(आश्वला गृ० सू० १ । १६ । ५) ॥

अर्थ—अथवा (दधि मधु घृत मिश्रमन्नं) दही, मधु और घृत तीनों मिलाकर (प्राशयेत्) बालक को प्राशन करावे ॥ ३ ॥

जिस दिन बालक का जन्म हुआ हो, छठे मास उसी दिन अन्न प्राशन संस्कार करें और लिखे प्रमाणे भात सिद्ध करें—

ओम् प्राणाय त्वां जुष्टं प्रोक्षामि ॥ १ ॥

अर्थ—(त्वा प्राणाय) तुझे प्राण के लिये (जुष्टं प्रोक्षामि) प्रीतिपूर्वक स्वच्छ करता हूँ ॥ १ ॥

ओम् अपानाय त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ॥ २ ॥

अर्थ—(त्वा अपानाय) तुझे अपान के लिये (जुष्टं) प्रीतिपूर्वक (प्रोक्षामि) स्वच्छ करता हूँ ॥ २ ॥

ओम् चक्षुषे त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ॥ ३ ॥

अर्थ—(त्वा चक्षुषे) तुझे नेत्रों के लिये (जुष्टं प्रोक्षामि) प्रीतिपूर्वक स्वच्छ करता हूँ ॥ ३ ॥

ओम् श्रोत्राय त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ॥ ४ ॥

अर्थ—(त्वा) तुझे (श्रोत्राय) श्रोत्र के लिये (जुष्टं प्रोक्षामि) प्रीतिपूर्वक स्वच्छ करता हूँ॥ ४॥

ओम् अग्नये स्विष्टकृते त्वा जुष्टं प्रोक्षामि॥ ५॥

अर्थ—(त्वा) तुझे (स्विष्ट कृते) स्विष्टकृत् (अग्नये) अग्नि के लिये (जुष्टं) प्रीतिपूर्वक (प्रोक्षामि) स्वच्छ करता हूँ॥ ५॥

उपर्युक्त इन पाँच मन्त्रों का यही अभिप्राय है कि चावलों को धो शुद्ध करके अच्छे प्रकार बनाना और पकते हुए भात में यथा योग्य घृत भी डाल देना। जब अच्छे प्रकार पक जाये तब उतार थोड़ा ठन्डा हुए पश्चात् होम स्थाली में—

ओम् प्राणाय त्वा जुष्टं निर्वपामि॥ १॥

अर्थ—(त्वा) तुझे (प्राणाय) प्राण के लिये (जुष्टं निर्वपामि) प्रीतिपूर्वक रखता हूँ॥ १॥

ओम् अपानाय त्वा जुष्टं निर्वपामि॥ २॥

अर्थ—(त्वा) तुझे (अपानाय) अपान के लिये (जुष्टं निर्वपामि) प्रीतिपूर्वक रखता हूँ॥ २॥

ओम् चक्षुषे त्वा जुष्टं निर्वपामि॥ ३॥

अर्थ—(त्वा) तुझे (चक्षषे) नेत्रों के लिये (जुष्टं निर्वपामि) प्रीतिपूर्वक रखता हूँ॥ ३॥

ओम् श्रोत्राय त्वा जुष्टं निर्वपामि॥ ४॥

अर्थ—(त्वा) तुझे (श्रोत्राय) श्रोत्र के लिये (जुष्टं) प्रीतिपूर्वक (निर्वपामि) रखता हूँ॥ ४॥

ओम् अग्नये स्विष्टकृते त्वा जुष्टं निर्वपामि॥ ५॥

अर्थ—(त्वा) तुझे (स्विष्टकृते अग्नये) स्विष्टकृत् अग्नि के लिये (जुष्टं निर्वपामि) प्रीतिपूर्वक रखता हूँ॥ ५॥

इन पाँच मन्त्रों से कार्यकर्त्ता, यजमान और पुरोहित तथा ऋत्विजों को पात्र में पृथक्-पृथक् भात देके यज्ञ प्रकरण में लिखे प्रमाणे यजमान यज्ञ वेदी के

पश्चिम में पूर्वाभिमुख बैठे तथा पत्नी यजमान के वाम पार्श्व में बैठे। यजमान अर्थ सहित ईश्वर स्तुति प्रार्थनोपासना स्वस्तिवाचन तथा शान्तिकरण के मन्त्रों का पाठ कर, ऋत्विज् वरण कर सङ्कल्पोच्चारण करे। आचमन तथा अङ्ग स्पर्श कर अग्न्याधान करे। अग्न्याधान से आघारावाज्यभागाहुति पर्यन्त समस्त विधि कर घृत की चार व्याहृति आहुति देके पुनः उस पकाये हुए भात की आहुति निम्नलिखित मन्त्रों से देवे—

नेमो भार्गवः ऋषिः। वाक् देवताः। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः।
धैवतः स्वरः।

ओम् देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति।
सा नो मन्द्रेषमूर्जंदुहाना धेनुर्वाग स्मानुष सुष्टुतैतु स्वाहा॥ इदं वाचे-इदन्नमम॥ १॥

(ऋ० म० ८। सू० १००। मं० ११, पार० गृ० सू० १। १९। २)॥

अर्थ—(देवाः) विद्वानों ने (देवीं वाचं) दिव्य वाणी का (अजयन्त) उपदेश किया है (तां) उस वाणी को (विश्व रूपाः पशवः) नाना प्रकार के प्राणी (वदन्ति) बोलते हैं (सुष्टुता) भली भांति प्रशसित (सावाक्) वह वाणी (न मन्द्रः) हमारे लिये हर्षदायक होती है (इषम् ऊर्जम्) अन्न और बल (दुहाना धेनुः) दुग्धवती धेनु के समान (अस्मान्) हमको (उपएतु) प्राप्त हो॥ १॥

देवाः ऋषिः। अन्नपतिः देवताः। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः।

ओम् वाजो नोऽ अद्य प्र सुवाति दानं
वाजो देवाँ ऋतुभिः कल्पयाति।
वाजो हि मा सर्व वीरं जजान
विश्वा आशा वाजपतिर्जयेयँ स्वाहा॥ इदं वाचे वाजाय-इदन्नमम॥ २॥ *(य० अ० १८। मं० ३३, पार० गृ० सू० १। १९। ३)॥*

अर्थ—(वाजः अद्य नः) अन्न हमारी आज (दानं प्रसुवाति) दान शक्ति को उत्पन्न करता है (वाजः देवान्) अन्न ही विद्वानों को (ऋतुभिः कल्पयाति) ऋतु के अनुरूप सामर्थ्य देता है (वाजो हि मा) अन्न ने ही मुझे (सर्व वीरं) वीरों

वाला (जजान) बनाया है (विश्वा आशा) मैं सब दिशाओं में (वाजपतिः) ऐश्वर्य सम्पन्न (जयेयम्) होऊं (स्वाहा) इसलिये यह सुहुत है॥ (इदम् वाचे वाजाय) यह वाणी तथा अन्न के लिये है (इदन्नमम) मेरे लिये नहीं है॥ २॥

इन दो मन्त्रों से भात की आहुति देवे। तत्पश्चात् उसी भात में और घृत मिलाकर—

ओम् प्राणेनान्नमशीय स्वाहा॥ इदं प्राणाय-इदन्नमम॥ १॥

अर्थ—(प्राणेन) मैं प्राण के द्वारा (अन्नं अशीय) अन्न का उपभोग करूँ (स्वाहा) इसलिये यह सुहुत है॥ (इदं प्राणाय) यह प्राण के लिये है (इदन्नमम) यह मेरे लिये नहीं है॥ १॥

ओम् अपानेन गन्धानशीय स्वाहा॥ इदं अपानाय-इदन्नमम॥ २॥

अर्थ—मैं (अपानेन) अपान के द्वारा (गन्धं अशीय) गन्ध का भोग करूँ (स्वाहा) इसलिये यह सुहुत है॥ (इदं अपानाय) यह अपान के लिये है (इदन्नमम) यह मेरे लिये नहीं है॥ २॥

ओम् चक्षुषारूपाण्यशीय स्वाहा॥ इदं चक्षुषे-इदन्नमम॥ ३॥

अर्थ—मैं (चक्षुषा) नेत्र के द्वारा (रूपाणि अशीय) रूप का उपभोग करूँ (स्वाहा) इसलिये यह सुहुत है॥ (इदं चक्षषे) यह नेत्र के लिये है (इदं न मम) यह मेरे लिये नहीं है॥ ३॥

ओम् श्रोत्रेण यशोऽशीय स्वाहा॥ इदं श्रोत्राय-इदन्नमम॥ ४॥

(पार० गृ० सू० कां० १। कं० १९। सू० ४)॥

अर्थ—मैं (श्रोत्रेण) श्रोत्र से (यशः अशीय) यश का उपभोग करूँ (स्वाहा) इसलिये यह सुहुत है॥ (इदं श्रोत्राय) यह श्रोत्र के लिये है (इदं न मम) यह मेरे लिये नहीं है॥ ४॥

इन चार मन्त्रों से भात की आहुति देकर "ओम् भव तन्नः समनसौ"० आदि मन्त्रों से अष्टाज्याहुति देवें। इसके पश्चात् घृत की चार आघारावाज्यभागाहुति देकर घृत अथवा भात की एक स्विष्टकृत् आहुति देकर "ओम् प्रजापतये"० मन्त्र से मौन रहकर प्राजापत्याहुति देवे। "ओम् सर्वं वै पूर्णं स्वाहा" मन्त्र के तीन बार उच्चारणपूर्वकक्रमशः तीन बार पूर्णाहुति करें। तत्पश्चात् शेष भात में दही

और मधु मिलाकर सुगन्धित और बनाये हुये चावलों में पके हुए थोड़े चावल मिलाकर परमेश्वर की प्रार्थना करे—

नाभानेदिष्ठः ऋषिः । यजमान पुरोहितौ देवताः । उपरिष्टद् बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ।

ओम् अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः ।
प्र प्रदातारं तारिष ऊर्ज्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥

(य०अ० ११ । मं० ८३, आश्वला गृ० सू० १ । १६ । ५) ॥

अर्थ—हे (अन्नपते) अन्नपते परमात्मन् ! (अनमीवस्य) रोग रहित (शुष्मिणः) सुखदायक (अन्नस्य) अन्न को (नः देहि) हमें दीजिये (प्र प्रदातारं) विशेष कर उत्कृष्ट दान दाताओं को (तारिष) बढ़ाइये (द्विपदे चतुष्पदे) मनुष्य तथा पशुओं कों (ऊर्जम् धेहि) सामर्थ्य दीजिये ।

इस मन्त्र से प्रार्थना करके पूर्वोक्त भात थोड़ा थोड़ा बालक के मुख में देवे । यथा रुचि खिला बालक का मुख धोकर यज्ञ वेदी पर यथापूर्व स्थान में बैठ "महावामदेव्य" गान करें । परमेश्वर का प्रथम धन्यवाद कर, सभी पधारे हुए स्त्री पुरुषों का धन्यवाद कर ईश्वस्तुति प्रार्थनोपासना के मन्त्रों से परमेश्वर की प्रार्थना करके—

"त्वमन्नपतिरन्नादो वर्धमानोभूयाः" ।

अर्थ—(त्वम् अन्नपतिः) हे अन्नपति ! आपकी कृपा से यह बालक (अन्नादः) इस अन्न के सेवन द्वारा (वर्धमानः) उन्नति को (भूयाः) प्राप्त हो ।

इस वाक्य द्वारा बालक को आशीर्वाद देकर पुरोहितादि ऋत्विजों को दक्षिणा देवें । धर्मात्मा सदाचारी वैदिक विद्वानों, परोपकारी सद्गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ एवम् संन्यासियों को स्वर्ण, धन, रत्न, अन्न, वस्त्र एवम् पात्रादि दान देकर उनका सत्कारकरे ।

पुरोहितादि ऋत्विजों, विद्वानों एवम् संन्यासियों को प्रथम भोजन करा दक्षिणा दें । अन्य जिनको भोजन करनाना हो भोजन करा, सबको सादर विदा करें ।

॥ इति अन्न प्राशन प्रकरणम् ॥

चूड़ा कर्म (चौल) प्रकरणम्।

यह आठवां संस्कार चूड़ा कर्म (चौल) है जिसको केशाच्छेदन या मुण्डन संस्कार भी कहते हैं।

तृतीये वर्षे चौलम्॥ १॥ *(आश्वला गृ० सू० १। १७। १)॥*

अर्थ—(तृतीये वर्षे) बालक का तीसरे वर्ष में (चौलम्) चौल कर्म अर्थात् मुण्डन संस्कार करना चाहिये॥ १॥

उत्तरतोऽग्ने व्रीहियव मास तिलानां पृथक् पूर्णशरावाणि निदधाति॥ २॥ *(आश्वला गृ० सू० १। १७। २)॥*

अर्थ—(उत्तरत: अग्ने) अग्नि के उत्तर में (पृथक् पूर्ण शरावाणि) पृथक्-पृथक् शराबे में पूर्ण (व्रीहि मास यव तिलानां) चावल उड़द जौ तथा तिल (निदधाति) भरकर रक्खे॥ २॥

साम्वत्सरिकस्य चूड़ाकरणम्॥ *(गोभिलीय गृ० सू० २। ८। १७)॥*

अर्थ—(साम्वत्सरिकस्य) बालक के एक वर्ष का होने पर (चूड़ा करणाम्) चूड़ा कर्म अर्थात् मुण्डन संस्कार करना चाहिये।

यह चूड़ा कर्म अर्थात् मुण्डन संस्कार बालक के जन्म से एक वर्ष में अथवा तीसरे वर्ष में करना चाहिये। उत्तरायण काल शुक्ल पक्ष में जिन दिन आनन्द मङ्गल हो उस दिन बालक का मुण्डन संस्कार कर।

संस्कार वाले दिन प्रात:काल सुन्दर यज्ञ वेदी बना, यज्ञ वेदी के चारो ओर आसन बिछा कर, यज्ञ पात्र, शाकल्य, घृत तथा समिधादि रख, यज्ञ प्रकरण में लिखे प्रमाणे अर्थ सहित ईश्वर स्तुति प्रार्थनोपासना, स्वस्ति वाचन तथा शान्ति करण के मन्त्रों का पाठ करे। तत्पश्चात् पृथक्-पृथक् चार शराबों में चावल जौ उड़द तथा तिल पूर्ण भरकर वेदी के उत्तर रक्खे। आचमन तथा अङ्ग स्पर्श कर अग्न्याधान से लेकर जल सिञ्चन तक सम्पूर्ण विधि कर आघारावाज्यभागाहुति चार घृत की देवें। "ओम् भूर्भूव: स्व:। अग्न आयूंषि"० आदि चार मन्त्रों से चार घृत की आहुति देकर "ओम् त्वन्नो अग्ने वरुणास्य"० आदि आठ मन्त्रों से अष्टाज्यांहुति देवे। पुन: घृत की चार आघारावाज्यभागाहुति

देकर चार व्याहृति आहुति घृत की देवें। घृत, मोहन भोग, भात, शीर, लड्डू अथवा अन्य स्थालीपाक की एक स्विष्टकृत् आहुति देकर "ओम् प्रजापतये स्वाहा" मन्त्र से मौन रहकर प्राजापत्याहुति देवें। "ओम् सर्व ँवै पूर्ण स्वाहा" मन्त्र का क्रमशः तीन बार उच्चारण करते हुए तीन बार क्रमशः पूर्णाहुति करे।

तत्पश्चात् बालक का पिता यज्ञवेदी के उत्तर में यज्ञ वेदी से पृथक् पूर्वाभिमुख बैठ परमात्मा का ध्यान करके, नाई की ओर प्रथम देखकर—

अथर्वा ऋषिः। सवितादवो देवताः। पुरोविराडतिशक्वरी गर्भा चतुष्पदा जगती छन्दः। धैवतः स्वरः।

ओम् आयमगन्त्सविता क्षुरेणोष्णेन वाय उदके नेहि।
आदित्या रूद्रा वसव उन्दन्तु सचेतसः सोमस्य राज्ञो वपत प्रचेतसः॥

(अथर्व० कां० ६। सू० ६८ मं० १, गोभिलीय गृ० सू० २। ९। १०)॥

अर्थ—(सविता) हे परमेश्वर ! (आयमगन्तक्षुरेण) छुरे के साथ यह नापित आया है (वायो) वायु तुल्य (उदकेन उष्णोन) किञ्चित् उष्ण जल सहित (एहि) आ (आदित्या रूद्रा वसव) आदित्य रूद्र तथा वसु (उन्दन्तु) बालक के शिर को गीला करें (सचेतयः) ध्यानपूर्वक (राज्ञः प्रचेतसः) इस बालक के शिर के शोभायमान केशों को (वपत) मूंड दो।

इस मन्त्र का जप करके पिता बालक के पृष्ठ में बैठ बालक को पूर्वाभिमुख बिठा किञ्चित् उष्ण जल और किञ्चित् ठन्डा जल दोनों दो पात्रों में लेकर—

ओम् उष्णेनवाय उदकेनेहि॥ *(पार० गृ० सू० २। १। ४)॥*

अर्थ—(उष्णेन वाय) उष्ण वायु तुल्य (उदकेन एंहि) जल के साथ आ।

ओम् उष्णेन वाय उदके नैधि॥

(आश्वला गृ० सू० १। १७। ६, गोभिलीय गृ० सू० २। १। ६)॥

अर्थ—(उष्णेन वाय) उष्ण वायु तुल्य (उदकेन एधि) जल ला।

"ओम् वाय उदकेनेहि"० मन्त्र का उच्चारण कर दोनों पात्रों का जल एक पात्र में मिला, पश्चात् थोड़ा जल और मक्खन अथवा दही की मलाई लेकर—

अथर्वा ऋषिः। सवितादयो मन्त्रोक्ताः देवताः। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः।

ओम् अदितिः श्मश्रुः वपत्वाप उन्दन्तु वर्चसा।
चिकित्सतु प्रजापतिं दीर्घायुत्वाय चक्षसे॥

(अथर्व० का० ६। सू० ६८। मं० २, आश्वला गृ० सू० १। १३। ७)॥

अर्थ—(अदितिः) तीक्ष्ण धार युक्त अखण्डित क्षुरा (श्मश्रु) बालों को (वपतु) काटे (वर्चसा) तीक्ष्णता से (आपः) जल से (उन्दन्तु) केशों को गीला करे (प्रजापतिः) परमात्मन् (दीर्घायु त्वाय चक्षसे) तुझे दीर्घ जीवन देखने के लिये (चिकित्सतु) रोग रहित रक्खें॥ १॥

ओम् सवित्रा प्रसूता दैव्या आप उन्दन्तु ते तनूं दीर्घायुत्वाय वर्चसे॥ २॥

(पार० गृ० सू० २। १। ९)॥

अर्थ—(सवित्रा प्रसूता) सूर्य से उत्पन्न (दैव्या आपः) दिव्य जल (दीर्घायु त्वाय वर्चसे) दीर्घ तथा वर्चस्वी जीवन के लिये (ते तनूं उन्दन्तु) तेरे शिर को गीला करें।

इन दो मन्त्रों का उच्चारण कर बालक के शिर के बालों में तीन बार हाथ फेरकर जल से केशों को भिगोवे। तत्पश्चात् कंघे से केशों को सुधार कर इकट्ठा करे अर्थात् बिखरे न रहें। तत्पश्चात्—

ओम् ओषधे त्रायस्वैनम्॥ *(गोभिलीय गृ० सू० २। ९। १४)॥*

अर्थ—(ओषधे) हे कुशरूपी ओषधे (एनम्) इस बालक की (त्रायस्व) रक्षा कर।

इस मन्त्र को बोल के तीन दर्भ लेके दायीं ओर के केश समूह को हाथ से दबाकर—

ओम् विष्णोर्दंष्ट्रोऽसि॥

(मं० ब्रा० १। ६। ४, गोभिलीय गृ० सू० २। ९। १३)॥

अर्थ—(विष्णोः) हे क्षुरा ! तू विष्णु का (दंष्ट्रोऽसि) तेजस्वी शस्त्र है।

इस मन्त्र का उच्चारण कर क्षुरे की धार को देख कर—

नारायण ऋषिः। रूद्रो देवताः। भुरिज्जगती छन्दः। निषाद स्वरः।
ओम् शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्ते ऽअस्तु मा मा हिँसीः॥ *(य० ३। ६३, पार० गृ० सू० २। १। ११)॥*

अर्थ—हे क्षुरे ! (शिवो नामासि) तू सुख रूप है (ते पिता स्वधिति) तेरा जनक कठोर लोहा है (नमः ते) हम तेरा प्रयोग करते हैं (मा) तू मुझे (मा हिंसीः) पीड़ित मत कर।

इस मन्त्र का उच्चारण कर क्षुरे को दाहिने हाथ में लेवे। तत्पश्चात्—

ओम् स्वधिते मैनँ हिँसीः॥ *(आश्वला गृ० सू० १। १७। ९)॥*

अर्थ—(स्वधिते) हे लोह निर्मित क्षुरे ! (एनम्) इस बालक को (मा हिंसीः) पीड़ित मत कर।

नारायण ऋषिः। रूद्रो देवताः। भुरिज्जगती छन्दः। निषाद स्वरः।
ओम् निवर्त्तयाम्यायुषे ऽन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सु प्रजा स्त्वाय सुवीर्याय॥ *(य० अ० ३। मं० ६३, पार० गृ० सू० २। ११)*

अर्थ—हे बालक ! (आयुशे) दीर्घ जीवन के लिये (अन्नाद्याय) अन्न सेवन के लिये (प्रजननाय) प्रजनन शक्ति सम्पन्न होने के लिये (रायः पोषाय) धन द्वारा पोषण करने के लिये (सु प्रजाः त्वाय) तेरे सुप्रजावान होने के लिये (सुवीर्याय) तथा वीर्यवान होने के लिये (निवर्त्तयामि) तुझे केश मुक्त करता हूँ।

इन दो मन्त्रों का उच्चारण कर उसे क्षुरे और उन कुशाओं को केशों के समीप लाके—

अथर्वा ऋषिः। सविता देवताः। अति जगती गर्भात्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः।
ओम् येना वपत्सविता क्षुरेण सोमस्य राज्ञो वरुणस्य विद्वान्।
तेन ब्रह्माणो विद्वान् वपतेदमस्य गोमानश्वावान्यमस्तु प्रजावान्॥

(अथर्व० कां० ६। सू० ६८। मं० ३, पार० गृ० सू० २। १। ११)॥

अर्थ—(ब्रह्माणः) हे विद्वानों ! (येन क्षुरेण) जिस क्षुरे से (सविता विद्वान्) समझदार नाई (सोमस्य राज्ञः) सुशील विद्वानों, राजाओं तथा (वरुणस्य) श्रेष्ठ जनों का (अवपत्) मुण्डन करता है (तेन) उसी तीक्ष्ण क्षुरे से (अस्य) इस बालक के (इदम्) शिर को (वपत्) मूंडो जिससे (अयम्) यह बालक (गोमान्) गोधन वाला (अश्ववान्) अश्व धन वाला तथा (सुप्रजावान्) बहुत प्रजा वाला (अस्तु) हो।

इस मन्त्र का उच्चारण कर कुश और केश दोनों युक्ति से पकड़ कर बीच में से दक्षिण के केशों को काटे। यदि क्षुरे के स्थान पर कैंची से केशों को काटे तो भी उचित है। शमी वृक्ष के पत्ते तथा गोबर भी प्रथम ला रखने चाहियें। काटे हुए केश कुश और शमीपत्र, सब को सन्तान का पिता और माता एक शराबे में रक्खें, यदि कोई केश छेदन करते समय उड़ गया हो, उसको गोबर से उठाकर शराबा में रक्खें अथवा उसके पास रक्खें। तत्पश्चात् इसी भांति—

ओम् येनधाता बृहस्पतेरग्नेरिन्द्रस्य चायुषे ऽवपत्।
तेन त आयुषे वपामि सुश्लोकाय स्वस्तये॥

(आश्वला गृ० सू० १।१७।१२)।

अर्थ—(येन धाता) जिस प्रकार से परमात्मा ने (बृहस्पतेः अग्नेः इन्द्रस्य च) बृहस्पति, अग्नि तथा इन्द्र को (आयुषे) दीर्घ जीवन युक्त (अवपत) रचा है (तेन त आयुषे) उसी भांति तेरे दीर्घ जीवन (सुश्लोकाय) यश तथा (स्वस्तये) कल्याण के लिये (वपामि) मुण्डन करता हूँ।

इस मन्त्र का उच्चारण कर पूर्वोक्त विधि पूर्वक पुनः दक्षिण की ओर के केशों को काट कर शराबा में रक्खें तत्पश्चात् ओम् येन भूयश्च रात्र्य ज्योक् च पश्चति सूर्यम्ँ।

नोम् येन भूयश्च रात्र्यं ज्योक च पश्यातिसूर्य्यम्।
तेन त आयुषे वपामि सुश्लो कायस्वस्तये॥

(आश्वला गृ० सू० १।१७।१२)॥

अर्थ—(येन) जिस ईश्वर प्रदत्त सामर्थ्य से (भूयः) जीवात्मा निरन्तर पुनः पुनः (रात्र्यं) रात्रि और उसके पश्चात् (सूर्य) सूर्य को (ज्योक् च पश्यति) प्रलय

पर्यन्त देखता है (तेन त आयुषे) परमात्मा प्रदत्त उसी सामर्थ्य से तेरे दीर्घ जीवन (सुश्लोकाय) यश तथा (स्वस्तये) कल्याण के लिये (वपामि) तेरे केशों का मुण्डन करता हूँ।

इस मन्त्र का उच्चारण कर पुनः पूर्वोक्त विधिपूर्वक दक्षिण की ओर के केशों को काटकर शराबा में रक्खें। तत्पश्चात्—

ओम् येन पूषा बृहस्पतेर्वायोरिन्द्रस्य चावपत्।
तेन त वपामि ब्रह्मणा जीवातवे जीवनाय दीर्घायुष्ट्वाय वर्चसे॥

(गोभिलीय गृ० सू० २। ९। ११–१६)॥

अर्थ—(येन) जिससे (पूषा बृहस्पतेः वायोः इन्द्रस्य च) पूषा, बृहस्पति, वायु तथा इन्द्र (अवपत) स्वच्छ करते हैं (तेन त आयुषे) उससे तेरे जीवन को (जीवातवे जीवनाय) करने के योग्य कर्म करते हुए जीने के लिये तथा (दीर्घायुः) दीर्घजीवी होने के लिये (ब्रह्मणा) ज्ञान पूर्वक (त्वाय) तेरे (वर्चसे) तीक्ष्ण क्षुरे से (वपामि) केशों का मुण्डन करता हूँ।

इस मन्त्र का उच्चारण कर पुनः पूर्वोक्त विधि पूर्वक दक्षिण की ओर के केशों को चौथी बार काट कर शराबा में रक्खें। तत्पश्चात् "ओम् येनावपत्सविता" मन्त्र का उच्चारण कर वाम पार्श्व के केशों को प्रथम बार पूर्वोक्त विधिपूर्वक काटें। "ओम् येन धाता बृहस्पते" मन्त्र का उच्चारण कर वाम पार्श्व के केशों को द्वितीय बार पूर्वोक्त विधि पूर्वक काटें। "ओम् येन भूयश्च रात्र्य" मन्त्र का उच्चारण कर वाम पार्श्व के केशों को पूर्वोक्त विधि पूर्वक तृतीय बार काटें। "ओम् येन पूषा बृहस्पते" मन्त्र का उच्चारण कर वाम पार्श्व के केशों को पूर्वोक्त विधि पूर्वक चौथी बार काटे। तत्पश्चात् "ओम् येनावपत्सविता" मन्त्र का उच्चारण कर पृष्ठ भाग के केशों को पूर्वोक्त विधि पूर्वक प्रथम बार काटे। "ओम् येन धाता बृहस्पते" मन्त्र का उच्चारण कर पृष्ठ भाग के केशों को द्वितीय बार पूर्वोक्त विधि पूर्वक काटे। "ओम् येन भूयश्च रात्र्यं" मन्त्र का उच्चारण कर पृष्ठ भाग के केशों को पूर्वोक्त विधि पूर्वक तृतीय बार काटे। "ओम् येन पूषा बृहस्पते" मन्त्र का उच्चारण कर पृष्ठ भाग के केशों को पूर्वोक्त विधि पूर्वक चौथी बार काटे। तत्पश्चात् "ओम्

येनावपत्सविता"० मन्त्र का उच्चारण कर अग्र भाग के केशों को पूर्वोक्त विधि पूर्वक प्रथम बार काटे। "ओम् येन धाता बृहस्पते"० मन्त्र का उच्चारण कर अग्र भाग के केशों को पूर्वोक्त विधि पूर्वक द्वितीय बार काटे। "ओम् येन भूयश्च रात्र्यं"० मन्त्र का उच्चारण कर अग्र भाग के केशों को पूर्वोक्त विधि पूर्वक तृतीय बार काटे। परन्तु अग्र भाग के केशों को पूर्वोक्त विधि पूर्वक चौथी बार काटने में "ओम् येन पूषा बृहस्पते"० मन्त्र के स्थान पर—

ओम् येन भूरिश्चरा दिवं ज्योक् च पश्चाद्धि सूर्यम्।
तेन ते वपामि ब्रह्मणा जीवातवे जीवनाय सुश्लोकाय स्वस्तये॥

(पार० गृ० सू० २। १। १६)॥

अर्थ—(येन) जिस ईश्वर के सामर्थ्य से (भूरिः) निरन्तर (चरा) भ्रमणशील जीवात्मा (दिवं) द्युलोक में (च) और (पश्चात् हि) उसके पश्चात् सूर्यादि लोकों में (ज्योक्) प्रलय पर्यन्त घूमता रहता है (ब्रह्मणा) हे ज्ञानी बालक ! (सुश्लोकाय स्वस्तये) यश तथा कल्याण के लिये (तेन ते वपामि) परमात्मा प्रदत्त सामर्थ्य से तेरे केशों का मुण्डन करता हूँ।

इस मन्त्र का उच्चारण कर चौथी बार अग्र भाग के केश पूर्वोक्त विधि पूर्वक काटे। कटे हुए समस्त केशों को एकत्रित कर शराबा में रक्खें। तत्पश्चात्—

ओम् त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपश्य त्र्यायुषम्।
यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम्॥

(य० ३। ६२, पार० गृ० सू० २। १। १४)॥

इस मन्त्र का उच्चारण कर शिर के पीछे के केश एक बार पुनः काट कर इसी "ओम् त्र्यायुषं जमदग्ने"० मंत्र को बोलते जाना और ओंधे हाथ के पृष्ठ से बालक के शिर पर हाथ फेर कर मन्त्र पूरा हुए पश्चात् क्षुरा नाई के हाथ में देकर—

ओम् यत्क्षुरेण मर्चयता सुपेशसावप्ता वपसि केशान्।
शुन्धि शिरो मास्यायुः प्रमोषीः॥ *(आश्वला गृ० सू० २। १७। १५)॥*

अर्थ—हे नापित ! (वप्ता) केशों को काटने वाला तू (सुपेशसा) सुन्दर तेजयुक्त (यत् क्षुरेण) जिस क्षुरे से (केशान् वपसि) केशों को काटता है उसी क्षुरे से (शिरः शुन्धि) इस बालक के शिर का शोधन कर (अस्य आयुः) इसका जीवन (मा प्रमोषीः) न्यून मत कर।

इस मन्त्र का उच्चारण कर नापित से पथरी पर क्षुरे की धार कराकर, नापित से बालक का पिता कहे कि इस शीतोष्ण जल से बालक का शिर कोमल हाथों से अच्छे प्रकार भिगो। सावधानीपूर्वक कोमल हाथों से क्षौर कर। कहीं क्षुरा न लगने पावे। इतना कर के यज्ञ कुण्ड से उत्तर दिशा में नापित को ले जा उसके सम्मुख बालक को पूर्वाभिमुख बैठा कर जितने केश रखने हों उतने ही रक्खें। अथवा पाँचों ओर थोड़े-थोड़े केश रखावे अथवा किसी एक ओर के केश रक्खे, अथवा प्रथम बार सब केश कटवा देवें। दूसरी बार से केश रखने अच्छे होते हैं।

क्षौर कर्म सम्पन्न होने के पश्चात् मुण्डन किये हुए सब केश, दर्भ, शमीपत्र और गोबर को नाई जंगल में ले जा कड्ढ़ा खोद के उसमें डाल ऊपर मिट्टी से दाब देवे। अथवा गोशाला नदी अथवा तालाब के किनारे पर गड्ढ़ा खोद कर केशादि को उसमें दाब देवे। नाई के साथ किसी आदमी को भेज देवें, वह नापित से यह कार्य करा लेवे। तत्पश्चात् यज्ञ कुण्ड के समीप उत्तर में पूर्व रक्खे हुए देने योग्य पदार्थ अर्थात् शराबों में रक्खा अन्न नापित को देवे। यथोचित वस्त्र तथा धन भी नापित को देवें।

बालक का क्षौर कर्म हुए पश्चात् मक्खन अथवा दही की मलाई हाथ में ले बालक के शिर पर मल बालक को शुद्ध सुगन्धित किञ्चित् उष्ण जल से स्नान करा उत्तम वस्त्र पहिना कर बालक का पिता बालक को अपने पास ले यज्ञ वेदी के पश्चिम में शुभासन पर पूर्वाभिमुख बैठ आनन्दपूर्वक वामदेव्य गान करे। तत्पश्चात् सब लोग परमात्मा का ध्यान कर बालक को आशीर्वाद दें—

"ओम् त्वं जीव शरदः शतं वर्धमानः"।

अर्थ—हे बालक ! (त्वं) तू (वर्धमानः) उन्नति करते हुए (जीव शरदः शतं) सैकड़ों वर्ष तक जीवित रह।

इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक बालक को आशीर्वाद देवें। पुरोहितादि ऋत्विजों को पुष्कल दक्षिणा देकर धर्मात्मा परोपकारी वैदिक विद्वानों एवम् विरक्त, संन्यासी आदि को धन, अन्न, वस्त्र व पात्रादि दान देवें। प्रथम परमेश्वर का धन्यवाद कर आये हुए सब लोगों का धन्यवाद करें। पुरोहितादि ऋत्विजों को प्रथम भोजन करा अन्य जिनको भोजन कराना हो करा पुरोहितादि ऋत्विजों एवम् विद्वानों को पुनः दक्षिणा देकर धन्यवाद पूर्वक सबको सादर विदा करें।

॥ इति चूड़ा कर्म प्रकरणम् ॥

कर्ण वेध संस्कारः।

अत्र प्रमाणम्—कर्ण वेधो तृतीय पञ्चमे वा॥ १॥

(पार० गृ० सू० २। २)

यह कात्यायन गृह्य सूत्र १-२ का वचन है।

इसमें प्रमाण—

बालक के कर्ण वा नासिका के वेध का समय जन्म से तीसरे वा पाँचवें वर्ष का उचित है।

जो दिन बालक के कर्ण वा नासिका के वेध का निश्चित किया हो, उस दिन बालक को प्रातःकाल शुद्ध एवम् सुगन्धित जल से स्नान करा, सुन्दर वस्त्रालङ्कार धारण करा पूर्व निर्मित यज्ञ वेदी के समीप घृत, समिधाऐं, हवन सामग्री एवम् स्थालीपाक आदि रख यज्ञवेदी के पश्चिम में पत्नी को वाम भाग में रखकर शुभासन पर पूर्वाभिमुख बैठकर यज्ञ प्रकरण में लिखे प्रमाणे अर्थ सहित ईश्वर स्तुति प्रार्थनोपासना, स्वस्तिवाचन तथा शान्तिकरण के मन्त्रों का पाठ कर ऋत्विज् वरण कर सङ्कल्पोच्चारण करें। आचमन, अङ्ग स्पर्श तथा अग्न्याधान से लेकर आघारावाज्यभागाहुति पर्यन्त सम्पूर्ण विधि कर "ओम् भूर्भुवः स्वः। अग्न आयूंषि"० आदि चार मन्त्रों से घृत की चार आज्याहुति देकर "ओम् त्वन्नोऽग्ने वरुणस्य"० आदि आठ मन्त्रों की अष्टाज्याहुति देवें। घृत की चार व्याहृति आहुति देकर घृत, भात अथवा मोहन भोग आदि से स्विष्टकृत् आहुति देकर मौन रहकर प्राजापत्याहुति देवें। तत्पश्चात् पूर्णाहुति करें।

तत्पश्चात् बालक के आगे कुछ खाने का पदार्थ वा खिलौना रख के—

गोतम ऋषिः। विद्वान्सो देवताः। निचृद् त्रिष्टुप् छन्दः।
धैवतः स्वरः।

ओम् भद्रं कर्णेभिः शृणुयामदेवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरै रङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभि व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥ १॥

(य० अ० २५। मं० २१)॥

अर्थ—हे (देवा) विद्वानों ! हम (कर्णोभिः) कानों से (भद्रं श्रृणुयाम) भद्र ही सुने (यजत्रा) सर्वत्र (अक्षभिः) आँखों से (भद्रं पश्येम) भद्र ही देखें (स्थिरै अङ्गैः) सुदृढ़ अङ्गों से युक्त (तुष्टु वांसः) परमात्मा की स्तुति पूर्वक (तनूभिः) शरीर से (देवहितं) देवों को प्राप्त हितकारी (यत् आयुः) जो आयु है (व्यशेमहि) उसे ही प्राप्त करूँ।

इस मन्त्र का उच्चारण करके चरक सुश्रुत आदि वैद्यक ग्रन्थों के जानने वाले सद्वैद्य के हाथ से बालक का कर्ण वा नासिका वेध करावें जो नाड़ी आदि को बचाकर बेध कर सके। पूर्वोक्त मन्त्र के उच्चारण पूर्वक दक्षिण कान और—

भारद्वाजः ऋषिः। वीराः देवताः। निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः।
धैवतः स्वरः।

ओम् वक्ष्यन्ती वेदा गनी गन्ति कर्णं प्रियं सखायं परिषस्व जाना।
योषेव शिङ्क्ते वितताधि धन्वञ्ज्या इयँ समने पारयन्ती॥ २॥

(य० अ० २९। मं० ४०, पार० गृ० सू० क्रम १। १७)॥

अर्थ—हे वीर पुरुषों ! (अधि धन्वन् वितता) धनुष में फैली हुई (समने) संग्राम में (पारयन्ती) विजय देने वाली (इयं ज्या) यह प्रत्यञ्चा (वक्ष्यन्ती इव इत) कुछ कहती हुई हो वैसे (कर्णं अगनी गन्ति) धनुर्धारी के कर्ण प्रदेश को अतिशय करके प्राप्त होती और (प्रियं सखायम्) सखा रूप अपने प्रिय पति को (परिवस्व जाना) आलिंगन करने वाली (योषा इव शिङ्क्ते) नारी के तुल्य कुछ अव्यक्त शब्द करती है उसे तुम (वेद) जानो॥ २॥

इस मन्त्र का उच्चारण कर वाम कर्ण का वेध करे। तत्पश्चात् वही वैद्य उन छिद्रों में शलाका रक्खे कि जिससे छिद्र पूर न जावें और ऐसी ओषधि उव पर लगावे जिससे कान पकें नहीं और शीघ्र अच्छे हो जावें। तत्पश्चात् वैद्य को धनादि देकर सादर विदा कर वेदी के पश्चिम में शुभासन पर आनन्दपूर्वक पूर्वाभिमुख बैठ कर महावामदेव्य गान करें।

तत्पश्चात् पुरोहितादि सब लोग—

"ओम् त्वं श्रृणुयाम शरदः शतं वर्धमानः"।

अर्थ—हे बालक ! (त्वम्) तू (श्रृणुयाम) सुनते हुए (शरदः शतं) सैकड़ों वर्ष पर्यन्त (वर्धमानः) वृद्धि को प्राप्त हो।

इस मन्त्र के उच्चारण पूर्वक बालक को आशीर्वाद दें। पुरोहितादि ऋत्विजों को दक्षिणा देकर धर्मात्मा परोपकारी वैदिक विद्वानों तथा संन्यासियों को धन, रत्न, अन्न, वस्त्र तथा पात्रादि दान देकर उनका सत्कार करें। प्रथम पुरोहितादि ऋत्विजों एवम् विद्वानों को भोजन करा दक्षिणा दे अन्य जिन्हें भोजन करानाहो भोजन करा सबको धन्यवाद पूर्वक सादर विदा करें।

॥ इति कर्ण बेध प्रकरणम् ॥

उपनयन संस्कारः।

उप नाम समीपे, नयन अर्थात् होना।

अत्र प्रमाणानि इसमें प्रमाण—

अष्टमे वर्षे ब्राह्मणामुपनयेत्॥ १॥

गर्भाष्टमे वा॥ २॥

एकादशे क्षत्रियम्॥ ३॥

द्वादशे वैश्यम्॥ ४॥

आषोडशाद् ब्राह्मणणस्यानतीतः कालः॥ ५॥

आद्वाविंशात्क्षत्रियस्य, आचतुर्विंशाद्वैश्यस्य,

अत ऊर्ध्वं पतित सावित्रीका भवन्ति॥ ६॥

(आश्वला० १। १९। १—६)

इसी प्रकार पारस्करादि गृह्य सूत्रों का भी मत है।

अर्थ—जिस दिन जन्म हुआ हो, अथवा जिस दिन गर्भ रहा हो उससे आठवें वर्ष ब्राह्मण के, जन्म वा ग्यारहवें वर्ष में क्षत्रिय के और जन्म वा गर्भ से बारहवें वर्ष में वैश्य के बालक का यज्ञोपवीत करें, तथा ब्राह्मण के सोलह वर्ष, क्षत्रिय के बाईस वर्ष और वैश्य के बालक का चौबीस वर्ष से पूर्व यज्ञोपवीत होना चाहिये। यदि उक्त काल में यज्ञोपवीत न हो वे पतित माने जावें॥ १—६॥

श्लोक—ब्रह्मवर्चस कामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे।
राज्ञे बलार्थिनः षष्ठे वैश्यं ये ह्यार्थिनोऽष्टमे॥

(मनु० २। २७)

यह मनुस्मृति का वचन है कि जिसको शीघ्र विद्या बल और व्यवहार करने की इच्छा हो और बालक पढ़ने में संमर्थ हुए हों तो ब्राह्मण के बालक का जन्म वा गर्भ से पाँचवें, क्षत्रिय के बालक का जन्म वा गर्भ से छठे और वैश्य के बालक का जन्म वा गर्भ से आठवें वर्ष में यज्ञोपवीत करें;

परन्तु यह बात तभी सम्भव है कि जब बालक की माता और पिता का विवाह पूर्ण ब्रह्मचर्य के पश्चात् हुआ होवे। उन्हीं के ऐसे उत्तम बालक श्रेष्ठ बुद्धि और शीघ्र समर्थ बढ़ने वाले होते हैं। जब बालक का शरीर और बुद्धि ऐसी हो कि अब यह पढ़ने के योग्य हुआ, तभी यज्ञोपवीत करा देवें !

यज्ञोपवीत का समयउत्तरायण सूर्य और वसन्ते ब्राह्मणोमुपनयेत्। ग्रीष्मे राजन्यम्। शरदि वैश्यम्। सर्वकालमेके ॥

(शतपथ ब्राह्मण, २। १। ३। ५)

अर्थ—ब्राह्मण के बालक का वसन्त, क्षत्रिय के बालक का ग्रीष्म और वैश्य के बालक का शरद् ऋतु में यज्ञोपवीत करें। अथवा सब ऋतुओं में उपनयन हो सकता है औरप्रातःकाल ही इसका समय है।

पयोव्रतो ब्राह्मणो, यवागू व्रतो राजन्यः आमिक्षा व्रतो वैश्यः ॥

(गोभिलीय गृ० सू० २। १०। ७)

यह शतपथ ब्राह्मण का वचन है।

जिस दिन बालक का यज्ञोपवीत करना हो, उससे तीन दिन अथवा एक दिन पूर्व तीन वा एक व्रत बालक को कराना चाहिये। उन व्रतों में ब्राह्मण का बालक एक बार वा अनेक बार दुग्ध पान करे। क्षत्रिय का बालक "यवागू" यव को मोटा दल, गुड़ के साथ पतली जैसे कि कढ़ी होती है, वैसी बनाकर पिये और "आमिक्षा" अर्थात् जिसको "श्रीखण्ड" या "सिखण्ड" कहते हैं वैसी जो दही चौगुना दूध एक गुना तथा यथोचित खाण्ड और केशर डालकर कपड़े में छान कर बनाया जाता है, उसको वैश्य कुल का बालक पीकर व्रत करे। जब जब बालकों को भूख लगे तब तब तीनों वर्णों के बालक इन तीनों पदार्थों का सेवन करें अन्य पदार्थ कुछ न खावें पीवें।

विधि—जिस दिन उपनयन करना हो, उसके पूर्व दिन सब सामग्री एकत्रित कर यथा तथ्य शोधन आदि कर लेवें। और उस दिन यज्ञ प्रकरण में लिखे प्रमाणे सब सामग्री यज्ञ कुण्ड के समीप रख प्रातःकाल बालक का क्षौर कराकर, सुगन्धित एवम् शुद्ध जल से स्नान करा कर उत्तम वस्त्र पहिना पिता वा आचार्य बालक को मिष्ठान्नादि स्वादिष्ट पदार्थ खिलाकरमुखादि जलसे स्वच्छ कर यज्ञ

वेदी के पश्चिम में सुन्दर आसन पर पूर्वाभिमुख बैठावें। और बालक का पिता और ऋत्विजगण यज्ञ प्रकरण में लिखे प्रमाणे अपने-अपने लिये बिछाये गये सुन्दर आसन पर बैठ यथावत् आचमन एवम् अङ्ग स्पर्श क्रिया करें तथा बालक को करावें।

पश्चात् कार्यकर्त्ता बालक के मुख से—

ब्रह्मचर्यमागाम् ब्रह्मचार्यसानि॥ *(पार० गृ० सू० २। २। ६)*

अर्थ—(ब्रह्मचर्यम् आगम) ब्रह्मचर्य को प्राप्त होऊं (ब्रह्मचारि असानि) ब्रह्मचारी होऊं॥

बालक से ये वचन बुलवाकर आचार्य—

आचार्य उसको कहते हैं जो साङ्गोपाङ्ग वेदों के शब्द अर्थ सम्बन्ध और क्रिया का जानने वाला, छल कपट रहित, अति प्रेम से सब को विद्या का दाता, परोपकारी, तन मन धन से सब को सुख देने में जो तत्पर महाशय, पक्षपात रहित और सत्योपदेष्टा सर्व हितैषी धर्मात्मा तथा जितेन्द्रिय होवे।

ओम् येनेन्द्राय बृहस्पतिर्वासः पर्यदधादमृतम्।
तेन त्वा परिदधाभ्यायुषे दीर्घायुत्वाय बलाय वर्चसे॥

(पार० गृ० सू० २। २। ७)॥

अर्थ—हे ब्रह्मचारी ! (येन) जिस प्रकार (बृहस्पतिः) बृहस्पति ने (इन्द्राय) इन्द्र के लिये (अमृतवासः) उत्तम वस्त्र (पर्यदधात्) धारण कराता है (आयुषे) जीवन को (दीर्घायुत्वाय) दीर्घ जीवन युक्त होने के लिये (बलाय) बलवान तथा (वर्चसे) वर्चस्वी होने के लिये (तेन त्वा) तुझे वस्त्र (परिदधामि) धारण कराता हूँ।

इस मन्त्र का उच्चारणकर आचार्य ब्रह्मचारी को सुन्दर वस्त्र और उपवस्त्र धारण करावे। तत्पश्चात् बालक आचार्य के सन्मुख बैठे और यज्ञोपवीत हाथ में लेकर—

ओम् यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः॥ १॥
यज्ञोपवीत मसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपह्यामि॥ २॥

(पार० गृ० सू० २। २। ११)

अर्थ—हे ब्रह्मचारी ! (यज्ञोपवीतं) यह यज्ञोपवीत (परम पवित्रं) परम पवित्र है (प्रजापतेः यत्) प्रजापति ने जिसकी (सहजं पुरस्तात्) प्राचीनकाल से सहज रूप में व्यवस्था की है यह (आयुष्यं अग्रयं) आयु को बढ़ाने वाला (प्रतिमुञ्च शुभ्रम्) निर्मलता के प्रति निष्ठावान करने वाला तथा (यज्ञोपवीतं) यह यज्ञोपवीत (बलं अस्तु तेजः) बल और तेज का देने वाला है॥ १॥

(यज्ञोपवीतं असि) हे यज्ञोपवीत ! तू तेजोमय है (त्वा यज्ञस्य) तुझे यज्ञीय कर्म के लिये (यज्ञोपवीतेन) यज्ञोपवीत से (उपनाह्यामि) युक्त करता हूँ।

इन मन्त्रों को बोलकर आचार्य यज्ञोपवीत को ब्रह्मचारी के बायें कन्धे के ऊपर कण्ठ के पास से शिर को बीच में निकाल दायें हाथ के नीचे बगल में निकाल कटि पर्यन्त धारण करावे।

तत्पश्चात् आचार्य ब्रह्मचारी को अपनी दायीं ओर साथ बैठाकर अर्थ सहित ईश्वर स्तुति प्रार्थनोपासना, स्वस्तिवाचन तथा शान्तिकरण के मन्त्रों का पाठकर ऋत्विज वरणपूर्वक सङ्कल्पोच्चारण करें। यज्ञ प्रकरण में लिखे प्रमाणे आचमन, अङ्ग स्पर्श तथा अग्न्याधान से लेकर आघारावाज्यभागाहुति पर्यन्त सम्पूर्ण विधिकर, चार व्याहृति आहुति तथा अष्टाज्याहुति मिलकर सोलह आहुति घृत की देकर, पश्चात् प्रधान होम के लिये जो विशेष शाकल्य मोहन भोग आदि बनाया हो ब्रह्मचारी के हाथ से उसकी आहुतियाँ निम्नलिखित मन्त्रों से दिलावें।

ओम् भूर्भुवः स्वः। अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः।
आरे बाधस्व दुच्छूनां स्वाहा॥ इदमग्नये-पवमानाय-इदन्नमम
॥१॥ *(य० अ० १९। मं० १८)*

ओम् भूर्भुवः स्वः। अग्नि ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः।
तमीमहे महागयं स्वाहा॥ इदमग्नये पवमानाय-इदन्नमम॥ २॥
(य० अ० २६। मं० ८)

ओम् भूर्भुवः स्वः। अग्ने पवस्व स्वपा अस्मेवर्चः सुवीर्यम्।
दधद्रयिं मयि पोषं स्वाहा॥ इदमग्नये पवमानाय-इदन्नमम॥ ३॥
(ऋ० मं० ९। सू० ६६। मं० १९-२१)

ओम् भूर्भुवः स्वः। प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव।
यत्कामास्ते जुहूमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणां स्वाहा॥ इदं प्रजापतये-इदन्नमम॥ ४॥

(ऋ० मं० १०। सू० १२१। मं० १०, यजु० अ० २३। मं० ६५)

चार आज्याहुति देवें। तत्पश्चात्—

ओम् अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयम्।
तेनर्ध्यासमिदमहमनृतात्सत्यमुपैमि स्वाहा॥ इदमग्नये-इदन्नमम॥ १॥ *(मं० ब्रा० १। ६। ९, गोभिलीय गृ० सू० २। १०। १६)*

अर्थ—(अग्ने व्रतपते) हे व्रतों के रक्षक अग्नि ! (व्रतं चरिष्यामि) मैं व्रत का पालन करूंगा (तत् ते ब्रवीमि) इस हेतु आपसे निवेदन करता हूँ (तत् शकेयम्) कि मैं व्रत के पालन में समर्थ होऊं (तेन) व्रत के पालन से मैं (ऋध्यासम्) ऐश्वर्य सम्पन्न होऊं (इदम् अहम्) इसके पालन से मैं (अनृतात्) असत्य से हटकर (सत्यं उपैमि) सत्य को प्राप्त होऊँ (स्वाहा) इसके लिये यह सुहुत है। (इदं अग्नये) यह अग्नि के लिये है (इदं न मम) यह मेरे लिये नहीं है॥ १॥

ओम् वायो व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयम्।
तेनर्ध्यासमिदमहमनृतात्सत्यमुपैमि स्वाहा॥ इदं वायवे-इदन्नमम॥ २॥ *(मं० ब्रा० १। ६। १०, (गोभिलीय गृ० सू० २। १०। १६)*

अर्थ—हे (वायो व्रतपते) व्रतों के रक्षक वायु ! (व्रतं चरिष्यामि) मैं व्रत का पालन करूंगा (तत् ते प्रब्रवीमि) इस हेतु आपसे निवेदन करता हूँ (तत् शकेयम्) कि मैं व्रत के पालन में समर्थ होऊं (तेन) व्रत के पालन से मैं (ऋध्यासम्) ऐश्वर्य सम्पन्न होऊं (इदम् अहम्) इसके पालन से मैं (अनृतात्) असत्य से हटकर (सत्यं उपैमि) सत्य को प्राप्त होऊँ (स्वाहा) इसके लिये यह सुहुत है। (इदं वायवे) यह वायु के लिये है (इदं न मम्) यह मेरे लिये नहीं है॥ २॥

ओम् सूर्य व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयम्। तेनर्ध्यासमिदमहमनृतात् सत्यमुपैमि स्वाहा॥ इदं सूर्याय-इदन्नमम॥ २॥

(मं० ब्रा० १। ६। ११, (गोभिलीय गृ० सू० २। १०। १६)

अर्थ—हे व्रतों के रक्षक सूर्य ! मैं व्रत का पालन करूंगा इसलिये, आपसे निवेदन करता हूँ कि मैं व्रत के पालन करने में समर्थ होऊँ। व्रत के पालन से मैं ऐश्वर्यवान होऊँ। व्रत के पालन करने से मैं असत्य से हटकर सत्य को प्राप्त होऊँ। इसके लिये यह सुहुत है। यह सूर्य के लिये है मेरे लिये नहीं है॥ ३॥

ओम् चन्द्र व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयम्। तेनर्ध्यासमिदमहमनृतात्सत्यमुपैमि स्वाहा॥ इदं चन्द्राय-इदन्नमम॥ २॥

(मं० ब्रा० १। ६। १२, (गोभिलीय गृ० सू० २। १०। १६)

अर्थ—हे व्रतों के रक्षक चन्द्र ! मैं व्रत का पालन करूंगा। इसलिये, आपसे निवेदन करता हूँ कि मैं व्रत के पालन करने में समर्थ होऊँ। व्रत के पालन से मैं ऐश्वर्यवान होऊँ। व्रत के पालन करने से मैं असत्य से हटकर सत्य को प्राप्त होऊँ। इसके लिये यह सुहुत है। यह चन्द्र के लिये है मेरे लिये नहीं है॥ ४॥

ओम् व्रतानां व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तत्ते प्रब्रवीमि तच्छकेयम्। तेनर्ध्यासमिदमहमनृतात्सत्यमुपैमि स्वाहा॥ इदमिन्द्राय-इदन्नमम॥ २॥

(मं० ब्रा० १। ६। १३, (गोभिलीय गृ० सू० २। १०। १६)॥

अर्थ—हे व्रतों के रक्षक ! मैं व्रत का पालन करूंगा। इसलिये, आपसे निवेदन करता हूँ कि मैं व्रत के पालन करने में समर्थ होऊँ। व्रत के पालन से मैं ऐश्वर्यवान होऊँ। व्रत के पालन करने से मैं असत्य से हटकर सत्य को प्राप्त होऊँ। इसके लिये यह सुहुत है। यह इन्द्र के लिये है, मेरे लिये नहीं है॥ ५॥

इन पाँच मन्त्रों से पाँच आज्याहुति दिलानी। इसके पश्चात् यज्ञ प्रकरण में लिखे प्रमाणे घृत की चार आघारावाज्यभागाहुति, घृत की चार व्याहृति आहुति

देकर घृत भात अथवा स्थाली पाक की एक स्विष्टकृत आहुति तथा मौन रहकर प्राजापत्याहुति ब्रह्मचारी के हाथ से दिलाकर पश्चात् पूर्णाहुति करनी।

इसके पश्चात् आचार्य यज्ञकुण्ड के उत्तर में पूर्वाभिमुख बैठं तथा ब्रह्मचारी आचार्य के सन्मुख पश्चिमाभिमुख बैठे। आचार्य ब्रह्मचारी की ओर देखकर—

ओम् आगन्त्रा समगन्महि प्रसुमर्त्यं युयोतन।
अरिष्टाः संचरेमहि स्वस्ति चरतादयम्॥

(मं० ब्रा० १।६।१४, गोभिलीय गृ० सू० २।१०।२२)

अर्थ—(आगन्त्र) ब्रह्मचर्य्य व्रत में आने वाले ब्रह्मचारी के साथ हम सब (समगन्महि) मेल कर चुके हैं (सुमर्त्य) अच्छे मनुष्यों से (प्र युयोतन) भली भांति युक्त कीजिये (अरिष्टाः) इस ब्रह्मचारी के सङ्कटों को (संचरेमहि) हम अपने ऊपर लेते हैं (अयम्) यह ब्रह्मचारी (स्वस्ति चरतात्) सुखपूर्वक विचरे।

आचार्य इस मन्त्र का जप करें।

माणवक वाक्यम्—ओम् ब्रह्मचर्यमागामुपमा नयस्व॥

(मं० ब्रा० ९।६।१६, गोभिलीय गृ० सू० २।१०।२०-२२)

अर्थ—(माणावक वाक्यम्) बालक बोले, (ब्रह्मचर्यम्) ब्रह्मचर्य व्रत को (आगाम्) स्वीकार कर चुका हूँ (मा) मुझे (उपनयस्व) अपने समीप रखिये।

आचार्योक्तिः को नामासि॥

(मं० ब्रा० १।६।१७, गोभिलीय गृ० सू० २।१०।२२)

अर्थ—(आचार्य उक्तिः) आचार्य बोले (को नामासि) क्या नाम है?

माणवकोक्ति— एतन्नामस्मि॥ *(मं० ब्रा० १।६।१)*

अर्थ—(माणवक उक्तिः) बालक बोले (एतन्नामास्मि) मेरा अमुक नाम है।

एतन्नामास्मि पद के स्थान में ब्रह्मचारी अपना नाम बोले। तत्पश्चात्—

त्रिशिरास्त्वराष्ट्रः सिन्धुद्वीपो वा अम्बरीषः ऋषिः। आपो देवताः। गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

ओम् आपो हिष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्ज्जे दधातन।
महे रणाय चक्षसे॥ १॥

अर्थ—हे (आपः) जलो ! (मयोभुवः) सुखदायक (हिष्ठाः) निश्चित रूप से होते हो (मेह रणाय) महान् जीवन संग्राम को (चक्षसे) देखने के लिये (ता) वह सुख तथा (ऊर्ज्जे) ऊर्ज्जा शक्ति (नः) हमको (दधातन) धारण कराइये ॥ १ ॥

ओम् यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः ।
उशतीरिव मातरः ॥ २ ॥

अर्थ—हे (आपः) जलो ! (उशती मातरः इव) माता के दुग्ध के तुल्य स्मृद्धिकारक (यः वः) जो तुम्हारा (शिव तमः रसः) अत्यन्त कल्याणकारी रस है (तस्य इहनः) इसे हमें यहाँ (भाजयंत) उपलब्ध कराओ ॥ २ ॥

ओम् तस्मा अरंगमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ ।
आपो जनयथा च नः ॥

(ऋ० मं० १० । सूं० ९ । मं० १-३, पार० गृ० सू० २ । २ । १४)

अर्थ—हे (आपः) जलो ! (यस्य) जिस अन्न के (क्षयाय) निवास के लिये तुम ओषधियों को (जिन्वथ) रस युक्त करते हो (तस्मा) उसी अन्न के लिये हम (अरम्) पर्याप्त रूप से (वः) तुम्हें (गमाम) प्राप्त करते हैं (च) और (नः) हमको (जनयथ) प्रजनन सामर्थ्य से सम्पन्न कीजिये ।

इन तीन मन्त्रों का उच्चारण कर आचार्य ब्रह्मचारी की दक्षिण हस्ताञ्जलि शुद्ध जल से भरे । तत्पश्चात् आचार्य अपनी दक्षिण हस्ताञ्जलि शुद्ध जल से भरकर—

श्यावाश्वआत्रेय ऋषिः । सविता देवताः । निचृदनुष्टुप् छन्दः । निषाद स्वरः ।

ओम् तत्सवितुर्वृणीमहे वयं देवस्य भोजनम् श्रेष्ठं सर्वधातमम् तुरं भगस्य धीमहि ॥

(ऋ० मं० ५ । सू० ८२ । मं० १, आश्वला० गृ० सू० १ । २० । ४)

अर्थ—(वयं) हम सब (सवितुः) जगत् के उत्पत्ति कर्त्ता (देवस्य) परमात्मा की (तत् श्रेष्ठं भोजनं) उस प्रशंसित नियमादि रूप भोजन वस्तु को (वृणीमहे) ग्रहण करते हैं और उसी (भगः त) सेवनीय परमात्मा के (सर्वधातमम्) सब भोग्य

पदार्थों के देने वाले (तुरं) शत्रुनाशक व्यवस्थापक ईश्वर को (धीमहि) धारण करें।

इस मन्त्र का उच्चारण कर आचार्य अपनी हस्ताञ्जलि का जल ब्रह्मचारी की अञ्जलि में छोड़ कर ब्रह्मचारी की हस्ताञ्जलि अङ्गुष्ठ सहित पकड़ कर—

श्रौततथ्यो दीर्घतमा ऋषिः। यज्ञो देवताः। निचृदार्षी पंक्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः।

ओम् देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे ऽश्विनौ बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां हस्तं गृह्णाभ्यसौ॥

(यजु० अ० ५। मं० २६, आश्वला० गृ० सू० १। २०। ४)

मन्त्र के असौ पद के स्थान पर आचार्य ब्रह्मचारी का नाम बोंले।

अर्थ—हे ब्रह्मचारी (सवितुः) सबको उत्पन्न करने वाले परमात्मा की (प्रसवे) सृष्टि में तुझे (अश्विनौ) अश्विनी की (बाहुभ्यां) भुजाओं के तुल्य (पूष्णः) पोषक (हस्ताभ्यां) हाथों से (हस्तं ग्रह्णामि) तेरा हाथ पकड़ता हूँ।

इस मन्त्र का उच्चारण कर आचार्य ब्रह्मचारी की हस्ताञ्जलि का जल नीचे रक्खे पात्र में छुड़वा देवे। इसी प्रकार दूसरी बार "ओम् आपो हिष्ठा"० "ओम् यो वः शिवतमो"० तथा "ओम् तस्मा अरं गमाम"० इन तीन मन्त्रों को बोलकर आचार्य ब्रह्मचारी की दक्षिणा हस्ताञ्जलि जल से भरें तथा आचार्य भी अपनी दक्षिण हस्ताञ्जलि जल से भरकर "ओम् तत्सवितु र्वृणीमहे"० इस मन्त्र का उच्चारण कर अपनी हस्ताञ्जलि का जल ब्रह्मचारी की हस्ताञ्जलि में छोड़कर ब्रह्मचारी की हस्ताञ्जलि अङ्गुष्ठ सहित पकड़कर—

ओम् सविता ते हस्तमग्रमीत असौ।

इस मन्त्र का उच्चारण कर आचार्य ब्रह्मचारी की हस्ताञ्जलि का जल नीचे रखे पात्र में छुड़वा दे। पुनः इसी प्रकार आचार्य तीसरी बार भी कर, ब्रह्मचारी की हस्ताञ्जलि अङ्गुष्ठ सहित पकड़ कर "ओम् सवितातें" मन्त्र के स्थान पर—

ओम् अग्निराचार्यस्तव असौ॥

(मं० ब्रा० १। ६। १५, आश्वला० गृ० सू० १। २०। ५)

इस मन्त्र का उच्चारण कर ब्रह्मचारी की हस्ताञ्जलि का जल नीचे रखे पात्र में छुड़वा दे। मन्त्र में "असौ" के स्थान पर ब्रह्मचारी का संबोधनान्त नामोच्चरण करें।

अर्थ—हे ब्रह्मचारी ! (तब आचार्यः अग्निः) तेरा आचार्य अग्नि है।

आचार्य ब्रह्मचारी सहित बाहर आकर सूर्य के सम्मुख—

ओम् देव सवितरेष ते ब्रह्मचारी ते गोपाय समामृता ॥१॥

(आश्वला० गृ० सू० १। २०। ५)

अर्थ—(सवितः देव) हे सविता देव ! (ते ब्रह्मचारी) आपका ब्रह्मचारी (ते गोपाय) तेरे लिये रक्षणीय है (समामृत) वह मृत्यु को प्राप्त न हो। इस तथा—

ओम् तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्।
पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ श्रृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरद शतं भूयश्च शरदः शतात्॥२॥

(य० अ० ३६। मं० २४)

इन दो मन्त्रों को पढ़कर ब्रह्मचारी को सूर्य दर्शन करा ब्रह्मचारी सहित यज्ञ मण्डप में आ यज्ञवेदी के उत्तर में बैठकर—

विश्वामित्र ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः।
ओम् युवा सुवासाः परिवीत आगात्स उ श्रेयान् भवति जायमानः॥

(ऋ० मं० ३। मं० ४, आश्वला० गृ० सू० १। २०। ८)

अर्थ—(युवा सुवासाः) सुन्दर वस्त्रों से सज्जित युवक (परिवीत) यज्ञोपवीत धारण किये हुए (आ अगात्) सम्मुख उपस्थित है (जायमानः) इस प्रकार से युक्त (स उ श्रेयान्) यह कल्याण करने वाला (भवति) होता है।

ओम् सूर्यस्यावृतमन्वावर्त्तस्व असौ॥

(गोभिलीय गृ० सू० २। १०। २८)

अर्थ—हे ब्रह्मचारी ! (सूर्यस्य) सूर्य तुल्य आचार्य की (अनु आ) अनुकूल आचरण पूर्वक (आवृतम् वर्त्तस्व) प्रदक्षिणा कर।

इन मन्त्रों का उच्चारण कर ब्रह्मचारी आचार्य की प्रदक्षिणा करके आचार्य के सन्मुख बैठे। तत्पश्चात् आचार्य ब्रह्मचारी के दक्षिण कन्धे पर अपने दक्षिण हाथ से स्पर्श करे और दक्षिण हाथ को वस्त्र से आच्छादित करके—

ओम् प्राणानां ग्रन्थिरसिमाविस्रसोऽन्तक इदम् ते परिददामि अमुम्॥ १॥

(गोभिलीय गृ० सू० २। १०। २८)

हे नाभि ! तू (प्राणानां ग्रन्थरसि) प्राणों का केन्द्र है (मा विस्रसः) अपने स्थान से च्युत मत हो (अन्तक) दुःखों का नाश करने वाले परमात्मन्! (इदं ते) इस ब्रह्मचारी को आपको (परिददामि) सौंपता हूँ॥ १॥

इस मन्त्र को बोलने के पश्चात् —

ओम् अहुर इदं ते परिददामि, अमुम्॥ २॥

अर्थ—(अहुर) हे वायु के प्रेरक परमात्मन् ! (इदं ते परिददामि) इस ब्रह्मचारी को आपको सौंपता हूँ॥ २॥

इस मन्त्र से उदर पर और—

ओम् कृशन इदं ते परिददामि, अमुम्॥ ३॥

अर्थ—(कृशन) हे अग्नि के प्रेरक परमात्मान् ! (इदं ते परिददामि) इस ब्रह्मचारी को आपको सौंपता हूँ (अमुम) इस नाम के ब्रह्मचारी को उद्दिष्ट करके मैं कहता हूँ॥ ३॥

इस मन्त्र से हृदय और—

ओम् प्रजापतये त्वा परिददामि असौ॥ ४॥

अर्थ—(असौ) हे ब्रह्मचारी ! (नाम) (त्वा) तुझे (प्रजापतये) प्रजापति को (परिददामि) सौंपता हूँ॥ ४॥

इस मन्त्र को बालकर दक्षिण स्कन्ध और—

ओम् देवाय त्वा सवित्रे परिददामि असौ॥ ५॥

अर्थ—(असौ) हे ब्रह्मचारी ! (नाम) (देवाय सवित्रे) सब जगत् के उत्पन्न करने वाले परमात्मा को (त्वा परिददामि) तुझे सौंपता हूँ॥ ५॥

(मं० ब्रा० १। ६। २१-२४, गोभिलीय गृ० सू० २। १०। २८, ३४)

इस मन्त्र को बोलकर आचार्य बायें हाथ से ब्रह्मचारी के बायें कन्धे पर स्पर्श करके ब्रह्मचारी के हृदय पर हाथ धरे—

विश्वामित्र ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः।

ओम् तंधीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्योऽमनसा देवयन्तः॥

(ऋ० मं० ३। सू० ८। मं० ४, आश्वला० गृ० सू० १। २०। ९)

अर्थ—(तं धीरासः) धैर्यवान् विद्वान् लोग (कवयः) ज्ञानी जन (स्वाध्यः) स्वाध्यायशील (मनसः देवयन्तः) मन से देवत्व प्राप्त (तं उन्नयन्ति) उसकी उन्नति करते हैं।

इस मन्त्र को बोलकर आचार्य ब्रह्मचारी के सन्मुख रहकर अपना दायां हाथ ब्रह्मचारी के दक्षिण वक्ष पर रखकर—

ओम् ममव्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनुचित्तं ते अस्तु।
मम वाचमेकमना जुषस्व बृहस्पतिष्ट्वा नियनक्तु मह्यम्॥

(पार० गृ० सू० का० २। कं० २। १६)

आचार्ययह प्रतिज्ञा मन्त्र बोले। पश्चात् ब्रह्मचारी को बोलने की आज्ञा दे। अर्थात्—

हे ब्रह्मचारी ! तेरे हृदय को मैं अपने आधीन करता हूँ, तेरा चित्त मेरे चित्त के सदा अनुकूल रहे और तू मेरी वाणी को एकाग्र चित्त हो प्रीतिपूर्वक सुनकर उसके अर्थ का सेवन किया कर और आज से तेरी प्रतिज्ञा के अनुकूल बृहस्पति स्वरूप परमात्मा तुझ को मुझ से युक्त करें।

इसी प्रकर ब्रह्मचारी भी आचार्य से प्रतिज्ञा करावे कि—

हे आचार्य ! आपके हृदय को मैं अपने कर्म अर्थात् उत्तम शिक्षा और विद्या की उन्नति में धारण करता हूँ। मेरे चित्त के अनुकूल आपका चित्त सदा रहे। आप मेरी वाणी को एकाग्रतापूर्वक सुनिये, बृहस्पति स्वरूप परमात्मा मेरे लिये आपको सदा नियुक्त रक्खे।

इस प्रकार दोनों प्रतिज्ञा करके—

आचार्योक्तिः—को नामासि?

आचार्य बोले—तेरा क्या नाम है?

ब्रह्मचार्योक्तिः—अहम्भोः। (एतन्नामास्मि अहम्भोः)

ब्रह्मचारी बोले—मेरा अमुक नाम है।

आचार्यः—कस्य ब्रह्मचार्य्यसि?

आचार्य—तू किसका ब्रह्मचारी है?

ब्रह्मचारीः—भवतः।

ब्रह्मचारी—आपका।

ओम् इन्द्रस्य ब्रह्मचार्य्यस्यग्निराचार्य स्तवा हमाचार्यस्तव असौ॥

(पार० गृ० सू० कां० २। कं० २। २१)

अर्थ—(असौ) हे ब्रह्मचारी ! (कस्य ब्रह्मचारी असि) तू किसका ब्रह्मचारी है (तव आचार्य अग्निः) तेरा आचार्य अग्नि है (अहम् आचार्यः तव) मैं तेरा आचार्य हूँ।

इस मन्त्र का उच्चारण कर आचार्य ब्रह्मचारी की रक्षा के लिये—

ओम् कस्य ब्रह्मचार्य्यसि, प्राणस्य ब्रह्मचार्य्यसि कस्त्वा कमुपनयतेकाय त्वा परिददामि॥ १॥
(आश्वला० १। २०। ७) ॥

अर्थ—हे ब्रह्मचारी ! (कस्य ब्रह्मचारी असि) तू किसका ब्रह्मचारी है (प्राणस्य ब्रह्मचारी असि) तू प्राण का ब्रह्मचारी है (कः त्वा कं उपनयते) किसके कौन तेरा उपनयन करता है (काय त्वा परिददामि) किसलिये तुझे सौंपता हूँ॥ १॥

ओम् प्रजापतये त्वा परिददामि॥

अर्थ—(त्वा) तुझको (प्रजापतये परिददामि) प्रजापति को सौंपता हूँ।

ओम् देवस्य त्वा सवित्रे परिददामि॥

अर्थ—(त्वा) तुझे (सवित्र देवस्य) सविता देव को (परिददामि) सौंपता हूँ।

ओम् अद्भ्यस्त्वोषधीभ्यः परिददामि॥

अर्थ—(त्वा) तुझे (अद्भ्यः ओशधीभ्यः) जल तथा ओषधियों को (परिददामि) सौंपता हूँ॥

ओम् द्यावा पृथिवीभ्यां त्वा परिददामि॥

अर्थ—(त्वा) तुझे (द्यावा पृथिवीभ्यां) द्यौ तथा पृथिवी को (परिददामि) सौंपता हूँ।

ओम् विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्य परिददामि॥

अर्थ—(त्वा) तुझे (विश्वेभ्यः देवेभ्य) विश्वेदेवों को (परिददामि) सौंपता हूँ।

ओम् सर्वेभ्यस्त्वा भूतेभ्यः परिददाभ्यरिष्टयै॥ २॥

(पार० गृ० सू० कां० २। कं० २। २१)

इन मन्त्रों को बोलकर आचार्य ब्रह्मचारी को शिक्षा करे कि प्राण आदि की रक्षा तथा विद्या प्राप्ति के लिये यत्नवान हो।

उपनयन संस्कार पूरा हुए पश्चात् यदि उसी दिन वेदारम्भ संस्कार करने का विचार पिता व आचार्य का हो तो उसी दिन करना और जो किसी अन्य दिन करने का विचार हो तो महावामदेव्य कर ब्रह्मचारी को आशीर्वाद देवें—

ओम् त्वं जीव शरदः शतं वर्द्धमानः।
आयुष्मान् तेजस्वी वर्चस्वी भूयाः॥

अर्थ—हे ब्रह्मचारी (त्वं) तुम (तेजस्वी वर्चस्वी) तेजस्वी, वर्चस्वी तथा (आयुष्मान् भूयाः) दीर्घजीवी होकर (वर्धमानः) उन्नति करते हुये (जीव शरदः शतं) सैकड़ों वर्ष तक जीवित रहे।

तत्पश्चात् ब्रह्मचारी आचार्यादि एवम् माता पितादिक को चरण स्पर्शपूर्वक नमस्ते कर अन्य सभी को नमस्ते करे। कार्यकर्त्ता प्रथम परमेश्वर का धन्यवाद कर पधारे हुए सभी सज्जनों का धन्यवाद करे।

पुरोहितादि ऋत्विजों को दक्षिणा देकर परोपकारी धर्मपराण वैदिक विद्वानों सद् गृहस्थों एवम् विरक्त संन्यासियों को धन अन्न वस्त्र पात्रादि दान देकर

उनका सत्कार करे। पुरोहितादि ऋत्विजों एवम् विद्वानों को प्रथम भोजन करा, दक्षिणा देकर अन्य जिनको भोजन कराना हो कराकर सबको सादर विदा करे।

उपनयन संस्कार के पश्चात् यदि उसी दिन वेदारम्भ संस्कार करे तो उसको वेदारम्भ संस्कार के आरम्भ में ईश्वर स्तुति प्रार्थनोपासना स्वस्तिवाचन और शान्तिकरण के मन्त्रों का पाठ करना आवश्यक नहीं है।

॥ इति उपनयन प्रकरणम्॥

वेदारम्भ संस्कारः।

सावित्री मन्त्र से लेकर साङ्गोपाङ्ग चारों वेदों के अध्ययन के लिये व्रत ग्रहण करना वेदारम्भ है।

वेद—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद।

उपवेद—आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्व वेद तथा अर्थ वेद।

वेदाङ्ग—शिक्षा, व्याकरण, कल्प, ज्योतिष, निरूक्त तथा छन्द।

उपाङ्ग—पूर्व मीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य, और वेदान्त।

समय—जो दिन उपनयन संस्कार का है वही वेदारम्भ का है। यदि उस दिन न हो सके अथवा करने की इच्छा न हो तो दूसरे दिन करें। यदि दूसरा दिन भी अनुकूल न हो तो एक वर्ष के भीतर किसी दिन करें।

विधि—वेदारम्भ संस्कार करने का जो दिन निश्चित कियाहो उस दिन विधिवत् वेदी बना यज्ञ वेदी को सजा तथा उसके चारों ओर सुन्दर आसन बिछा, समिधा, यज्ञपात्र, घृत, स्थालीपाक तथा सामग्री आदि प्रथम रख, यज्ञ प्रकरण में लिखे प्रमाणे यज्ञवेदी के पश्चिम में पिता अथवा आचार्य ब्रह्मचारी सहित ब्रह्मचारी को अपने उत्तर में रख सुन्दर आसन पर पूर्वाभिमुख बैठ अर्थ सहित ईश्वर स्तुति प्रार्थनोपासना, स्वस्तिवाचन तथा शान्तिकरण के मन्त्रों का पाठ कर, ऋत्विज वरण कर सङ्कल्पोच्चारण करें। ऋत्विज यथोचित स्थान पर बैठें। आचमन अङ्ग स्पर्श तथा अग्न्याधान से लेकर आघारावाज्यभागाहुति पर्यन्त सारी विधि कर घृत की चार व्याहृति आहुति तथा अष्टाज्याहुति आठ मिलकर सोलह आज्याहुति देने के पश्चात् प्रधान होमाहुति अर्थात् संस्कार विषयक आहुति दिलावे। पश्चात् घृत की चार व्याहृति आहुति, स्थालीपाक भात अथवा घृत की एक स्विष्टकृत् आहुति तथा एक प्राजापत्याहुति अर्थात् सब मिलकर छः आहुति ब्रह्मचारी के हाथ से दिलानी। इसके बाद—

ओम् अग्ने सुश्रवः सुश्रवसं मा कुरु।

ओम् यथा त्वमग्ने सुश्रवः सुश्रवा असि।

ओम् एवं मा सुश्रवः सौश्रवसं कुरु।
ओम् यथा त्वमग्ने देवानां यज्ञस्य निधि पा असि।
ओम् एवमहं मनुष्याणां वेदस्य निधिपोभूयासम्॥

(पार० गृ० सू० कां० २। कं० ४। २)

अर्थ—हे (अग्ने) अग्नि ! तू (सुश्रवः) बड़ा यशस्वी है (मा सुश्रवसं कुरु) मुझे यशस्वी कर।

हे (सुश्रवः) यशस्वी अग्ने ! (एवं मा) इसी भांति मुझे (सौश्रवसं कुरु) यशस्वी करो।

हे (अग्ने त्वम्) अग्नि ! तुम (यथा देवानां) जैसे देवताओं के (यज्ञस्य) यज्ञीय (निधिपा) निधि के रक्षक (असि) हो। (एवं अहम्) इसी भांति मैं (मनुष्याणां) मनुष्यों में (वेदस्य) वेद विद्या रूपी (निधिपो) निधि का रक्षक (भूयासम्) होऊँ।

इस मन्त्र को पढ़कर वेदी की अग्नि को इकट्ठा करें। तत्पश्चात् ब्रह्मचारी यज्ञकुण्ड सहित आचार्य की प्रदक्षिणा करके, "ओम् अदितेऽनुमन्यस्व" मन्त्र पढ़कर पूर्व दिशा में उत्तर से दक्षिण की ओर "ओम् अनुमतेऽनुमन्यस्व" मन्त्र उच्चारण कर पश्चिम दिशा में दक्षिण से उत्तर की ओर "ओम् सरस्वत्यनुगन्यस्व" मन्त्र उच्चारण कर उत्तर दिशा में पश्चिम से पूर्व की ओर तथा "ओम् देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु॥ (य० अ० ३०। मं० १)॥" मन्त्र उच्चारण कर दक्षिण दिशा में पूर्व से आरम्भ कर कुण्ड के चारो ओर जल सिञ्चन करके ब्रह्मचारी यज्ञकुण्ड के दक्षिण में उत्तराभिमुख खड़ा रहकर एक समिधा घृत में भिगोकर हाथ में ले—

ओम् अग्नये समिधामाहार्षं बृहते जातवेदसे।
यथा त्वमग्ने समिधा समिध्यस एवमहमायुषा मेधया वर्चसा प्रजया पशुभिब्रह्मवर्चसेन समिन्धे जीवपुत्रो ममाचार्यो मेधाव्यहमसान्य निरा करिष्णु र्यशस्वी तेजस्वी ब्रह्मवर्चस्यन्नादो भूयासँ स्वाहा॥

(पार० गृ० सू० कां० २। कं० ४। ३)

अर्थ—(व्रहते) महान् (जातवेदसे) ज्ञान देने वाले सर्वज्ञ ईश्वर ! (अग्नये) अग्नि के लिये मैं (समिधम्) समिधा (आहार्षम्) लाया हूँ (अग्ने) अग्ने (यथा त्वम्) जैसे तुम (समिधा समिध्यसे) समिधा से प्रदीप्त होते हो (एवम् अहम्) इसी भांति मैं (आयुषा) आयु से (मेधया) बुद्धि से (वर्चसा) वर्चस्व से (प्रजया) प्रजा से (पशुभिः) पशुओं से तथा (ब्रह्म वर्चसेन) ब्रह्म तेज से (समिन्धे) युक्त होऊँ (मम आचार्य) मेरा आचार्य (जीव) जीवित रहे (पुत्रः) जिसका पुत्र (अहम् मेधावी) मैं मेधावी (असानि) होऊँ (अनिरा करिष्णु) किसी का तिरस्कार न करने वाला (यशस्वी) यशस्वी (तेजस्वी) तेजस्वी (ब्रह्मवर्चस्य) ब्रह्मतेज से युक्त तथा (अन्नादः) अन्नवान् (भूयासम्) होऊँ (स्वाहा) इसलिये यह सुहुत है।

इस मन्त्र का उच्चारण कर एक समिधा यज्ञ कुण्ड के मध्य अग्नि में चढ़ा दें। इसी प्रकार दूसरी तथा तीसरी घृत सिञ्चित् समिधा "ओम् अग्नये समिधा" मन्त्र उच्चारण कर क्रमशः अग्नि में छोड़ें। तत्पश्चात् "ओम् सर्वं वै पूर्णं स्वाहा" मन्त्र क्रमशः तीन बार उच्चारण कर तीन बार पूर्णाहुति करें।

इसके बाद "ओम् अग्ने सुश्रवः सुश्रवसं" मन्त्र का उच्चारण कर ब्रह्मचारी वेदिस्य अग्नि को पुनः एकत्रित करके "ओम् अदितेऽनु मन्यस्व" आदि चार मन्त्रों से यज्ञ कुण्ड के पूर्व, पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिण से आरम्भ कर चारों ओर पूर्ववत जल सिञ्चन करके, यज्ञवेदी के पश्चिमस्थ आसन पर पूर्वाभिमुख बैठकर दोनों हथेलियों को अग्नि पर थोड़ा तपाकर हथेलियों में जल लगाकर—

ओम् तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाहि ॥ १ ॥

अर्थ—हे (अग्ने) अग्ने ! (तनूपाऽसि) तुम शरीर के रक्षक हो (तन्वं मे पाहि) मेरे शरीर की रक्षा करो ॥ १ ॥

ओम् आयुर्दा अग्नेऽस्यायुर्मे देहि ॥ २ ॥

अर्थ—हे (अग्ने) अग्ने ! (आयुर्दा असि) तुम जीवनदाता हो (आयुर्मे देहि) मुझे जीवन दीजिये ॥ २ ॥

ओम् वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि ॥ ३ ॥

अर्थ—हे (अग्ने) अग्ने ! तुम (वर्चोदा) वर्चस्वी हो (मे वर्चः देहि) मुझे वर्चस्व दीजिये ॥ ३ ॥

ओम् अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्म आपृण ॥ ४ ॥

अर्थ—हे (अग्ने) अग्ने (यत् मे) जो मेरे (तन्वा ऊनं) शरीर में न्यूनता है (तत् म आपृण) मेरी उस न्यूनता को दूर कीजिये ॥ ४ ॥

ओम् मेधां मे देवः सविता आदधातु ॥ ५ ॥

अर्थ—हे (सविता देवः) सविता देव (मे मेधां आदधातु) मुझे बुद्धि दीजिये ॥ ५ ॥

ओम् मेधां मे देवी सरस्वती आदधातु ॥ ६ ॥

अर्थ—हे (सरस्वती देवी) सरस्वती देवी ! (मेधां मे आदधातु) मुझे बुद्धि दीजिये ॥ ६ ॥

ओम् मेधा मे अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्क स्रजौ ॥ ७ ॥

अर्थ—हे (अश्विनौ देवा) अश्विनौ देव ! (मे मेधां) आप कमलों की माला से अलङ्कृत हैं (मे मेधां आधत्तां) मुझे उत्तम बुद्धि प्रदान कीजिये ॥ ७ ॥

इन सात मन्त्रों का उच्चारण कर सातवार हथेली अग्नि पर किञ्चित् उष्ण कर जल का स्पर्श कर मुख का स्पर्श करना। तत्पश्चात् ब्रह्मचारी—

ओम् वाक् चम आप्यायताम् ॥ १ ॥ *इस मन्त्र से मुख,*

अर्थ—हे ईश्वर ! (वाक् च म) मेरी वाणी (आप्यायताम्) बढ़ें ॥ १ ॥

ओम् प्राणश्च म आप्यायताम् ॥ २ ॥ इस मन्त्र से नासिका द्वार,

अर्थ—हे ईश्वर ! (प्राणः च म) मेरे प्राण (आप्यायताम्) बढ़े ॥ २ ॥

ओम् चक्षुश्च म आप्यायताम् ॥ ३ ॥ *इस मन्त्र से दोनों नेत्र,*

अर्थ—हे ईश्वर ! (चक्षुः च म) मेरे नेत्रों की ज्योति (आप्यायताम्) बढ़े ॥ ३ ॥

ओम् श्रोत्रश्च म आप्यायताम् ॥ ४ ॥ *इस मन्त्र से दोनों कान,*

अर्थ—हे ईश्वर ! (श्रोत्रं च म) मेरी श्रवण शक्ति (आप्यायताम्) बढ़े ॥ ४ ॥

ओम् यशो बलञ्च म आप्यायताम् ॥ ५ ॥

इस मन्त्र से दोनों बाहुओं का स्पर्श करें।

(पार० गृ० सू० २।४।८ परिशिष्ट)॥

अर्थ—हे ईश्वर ! (यशः बलं च म) मेरा यश तथा बल (आप्यायताम्) बढ़ें॥ ५॥

ओम् मयि मेधां मयि प्रजां मय्यग्निस्तेजो दधातु।
मयि मेधां मयि प्रजां मयीन्द्र इन्द्रियं दधातु।
मयि मेधां मयि प्रजां मयि सूर्यो भ्राजो दधातु।
यत्ते अग्ने तेजस्तेनाहं तेजस्वी भूयासम्।
यत्ते अग्ने वर्चस्तेनाहं वर्चस्वी भूयासम्।
यत्ते अग्ने हरस्तेनाहं हरस्वी भूयासम्॥

(आश्वला० गृ० सू० अ० १। कं० २१। सू० ४)

अर्थ—हे (अग्निः) अग्नि ! (मयि मेधां) मुझमें उत्तम बुद्धि (मयि प्रजां) मुझ से प्रीति युक्त प्रजा (मयि तेजः दधातु) तथा मुझमें तेज धारण करायें।

हे (इन्द्र) इन्द्र ! (मयि मेधां) मुझमें उत्तम बुद्धि (मयि प्रजां) मुझमें प्रीति युक्त प्रजा, (मयि इन्द्रियं दधातु) तथा मेरी इन्द्रियां ऐश्वर्य सम्पन्न हों।

हे (सूर्यः) सूर्य ! (मयि मेधां) मुझमें उत्तम बुद्धि (मयि प्रजां) मुझमें अनुरक्त प्रजा तथा (मयि भ्राजः दधातु) मुझमें दीप्ति धारण कराइये।

(यत्ते अग्ने) हे अग्ने ! जिससे आप (तेजः) तेजस्वी हैं (तेन अहम्) उससे मैं (तेजस्वी भूया सम्) तेजस्वी होऊँ।

(यत्ते अग्ने) हे अग्ने ! जिससे आप (वर्चः) वर्चस्वी हैं (तेन अहम्) उससे मैं (वर्चस्वी भूया सम्) वर्चस्वी होऊँ।

(यत्ते अग्ने) हे अग्ने ! जिससे आप (हरः) दोषहरण कर्त्ता हैं (तेन अहम्) उससे मैं भी (हरस्वी भूया सम्) दोषहरण कर्त्ता होऊँ।

इन मन्त्रों के उच्चारण द्वारा ब्रह्मचारी परमेश्वर का उपस्थान करके यज्ञ कुण्ड के उत्तर में जाकर जानु को भूमि में टेक कर पूर्वाभिमुख आचार्य के सन्मुख बैठे। आचार्य ब्रह्मचारी के सन्मुख पश्चिमाभिमुख बैठे।

ब्रह्मचार्योक्तिः—अधीह भूः सावित्रीं भो अनुब्रूहि॥

(आश्वला० गृ० सू० १। २१। ५)॥

अर्थ—(ब्रह्मचारी उक्तिः) ब्रह्मचारी का वचन—अर्थात् ब्रह्मचारी आचार्य से कहे कि—हे आचार्य ! प्रथम एक ओङ्कार पश्चात् तीन महाव्याहृति तत्पश्चात् सावित्री ये त्रिक् अर्थात् तीनों मिल के परमात्मा के वाचक मन्त्र का मुझे उपदेश कीजिये।

तत्पश्चात् एक वस्त्र अपने और ब्रह्मचारी के कन्धे पर रखकर अपने दायें हाथ से ब्रह्मचारी के दोनों हाथ की अङ्गुलियों को पकड़ कर ब्रह्मचारी को तीन बार में सावित्री मन्त्र का उपदेश करे—

प्रथम बार—ओम् भू र्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यम्।

इतना टुकड़ा, एक-एक पद का शुद्ध उच्चारण ब्रह्मचारी से कराके,

दूसरी बार—ओम् भू र्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यम् भर्गो देवस्य धीमहि।

इस एक पद का यथावत् धीरे-धीरे ब्रह्मचारी से उच्चारण करवा के—

ओम् भू र्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यम् भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥ *(य० अ० ३६। मं० ३)॥*

धीरे-धीरे ब्रह्मचारी द्वारा इस मन्त्र को बुलवा के, संक्षेप से इसका अर्थ आचार्य ब्रह्मचारी को सुनावे—

अर्थ—(ओ३म्) यह परमात्मा का मुख्य तथा सर्वश्रेष्ठ नाम है जिस नाम के साथ सब नाम लग जाते हैं। "अव" रक्षणे धातु से मन् प्रत्यय करने से ओ३म् शब्द बनता है। ओम् शब्द में तीन अक्षर हैं अ, उ, म्। अ से अग्नि, विराट् विश्वादि। उ से वायु हिरण्यगर्भ तैजसादि। म् से ईश्वर, आदित्य, प्राज्ञादि। हे सर्वरक्षक (भूः) जो प्राणों का भी प्राण (भुवः) सब दुःखों का छुड़ाने हारा (स्वः) स्वयं सुख स्वरूप और अपने उपासकों को सब सुखों की प्राप्ति कराने हारा है उस (सवितुः) सब जगत् की उत्पत्ति करने वाले सूर्यादि लोकों के प्रकाशक, समग्र ऐश्वर्य के दाता (देवस्य) कामना करने के योग्य, सर्वत्र विजय कराने हारे परमात्मा का, जो (वरियम्) अति श्रेष्ठ ग्रहण और ध्यान करने योग्य

(भर्गः) सब क्लेशों को भस्म करने हारा पवित्र शुद्ध स्वरूप है (तत्) उसको हम लोग (धीमहि) धारण करें (यः) यह जो परमात्मा (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को उत्तम गुण कर्म स्वभावों में (प्रचोदयात्) प्रेरित करें।

इसी प्रयोजन के लिये परमेश्वर की स्तुति प्रार्थनोपासना करना और परमेश्वर से भिन्न और किसी को उपास्य इष्टदेव, उसके तुल्य वा उससे अधिक नहीं मानना चाहिये।

इस प्रकार अर्थ सुनाने के पश्चात् आचार्य—

ओम् मम व्रतं ते हृदयं दधामि, मम चित्त मनु चित्तं ते अस्तु। मम वाचमेक व्रतोः जुषस्व बृहस्पतिष्ट्वा नियनक्तु मह्यम्॥

(आश्वला० गृ० सू० १। २१। ७)॥

ब्रह्मचारी से कहे—

अर्थ—हे शिष्य ! (मम व्रते) अपने व्रत को (ते हृदयं दधामि) तेरे हृदय में धारण कराता हूँ (मम चित्तं) मेरा चित्त (अनुचित्तं ते अस्तु) तेरे चित्त के सदा अनुकूल रहे (मम वाचम्) तू मेरी वाणी का (एक व्रतः जुशस्व) एकाग्र व्रती रहकर पालन कर (बृहस्पतिः त्वा) बृहस्पति तुझे (नियनक्तु मह्यम्) मेरा अनुवर्त्ती बनावे।

इसी प्रकार ब्रह्मचारी भी उपर्युक्त मन्त्र का उच्चारण कर आचार्य से कहे—

हे आचार्य ! आपके हृदय को मैं अपने कर्म अर्थात् शिक्षा और विद्या की उन्नति के हेतु धारण करता हूँ। आपका चित्त मेरे चित्त के सदा अनुकूल रहे। आप मेरी वाणी को एकाग्रता रूपी व्रतपूर्वक सुनें। बृहस्पति मेरे लिये आपको सदा नियुक्त रक्खे।

इस मन्त्र से ब्रह्मचारी और आचार्य परस्पर पूर्ववत् दृढ़ प्रतिज्ञा करके—

ओम् इयं दुरुक्तं परि बाधमाना वर्णं पवित्रंपुनती म आगात्।
प्राणापानाभ्यां बलमादधाना स्वसादेवी सुभगा मेखलेयम्॥

(पार० गृ० सू० कां० २। कं० २। ८)

अर्थ—(इयं मेखला इयं) यह और यह मेखला ही (दुरुक्तं) दुष्ट वचनों को (परि बाधमाना) दूर हटाती हुई (वर्ण पवित्रं) वर्ण मात्र को पवित्र करने वाली (पुनती) पवित्र (प्राणापानाभ्यां) प्राण और अपान को व्यवस्थित रखने वाली (बलम् आदधाना) बल दायक (सुभगा देवी) ऐश्वर्य सम्पन्न तेजस्वी (स्वसा) बहिन के तुल्य (म आगात्) मुझे प्राप्त हो।

इस मन्त्र का उच्चारण कर आचार्य प्रथम बना कर रक्खी हुई सुन्दर चिकनी मेखला को ब्रह्मचारी के बांधे।

ब्राह्मण कुल के ब्रह्मचारी की मेखला मुञ्ज वा दर्भ की, क्षत्रिय कुल के ब्रह्मचारी की मेखला धनुष तृण वा वल्कल की और वैश्य कुल के ब्रह्मचारी की मेखला ऊन व शण की होनी चाहिये। तत्पश्चात्—

ओम् युवा सुवासाः परिवीत आगात स उ श्रेयान् भवति जायमानः।
तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्योऽमनसा देवयन्तः॥

(ऋ० मं० ३। सू० ८। मं० ४, पार० गृ० सू० २। २। ९)

इस मन्त्र का उच्चारण कर आचार्य, दो शुद्ध कौपीन, दो अङ्गोछे, एक उत्तरीय (चादर), दो कटि वस्त्र ब्रह्मचारी को दें। उनमें से एक कोपीन, एक कटि वस्त्र और एक उपन्ना आचार्य ब्रह्मचारी को धारण करावे।

तत्पश्चात् आचार्य दण्ड हाथ में लेकर ब्रह्मचारी के सन्मुख खड़ा रहे और ब्रह्मचारी भी आचार्य के सन्मुख हाथ जोड़कर—

ओम् यो मे दण्डः परापतद्वैहायसोऽधिभूम्याम्।
तमहं पुनरादद आयुषे ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसाय॥

(पार० गृ० सू० कां०। सू कं० २। १२)

अर्थ—(यः मे दण्डः) जो मेरा दण्ड (परापत) मुझे प्राप्त (वैहायसः) आकाश में ऊँचा रहकर (अधिभूम्याम्) भूमि पर खड़ा है (तं अहम्) उसे मैं (आयुषे) जीवन के लिये (ब्रह्मवर्चसाय) ब्रह्मवर्चस् के लिये (ब्रह्मणे) हे आचार्य ! (पुनः आदद) विशेषतः ग्रहण करता हूँ।

इस मन्त्र का उच्चारण कर ब्रह्मचारी अपने दक्षिण हाथ में आचार्य से दण्ड ग्रहण करे।

ब्राह्मण कुल के ब्रह्मचारी का दण्ड भूमि से ललाट के केशों तक, पलास वा विल्व वृक्ष का, क्षत्रिय कुल के ब्रह्मचारी का दण्ड ललाट भ्रू तक, वट वा खदिर वृक्ष का, वैश्य कुल के ब्रह्मचारी का दण्ड नासिका के अग्रभाग पर्यन्त, पीलू अथवा गूलर वृक्ष का दण्ड प्रमाण है। दण्ड चिकने व सीधे हों। अग्नि में दग्ध तथा कीड़ों से खायें हुए न हों।

ब्रह्मचारियों के बैठने के लिये एक-एक मृगचर्म, एक-एक जलपात्र, एक-एक उपपात्र और एक-एक आचमनीय सब ब्रह्मचारियों को देना चाहिये।

"असौ" पद के स्थान पर सर्वत्र ब्रह्मचारी का नाम लेना चाहिये।

तत्पश्चात् पिता अथवा आचार्य ब्रह्मचारी को ब्रह्मचर्याश्रम का साधारण उपदेश करें।

ब्रह्मचार्यसि असौ॥ १॥ अपोऽशानं॥ २॥ कर्म कुरु॥ ३॥ दिवा मा स्वाप्सीः॥ ४॥ आचार्याधीने वेदमधीष्व॥ ५॥

(आश्वला० गृ० सू० १। २२। २)

अर्थ—तू आज से ब्रह्मचारी है॥ १॥ नित्य संध्योपासन और भोजन से पूर्व शुद्ध जल का आचमन किया कर॥ २॥ दुष्ट कर्मों को त्याग और धर्म युक्त कर्म किया कर॥ ३॥ दिन में शयन मत कर॥ ४॥ आचार्य के आधीन रहकर नित्य साङ्गोपाङ्ग वेदाध्ययन किया कर॥ ५॥

द्वादश वर्षाणि ब्रह्मचर्यंग्रहणं वा ब्रह्मचर्यं चर॥ ६॥

(तु० आश्वला० गृ० सू० १। २२। ३४, तथा पार० गृ० सू० २। ५। १३-१५)

अर्थ—साङ्गोपाङ्ग एक-एक वेद के अध्ययन लिये बारह-बारह वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य अर्थात् अड़तालीस वर्ष तक वा जब तकसाङ्गोपाङ्ग चारो वेद पूरे होवें तब अखण्डित ब्रह्मचर्य कर॥ ६॥

आचार्याधीनो भवान्यत्राधर्माचरणात्॥ ७॥ क्रोधानृते वर्जय॥ ८॥ मैथुनं वर्जय॥ ९॥ उपरिशय्यां वर्जय॥ १०॥ कौशीलव गन्धाञ्जनानि वर्जय॥ ११॥ *(गोभिलीय गृ० सू० ३।१।१५१-९)*

अर्थ—आचार्य के आधीन धर्माचरण में रहा कर, परन्तु यदि आचार्य अधर्माचरण वा अधर्म करने का उपदेश करें, उसको तू कभी मत मान और उसका आचरण मत कर॥ ७॥ क्रोध और मिथ्या भाषण करना छोड़ दे॥ ८॥ आठ प्रकार के मैथुन छोड़ देना॥ ९॥ भूमि में शयन करना, पलङ्ग आदि पर कभी न सोना॥ १०॥ कौशीलव अर्थात् गाना, बजाना तथा नृत्य आदि निन्दित कर्म, गन्ध और अञ्जन का सेवन मत कर॥ ११॥

स्त्री का ध्यान, कथा, स्पर्श, क्रीड़ा, दर्शन, आलिङ्गन, एकान्तवास और समागम यह आठ प्रकार का मैथुन कहाता है, जो इनको छोड़ देता है वही ब्रह्मचारी है।

अत्यन्त स्नानं भोजनं निद्रां जागरणं निंदा लोभ मोह भय शोकान् वर्जय॥ १२॥ प्रतिदिनं रात्रेः पश्चिमे यामे चोत्थायावश्यकं कृत्वा दन्त धावन स्नान सन्ध्योपासनेश्वर स्तुति प्रार्थनोपासना योगाभ्यासान्नित्यमाचर॥ १३॥ क्षुर कृत्यं वर्जय॥ १४॥ मांस रूक्षाहारं मद्यादिपानं च वर्जय॥ १५॥ गवाश्वहस्त्युष्ट्रादियानं वर्जय॥ १६॥ अन्तर्गामे निवासोपानच्छत्रधारणं वर्जय॥ १७॥ अकामतः स्वयमिन्द्रिय स्पर्शेन वीर्य स्खलन विहाय वीर्य शरीरे संरक्ष्योर्ध्व रेताः सततं भव॥ १८॥ तैलाभ्यङ्ग मर्दनात्यम्लाति तिक्त कषाय क्षार रेचन द्रव्याणि मा सेवस्व॥ १९॥ नित्यं युक्ताहार विहारवान् विद्योपार्जनेच यत्नवान् भव॥ २०॥ सुशीलो मितभाषी सभ्यो भव॥ २१॥ मेखला दण्ड धारण भैक्ष्य चर्य समिधाधानो दक स्पर्शनाचार्य प्रातः सायमभिवादन विद्या संचय जितेन्द्रिया त्वदिन्येते ते नित्य धर्माः॥ २२॥

(तु० गोभिलीय गृ० सू० ३।१।१५–२६)

अर्थ—अति स्नान, अति भोजन, अधिक निद्रा, अधिक जागरण, निन्दा, लोभ, मोह, भय, शोक का ग्रहण कभी मत कर॥ १२॥ रात्रि के चौथे प्रहर में जाग, आवश्यक शौचादि दन्तधावन, स्नान, सन्ध्योपासन, ईश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना, योगाभ्यास का आचरण नित्य किया कर॥ १३॥ क्षौर मत करा॥ १४॥ मांस, शुष्क अन्न मत खावे और मद्यादि मत पीवे॥ १५॥ बैल, घोड़ा, हाथी और ऊँट की सवारी मत कर॥ १६॥ गाँव में निवास और जूता तथा छत्र धारण मत कर॥ १७॥ लघु शंका के बिना उपस्थेन्द्रिय के स्पर्श से वीर्य स्खलन कभी न करके वीर्य को शरीर में स्थिर रखके ऊर्ध्व रेता अर्थात् वीर्य को नीचे मत गिरने दे, इस प्रकार यत्न से वर्त्ता कर॥ १८॥ तैलादि से अङ्ग मर्दन, उबटन, अति खट्टा इमली आदि, अति तीक्ष्ण लाल मिर्चादि, कसैला हरड़ आदि, क्षार, लवणादि और रेचक जमालगोटादि द्रव्यों का सेवन मत कर॥ १९॥ नित्य युक्ति से आहार विहार करके विद्या ग्रहण में यत्नशील हो॥ २०॥ सुशील, थोड़ा बोलने वाला, सभा में बैठने योग्य गुण ग्रहण कर॥ २१॥ मेखला और दण्ड का धारण, भिक्षा चरण, प्रातः सायं आचार्य को नमस्कार करना॥ २२॥ ये तेरे नित्य करने के और वे निषेध किये वे कभी न करने के कर्म हैं।

जब यह उपदेश पिता अथवा आचार्य कर चुके तब ब्रह्मचारी पिता अथवा आचार्य को नमस्कार कर हाथ जोड़कर कहे कि जैसा आपने उपदेश किया है, वैसा ही करुंगा।

तत्पश्चात् ब्रह्मचारी आचार्य सहित यज्ञ कुण्ड की प्रदक्षिणा करके यज्ञ कुण्ड के पश्चिम भाग में खड़ा रह कर, माता-पिता, बहिन, भाई, मामा, मौसी, चाचा आदि से लेकर जो भिक्षा देने में न न करे उनसे भिक्षा मांगे।

ब्राह्मण कुल का ब्रह्मचारी यदि पुरुष से भिक्षा मांगे तो "भवान् भिक्षां ददातु" और जो स्त्री से भिक्षा मांगे तो "भवती भिक्षां ददातु" कहे, और क्षत्रिय कुल का ब्रह्मचारी पुरुष से "भिक्षां भवान् ददातु" और स्त्री से "भिक्षां भवती ददातु" कहे, वैश्य कुल का ब्रह्मचारी पुरुष से "भिक्षां ददातु भवान्" और स्त्री से "भिक्षां ददातु भवती" ऐसा कह कर भिक्षा मांगे। जितनी भिक्षा मिले वह आचार्य के सन्मुख रख देनी। पश्चात् आचार्य उसमें से थोड़ा सा अन्न लेकर

शेष सब भिक्षा ब्रह्मचारी को दे देवें और वह ब्रह्मचारी उस भिक्षा को अपने भोजन के लिये रख देवे।

तत्पश्चात् ब्रह्मचारी और पिता अथवा आचार्य यज्ञ कुण्ड के पश्चिम में आसन पर पूर्वाभिमुख बैठ वामदेव्य गान करें। तत्पश्चात् ब्रह्मचारी पूर्व रक्खी हुई भिक्षा का भोजन करे। विश्राम करने के पश्चात् सायंकाल ग्रहाश्रम संस्कार में लिखा सन्ध्योपासन आचार्य ब्रह्मचारी के द्वारा करावे।

तत्पश्चात् भात बना उसमें पुष्कल घी डाल कर मिला पात्र में पृथक् रख ब्रह्मचारी सहित आचार्य यज्ञ कुण्ड के पश्चिम में आसन पर पूर्वाभिमुख बैठ संकल्पोच्चारण कर आचमन तथा अङ्ग स्पर्श कर अग्न्याध्यान करें। घृत की चार आघारावाज्यभागाहुति पर्यन्त विधिवत् यज्ञ कर घृत की चार व्याहृति आहुति देकर, ब्रह्मचारी खड़ा होकर तीन समिधा घृत में भिगो कर—

ओम् अग्ने सुश्रवः सुश्रवसं मा कुरु।
यथा त्वमग्ने सुश्रवः सुश्रवा असि।
एवं मा सुश्रवः सौ श्रवसं कुरु।
यथा त्वमग्ने देवानां यज्ञस्य निधिपा असि।
एवमहं मनुष्याणांवेदस्य निधिपोभूयासम स्वाहा॥

इस मन्त्र का क्रमशः तीन बार उच्चारण कर क्रमशः प्रति बार घृत सिंचित समिधा की आहुति देकर बैठकर अग्नि में हथेलियों को थोड़ा तपा किञ्चित् जला लगा—

ओम् तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाहि॥ १॥
ओम् आयुर्दा अग्नेऽस्यायुर्मे देहि॥ २॥
ओम् वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि॥ ३॥
ओम् अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्म आपृण॥ ४॥
ओम् मेधां मे देवः सविता अदधातु॥ ५॥
ओम् मेधां मे अश्विनौ देवा वाधत्तां पुष्कर स्रजौ॥ ७॥

(पार० गृ० सू० २।४।७-८)

इन सात मन्त्रों से सात बार मुख स्पर्श करना। तत्पश्चात् ब्रह्मचारी—

ओम् वाक् च म आप्यायताम्॥ १॥ *इस मन्त्र से मुख,*

ओम् प्राणश्च म आप्यायताम्॥ २॥ *इस मन्त्र से नासिका,*

ओम् चक्षुश्च म आप्यायताम्॥ ३॥ *इस मन्त्र से नेत्र*

ओम् श्रोत्रञ्च म आप्यायताम्॥ ४॥ *इस मन्त्र से दोनों कान,*

ओम् यशो बलञ्च म आप्यायताम्॥ ५॥

इस मन्त्र से दोनों बाहुओं का स्पर्श करके, (परि, पार० गृ० सू० २।४।८)

मुखादि अङ्गों को स्पर्श करने के पश्चात् ब्रह्मचारी पूर्व बनाये हुए भात को आचार्य को होम तथा भोजन के लिये देवे। आचार्य उस भात में से आहुति के अनुमान भात को स्थाली में लेकर उसमें घी मिला—

मेधा कामः ऋषिः। इन्द्रो देवताः।भुरिग्गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः।

ओम् सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्।
सनिं मेधामयासिषꣳ स्वाहा॥ इदं सदसस्पतये-इदन्नमम॥ १॥

(य० अ० ३२। मं० १३)

अर्थ—(सदसः पति) हे ज्ञान के रक्षक (अद्भुतं) आश्चर्य स्वरूप (प्रियं) (इन्द्रस्य काम्यं) जीव मात्र के कामना के योग्य (मेधामयासिषं) विवेक शक्ति सम्पन्न बुद्धि को (सनिं) प्राप्त होऊं (स्वाहा) एतदर्थ यह सुहुत है (इदम् सदसः पतये) यह ज्ञान के रक्षक के लिये है-(इदं न मम) यह मेरे लिये नहीं है॥

ओम् तत्सवितुर्वरेण्यम् भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात् स्वाहा॥ इदं सवित्रे-इदन्नमम॥ २॥

(य० अ० २२। ९)

ओम् ऋषिभ्यः स्वाहा॥ इदं ऋषिभ्यः-इदन्नमम॥ ३॥

(आश्वला० गृ० सू० अ० १। कं० २२। सू० १४)

अर्थ—(ऋषिभ्यः स्वाहा) ऋषियों के लिये सुहुत है, (इदं ऋषिभ्यः) यह ऋषियों के लिये है-(इदं न मम) यह मेरे लिये नहीं है।

इन तीन मन्त्रों से भात की तीन आहुति देकर "ओम् यदस्य कर्मणो"० इस मन्त्र से भात की चौथी आहुति देकर "ओम् प्रजापतये"० मन्त्र से प्राजापत्याहुति

मौन रहकर देवें। चार व्याहृति आहुति घृत की देकर "ओम् त्वन्नो अग्ने" इन आठ मन्त्रों से अष्टाज्याहुति देकर "ओम् सर्व वै पूर्णं स्वाहा" मन्त्र क्रमशः तीन बार उच्चारण कर तीन बार पूर्णाहुति करें। तत्पश्चात् ब्रह्मचारी आचार्य के साथ वामदेव्य गान करके ब्रह्मचारी—

अमुक गोत्रोत्पन्नो ऽहं भे भवन्तमभिवादये॥

(गोभिलीय गृ० सू० २। १०। २५)

अर्थ—(अमुक गोत्रः उत्पन्नः) अमुक गोत्र में उत्पन्न (अहं भोः भवन्तम् अभिवादये) मैं आपको अभिवादन करता हूँ।

ऐसा वाक्य बोलकर आचार्य का वन्दन करे। और आचार्य—

आयुष्मान् विद्यावान् भव सौम्य॥

अर्थ—हे सौम्य ! तू आयुष्मान् तथा विद्या सम्पन्न हो।

ऐसा आशीर्वाद देकर, होम से बचे हुए हविष्यान्न तथा दूसरे सुन्दर मिष्ठान का भोजन आचार्य के साथ पृथक्-पृथक् बैठ कर करें। तत्पश्चात् हस्तमुखादि प्रक्षालन कर संस्कार में आये हुए आमन्त्रित जो हों उनको यथा योग्य भोजन करा, स्त्रियों को स्त्री तथा पुरुषों को पुरुष धन्यवाद सहित विदा करें। सब लोग ब्रह्मचारी को—

हे ब्रह्मचारी ! त्वमीश्वर कृपया विद्वान् शरीरात्म बल युक्तः कुशली वीर्य वानरोगः सर्वा विद्या अधीत्या ऽस्मान् दिदृक्षुः सन्नागम्याः॥

अर्थ—हे ब्रह्मचारिन् ! (त्वं) तू (ईश्वर कृपया) ईश्वर कृपा से (विद्वान्) विद्वान् (शरीर आत्म बल युक्तः) शारीरिक तथा आत्म बल से सम्पन्न (कुराली वीर्यवान् अरोगः) सुखी बलवान तथा रोग रहित रहकर (सर्वा विद्या अधीत्य) समस्त विद्याओं को पढ़कर (अस्मान् दिदृक्षुः सन्) हम को देखने की इच्छा करता हुआ (आ गम्याः) हमें प्राप्त हो।

ऐसा आशीर्वाद देकर अपने-अपने घर को चले जायें। तत्पश्चात् तीन दिन तक भूमि में शयन, प्रातः सायं "ओम् अग्ने सुश्रवः" इस मन्त्र से समिधा होम तथा "ओम् तनूपा अग्नेऽसि" मन्त्र से मुखादि अङ्ग स्पर्श आचार्य करावे।

तथा तीन दिन तक "ओम् सदसस्पतिमद्भुतं";० "ओम् तत्सवितुर्वरेण्यम् भर्गो";० "ओम् ऋषिभ्य स्वाहा" तथा "ओम् यदस्य कर्मणोऽत्य रीरिच"० मन्त्रों से आहुति पूर्वोक्त रीति से ब्रह्मचारी के हाथ से करवा करविधिवत् पूर्णाहुति किया करें। ब्रह्मचारी तीन दिन तक क्षार लवण रहित पदार्थ का भोजन किया करे।

तत्पश्चात् पाठशाला में जाके गुरु के समीप विद्याभ्यास करने के समय की प्रतिज्ञा "ओम् मम व्रते ते हृदयं"; मन्त्र से ब्रह्मचारी तथा आचार्य दोनों करें।

ब्रह्मा ऋषिः । ब्रह्मचारी देवताः । उरो वृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ।
आचार्यऽ उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः ।
तं रात्रीस्तिस्र उदरे विभर्त्तितं जातं द्रष्टुमभि संयन्ति देवाः ॥ १ ॥

(अथर्व० का० ११ । सू० ५ । मं० ३)

अर्थ—आचार्य ब्रह्मचारी को प्रतिज्ञा पूर्वक समीप रख के तीन रात्रि पर्यन्त सन्ध्योपासनादि सत्पुरुषों के आचार की शिक्षा कर उसकी आत्मा के भीतर गर्भस्त विद्या स्थापित करने के लिये उसको धारण कर, उसको पूर्ण विद्वान् कर देता है, और जब वह पूर्ण ब्रह्मचर्य और विद्या को पूर्ण करके घर को आता है, तब उसको देखने के लिये सब विद्वान् लोग सन्मुख आकर उसका बड़ा मान्य करते हैं ॥ १ ॥

ब्रह्मा ऋषिः । ब्रह्मचारी देवताः । त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।
इयं समित्पृथिवी द्यौ द्वितीयोतान्तरिक्षं समिधा पृणाति ।
ब्रह्मचारी समिधा मेखलया श्रमेण लोकाँस्तपसा पिपर्ति ॥ २ ॥

(अथर्व० कां० ११ । सू० ५ । मं० ४)

अर्थ—जो यह ब्रह्मचारी वेदारम्भ के समय तीन समिधा अग्नि में होम कर ब्रह्मचर्य के व्रत को नियम पूर्वक सेवन करके विद्या पूर्ण करने को दृढ़ोत्साही होता है वह जानो पृथिवी, सूर्य और अन्तरिक्ष के सदृश सबका पालन करता है। क्योंकि वह समिधा दान, मेखलादि चिह्नों का धारण, और परिश्रम से विद्या पूर्ण करके इस ब्रह्मचर्यानुष्ठान रूप तप से सब लोगों को सद्गुण और आनन्द से तृप्त कर देता है ॥ २ ॥

ब्रह्मा ऋषिः। ब्रह्मचारी देवताः। शाक्वर गर्भा चतुष्पद। जगती छन्दः। निषाद स्वरः।

ब्रह्मचार्येऽति समिधा समिद्धः कार्ष्णं वसानो दीक्षितो दीर्घश्मश्रुः। स सद्य एति पूर्वस्मादुत्तरं समुद्रं लोका न्संगृभ्य मुहुरा चरिक्रत ॥ ३ ॥ *(अथर्व० कां० ११। सू० ५। मं० ६)*

अर्थ—जब विद्या से प्रकाशित और मृगचर्मादि धारण कर दीक्षित होके दीर्घश्मश्रुः चालीस वर्ष तक दाढ़ी मूंछ आदि पञ्च केशों को धारण करने वाला ब्रह्मचारी होता है। वह पूर्व समुद्र रूप ब्रह्मचर्यानुष्ठान को पूर्ण करके गुरुकुल से उत्तर समुद्र अर्थात् ग्रहाश्रम को शीघ्र प्राप्त होता है, वह सब लोकों का संग्रह करके बारम्बार पुरुषार्थ और सत्योपदेश से जगत् को आनन्दित कर देता है ॥ ३ ॥

ब्रह्मा ऋषिः। ब्रह्मचारी देवताः। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः।

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति।
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते ॥ ४ ॥

(अथर्व० कां० ११। सू० ५। मं० १७)

अर्थ—वही राजा उत्तम होता है जो पूर्ण ब्रह्मचर्य रूप तपश्चरण से पूर्ण विद्वान् सुशिक्षित सुशील और जितेन्द्रिय होकर राज्य का विविध प्रकार से पालन करता है और वही विद्वान् ब्रह्मचारी की इच्छा करता और आचार्य हो सकता जो यथावत् ब्रह्मचर्य्य से सम्पूर्ण विद्याओं को पढ़ता है॥ ४ ॥

ब्रह्मा ऋषिः। ब्रह्मचारी देवताः। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः।

ब्रह्मचर्येण कन्या ३ युवानं विन्दते पतिम्॥ ५ ॥

(अथर्व० कां० ११। सू० ५। मं० १८)

अर्थ—जैसे लड़के पूर्ण ब्रह्मचर्य और पूर्ण विद्या पढ़, पूर्ण युवा होके अपने सदृश कन्या से विवाह करें वैसे कन्या भी अखण्ड ब्रह्मचर्य से पूर्ण विद्या पढ़ पूर्ण युवती हो अपने सदृशपूर्ण युवावस्था वाले पति को प्राप्त होवे॥ ५ ॥

ब्रह्मा ऋषिः। ब्रह्मचारी देवताः। त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः।

ब्रह्मचारी ब्रह्मभाजद् विभर्ति तस्मिन्देवा अधि विश्वे समोताः।

प्राणापानौ जनयन्नाद व्यानं वाचं मनो हृदयं ब्रह्म मेधाम्॥ ६॥

(अथर्व० कां० ११। सू० ५। मं० २४)

अर्थ—जब ब्रह्मचारी ब्रह्म अर्थात् साङ्गोपाङ्ग चारो वेदों को शब्द अर्थ और सम्बन्ध के ज्ञानपूर्वक धारण करता है तभी प्रकाशमान होता है, उसमें सम्पूर्ण दिव्य गुण निवास करते और सब विद्वान् उससे मित्रता करते हैं। वह ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य ही से प्राण, दीर्घजीवन, दुःख तथा क्लेशों का नाश, सम्पूर्ण विद्याओं में व्यापकता, उत्तम वाणी, पवित्र आत्मा, शुद्ध हृदय, परमात्मा और श्रेष्ठ प्रजा को धारण करके सब मनुष्यों के हित के लिये सब विद्याओं का प्रकाश करता है॥ ६॥

ब्रह्मचर्य काल—

इसमें छान्दोग्योपनिषद् के तृतीय प्रपाठक के सोलहवें खण्ड का प्रमाण है—

मातृमान् पितृमानाचार्य्यवान् पुरुषो वेद॥ १॥

(शतपथ ब्रा०, १४। ६। १०। २)

अर्थ—जो बालक को पाँच वर्ष की आयु तक माता, पाँच से आठ वर्ष तक पिता, आठ से अड़तालीस, चवालीस, चालीस, छत्तीस, तीस वर्ष तक अथवा पच्चीस वर्ष की आयु तक तथा कन्या को आठ वर्ष की आयु से चौबीस, बाईस, बीस, अठारह अथवा सोलह वर्ष तक आचार्य की शिक्षा प्राप्त हो तभी पुरुष वा स्त्री विद्यावान् होकर धर्मार्थ, काम, मोक्ष के व्यवहारों अति चतुर होते हैं॥ १॥

पुरुषो वाव यज्ञस्तस्य यानि चतुर्विंशँति वर्षाणि तत् प्रातः सवनं चतुर्विंश त्यक्षरा गायत्री गायत्रं प्रातः सवनं तदस्य वसवोऽन्वायत्ताः प्राणा वसत एतेहीदँ सर्वं वासयन्ति॥ २॥

अर्थ—यह मनुष्य देह यज्ञ अर्थात् अच्छे प्रकार आयु बल आदि से सम्पन्न करने के लिये छोटे से छोटा यह पक्ष है कि चौबीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य पुरुष और सोलह तक स्त्री ब्रह्मचर्याश्रम यथावत् पूर्ण, जैसे चौबीस अक्षर का गायत्री छन्द होता है, वैसे करें। वह प्रातः सवन कहाता है, जिससे इस मनुष्य देह के

मध्य वसुरूप प्राण प्राप्त होते हैं, जो बलवान् होकर सब शुभ गुणों को शरीर, आत्मा और मन के बीच में वास कराते हैं॥ २॥

तंचेतेदस्मिन् वयसि किञ्चिदुपतपेत् सब्रूयात् प्राणा वसव इदं मे प्रातः सवन माध्यं दिन ँ सवनमनु सन्तनु तति माहं प्राणानां वसूनां मध्ये यज्ञो विलोप्सी येत्युद्धैव तत् एत्यगदोह भवति॥ ३॥

अर्थ—जो कोई इस पच्चीस वर्ष के आयु से पूर्व ब्रह्मचारी को विवाह का विषय भोग करने का उपदेश करे, उसको वह ब्रह्मचारी यह उत्तर देवे कि देख, यदि मेरे प्राण, मन और इन्द्रिय पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य से बलवान् न हुए, तो मध्यं सवन जो कि आगे चवालीस वर्ष तक का ब्रह्मचर्य कहा है, उसको पूर्ण करने के लिये मुझ में सामर्थ्य न हो सकेगा, किन्तु प्रथम कोटि का ब्रह्मचर्य मध्यम कोटि के ब्रह्मचर्य को सिद्ध करता है, इसलिये क्या मैं तुम्हारे सदृश मूर्ख हूँ कि जो इस शरीर, प्राण, अन्तःकरण और आत्मा के संयोग रूप सब शुभ गुण कर्म और स्वभाव के साधन करने वाले इस संघात को शीघ्र नष्ट करके अपने मनुष्य-देह धारण के फल से विमुख रहूँ? और सब आश्रमों के मूल, सब उत्तम कर्मों में उत्तम कर्म और सब के मुख्य कारण ब्रह्मचर्य को खण्डित करके महादुःख सागर में कभी डूबूँ? किन्तु जो प्रथम आयु ब्रह्मचर्य करता है, वह ब्रह्मचर्य के सेवन से विद्या को प्राप्त होके निश्चित रोग रहित होता है, इसलिये तुम मूर्ख लोगों के कहने से ब्रह्मचर्य का लोप मैं कभी न करूँगा॥ ३॥

अथ यानि चतुश्चवारिंश्शद्वर्षाणि तन्माध्यन्दिनश्सवनं चतुश्चत्वारिं श्शदक्षरा त्रिष्टुप त्रैष्टुभं माध्यंदिनश्सवनं तदस्य रुद्रा अन्वायत्ताः प्राणा वाव रुद्रा एते हीद श्सर्व श्रोदयन्ति॥ ४॥

अर्थ—और जो चवालीस वर्ष तक अर्थात् जैसा चवालीस अक्षर का त्रिष्टुप् छन्द होता है तद्वत् जो मध्यम ब्रह्मचर्य करता है, वह ब्रह्मचारी रुद्र रूप प्राणों को प्राप्त होता है कि जिसके आगे किसी दुष्ट की दुष्टता नहीं चलती और वह सब दुष्ट कर्म करने वालों को सदा रुलाता रहता है॥ ४॥

तं चेदेतस्मिन् वयसि किञ्चिदुपतपेत् सब्रूयात् प्राणा रुद्रा इदं मे माध्यन्दिनꣳ सवनं तृतीय सवनमनु सन्तनुतेति माहम्प्राणानाꣳ रुद्राणां मध्ये यज्ञो विलीप्सी येत्युद्धैव तत् एत्यगदो ह भवति ॥ ५ ॥

अर्थ—यदि मध्यम ब्रह्मचर्य के सेवन करने वाले से कोई कहे कि तू इस ब्रह्मचर्य को छोड़ विवाह करके आनन्द को प्राप्त हो, उसको ब्रह्मचारी यह उत्तर देवे कि जो सुख अधिक ब्रह्मचर्याश्रम के सेवन से होता और विषय सम्बन्धी आनन्द भी अधिक होता है, वह ब्रह्मचर्य को न करने से स्वप्न में भी नहीं प्राप्त होता क्योंकि सांसारिक व्यवहार विषय और परमार्थ सम्बन्धी पूर्ण सुख को ब्रह्मचारी ही प्राप्त होता है, अन्य कोई नहीं। इसलिये मैं सर्वोत्तम सुख प्राप्ति के साधन ब्रह्मचर्य का लोप न करके विद्वान्, बलवान, आयुष्मान् औरधर्मात्मा होकर सम्पूर्ण आनन्द को प्राप्त होऊँगा। तुम्हारे जैसे निर्बुद्धियों के कहने से शीघ्र विवाह करके स्वयं अपने कुल को नष्ट भ्रष्ट कभी न करूँगा॥ ५ ॥

अथ यान्यष्टाचत्वारिꣳश द्वर्षाणि तत् तृतीय सवनमष्टा चत्वारिꣳशदक्षरा जगती जागतं तृतीय सवनं तदस्यादित्या अन्वायत्ताः प्राणा वावा दित्या एते हीद ꣳ सर्वमाददते॥ ६ ॥

अर्थ—अब अड़तालीस वर्ष पर्यन्त जैसा कि अड़तालीस अक्षर का जगती छन्द होता है, वैसे इस उत्तम ब्रह्मचर्य से पूर्ण विद्या, पूर्ण बल, पूर्ण प्रज्ञा पूर्ण शुभ गुण कर्म स्वभाव युक्त सूर्यवत् प्रकाशमान होकर ब्रह्मचारी सब विद्याओं को ग्रहण करता है॥ ६ ॥

तं चेदे तस्मिन् वयसि किञ्चिदुपतपत् स ब्रूयात् प्राणा आदित्या इदं मे तृतीय सवन मायुरनु सन्तनुतेति माहं प्राणा नामादित्या नां मध्ये यज्ञो विलोप्सी यत्युद्धैव तत एत्यगदो हेव भवति॥ ७॥

(छा० उ० अ० ३। खं० १६। १—६)

अर्थ—यदि कोई इस सर्वोत्तम धर्म से गिराना चाहे, उसको ब्रह्मचारी यह उत्तर देवे कि अरे छोकरों के छोकरे मुझ से दूर रहो। तुम्हारे दुर्गन्ध रूप भष्ट

वचनों से मैं दूर रहता हूँ। मैं इस उत्तम ब्रह्मचर्य का लोप कभी न करूँगा। इस को पूर्ण करके सर्व रागरहित सर्व विद्यादि शुभ गुण कर्म स्वभाव सहित होऊँगा। इस मेरी शुभ प्रतिज्ञा को परमात्मा अपनी कृपा से पूर्ण करें, जिससे मैं तुम निर्बुद्धियों को उपदेश और विद्या पढ़ा के विशेषकर तुम्हारे बालकों को आनन्दयुक्त कर सकूं॥ ७।

चतस्रोऽवस्थाः शरीरस्य वृद्धि र्यौवनं सम्पूर्णता किञ्चित्परिहाणि श्चेति। तत्राषोडशाद् वृद्धिः। आपञ्च विंशते र्यौवनम्। आचत्वारिंश तस्सम्पूर्णता। ततः किञ्चित्परिहाणि श्चेति॥ १॥

अर्थ—इस मनुष्य देह की चार अवस्था हैं, एक वृद्धि, दूसरी यौवन, तीसरी सम्पूर्णता, चौथी किञ्चित् हानि करने हारी अवस्था है। इनमें सोलहवें वर्ष से आरम्भ पच्चीसवें वर्ष में पूर्ति वाली वृद्धि की अवस्था है। जो कोई इस वृद्धि की अवस्था में वीर्यादि धातुओं का नाश करेगा वह कुल्हाड़े से काटे वृक्ष वा डन्डे से फूटे घड़े के समान अपने सर्वस्व का नाश करके पश्चाताप करेगा। पुनः उसके हाथ में सुधार कुछ भी न रहेगा। और दूसरी जो युवावस्था उसका आरम्भ पच्चीसवें वर्ष से और पूर्त्ति चालीसवें वर्ष में होती है। जो कोई इसको यथावत् सुरक्षित न रक्खेगा वह अपने सौभाग्य को नष्ट कर देवेगा। और तीसरी पूर्ण युवावस्था चालीसवें वर्ष में होती है। जो कोई ब्रह्मचारी होकर पुनः ऋतुगामी, पर स्त्रीगामी एक स्त्री व्रत, गर्भ रहे पश्चात् एक वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचारी न रहेगा, वह भी बना बनाया नष्ट हो जायेगा। और चौथी चालीसवें वर्ष से यावत् निर्वीर्य न हो तावत् किञ्चित् हानि रूप अवस्था है। यदि किञ्चित् हानि अवस्था में वीर्य की अधिक हानि करेगा वह भी राजयक्ष्मा और भगन्दरादि रोगों से पीड़ित हो जायेगा। और जो इन चारों अवस्थाओं को यथोक्त सुरक्षित रक्खेगा, वह सर्वदा आनन्दित होकर सब संसार को सुखी कर सकेगा॥ १॥

पञ्चविंशे ततो वर्षे पुमान्नारि तु षोडशे।
समत्वागत वीर्यौ तौ जानीयात् कुशलोभिषक्॥ २॥ (सुश्रुत)

अर्थ—अब इसमें इतना विशेष समझना चाहिये कि स्त्री और पुरुष के शरीर में पूर्वोक्त चारों अवस्थाओं का एक सा समय नहीं है, किन्तु जितना

सामर्थ्य पच्चीसवें वर्ष में पुरुष के शरीर में होता है, उतना सामर्थ्य स्त्री के शरीर में सोलहवें वर्ष में हो जाता है। यदि बहुत शीघ्र विवाह करना चाहें तो पच्चीस वर्ष का पुरुष और सोलह वर्ष की स्त्री दोनों तुल्य सामर्थ्य वाले होते हैं॥ २॥

सुश्रुत सूत्रस्थान में निम्नलिखित पाठ हैं—

वयस्तु त्रिविधं, बाल्यं, मध्यं वृद्धिरिति। तत्रो न षोडश वर्षीया बालाः। ते त्रिविधाः क्षीरपाः, क्षीरान्नदा, अन्नदा इति। तेषु सम्वत्सर पराः क्षीरपाः, द्विसंवत्सरपराः क्षीरान्नादाः। परतोअन्नादा इति। षोडश सप्तत्योरन्तरे मध्यं वयः तस्य विकल्पेः वृद्धि यौवनं सम्पूर्णता परिहाणिरिति। तत्र आविंशते र्वृद्धिः, आत्रिंशतो यौवनम्, आचत्वारिं शतः सर्वधात्विन्द्रिय बल वीर्य सम्पूर्णता, अत ऊर्ध्वमीषत्परिहाणि र्यावत्सप्ततिरिति ! सप्ततेरुर्ध्वं क्षीयमाणधात्वन्द्रिय बल वीर्यो रसाहम हन्य हनि बली पलित खालित्य जुष्टं कास श्वास प्रभृतिभि रूप द्रवैरभिभूयमानं सर्व क्रिया स्वसमर्थ जीर्णागार भिवाभिवृष्टय वसीदन्तं वृद्धमाचक्षते॥ (सुश्रुत, सू० स्था०, ३५। १०)

इसलिये इस अवस्था में विवाह करना अधम विवाह है और जो सत्रह वर्ष की स्त्री और तीस वर्ष का पुरुष, उन्नीस वर्ष की स्त्री अड़तीस वर्ष का पुरुष विवाह करे तो इसको मध्यम समय जानो। और जो बीस, इक्कीस, बाईस, वा चौबीस वर्ष की स्त्री, चालीस, बयालीस, छियालीस और अड़तालीस वर्ष का पुरुष होकर विवाह करे वह सर्वोत्तम है। हे ब्रह्मचारिन् ! इन बातों को तू ध्यान में रख जो कि तुझको आगे के आश्रमों में काम आवेंगी।

जो मनुष्य अपने सन्तान कुल, सम्बन्धी और देश की उन्नति करना चाहें वे पूर्वोक्त और आगे कही हुई बातों का यथावत् आचरण करें—

श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वा नासिका चैव पञ्चमी।
पायू पस्थं हस्तपादं वाक् चैवदशमीस्मृता॥ १॥

अर्थ—कान, त्वचा नेत्र, जीभ, नासिका, गुदा, उपस्थ (मूत्र का मार्ग) हाथ, पैर, तथा वाणी ये दश इन्द्रिय इस शरीर में हैं॥ १॥

बुद्धीन्द्रियाणि पञ्चैषां श्रोत्रादीन्यनु पूर्वशः।
कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैषां पाय्वादीनि प्रचक्षते॥ २॥

अर्थ—इसमें कान आदि पाँच ज्ञानेन्द्रिय और गुदादि पाँच कर्मेन्द्रिय कहाते हैं॥ २॥

एकादशं मनोज्ञेयं स्वगुणेनोभयात्मकम्।
यस्मिन् जिते जितावेतो भवतः पञ्चकौ गणौ॥ ३॥

अर्थ—ग्यारहवाँ इन्द्रिय मन है, वह अपने स्मृति आदि गुणों से दोनों प्रकार के इन्द्रियों से सम्बन्ध करता है कि जिस मन के जीतने में ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रिय दोनों जीत लिये जाते हैं॥ ३॥

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु।
संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान् यन्तेव वाजिनाम्॥ ४॥

अर्थ—जैसे सारथि घोड़े को कुपथ में नहीं जाने देता वैसे विद्वान् ब्रह्मचारी आकर्षण करने वाले विषयों में जाते हुए इन्द्रियों को रोकने में सदा प्रयत्न किया करे॥ ४॥

इन्द्रियाणां प्रसङ्गे न दोष मृच्छत्यसंशयम्।
संनियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं नियच्छति॥ ५॥

अर्थ—ब्रह्मचारी इन्द्रियों के साथ मन लगाने से निःसन्देह दोषी हो जाता है और उन पूर्वोक्त दश इन्द्रियों को वश में करने के पश्चात् ही सिद्धि को प्राप्त होता है॥ ५॥

वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च।
न विप्रदुष्ट भावस्य सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित्॥ ६॥

अर्थ—जिसका ब्राह्मणपन अर्थात् सम्मान न चाहना वा इन्द्रियों को वश में रखना बिगड़ा वा जिसका विशेष प्रभाव अर्थात् वर्णाश्रम के गुण कर्म बिगड़े हैं, उस पुरुष के वेद पढ़ना, त्याग अर्थात् संन्यास लेना यज्ञ अर्थात् अग्नि

होत्रादि करना, नियम अर्थात् ब्रह्मचर्याश्रम आदि करना तप अर्थात् निन्दा, स्तुति, हानि, लाभ का सहन करना आदि कर्म कदापि सिद्ध नहीं हो सकते, इसलिये ब्रह्मचारी को चाहिये कि अपने नियम धर्मों को यथावत् पालन करके सिद्धि को प्राप्त होवे॥ ६॥

वशे कृत्वेन्द्रिय ग्रामं संयम्य च मनस्तथा।
सर्वान् संसाधयेदर्थानाक्षिण्वन् योगस्तनुम्॥ ७॥

(मनु० अ० २। ९०-९२, ८८, ९३, ९७, १००)॥

अर्थ—ब्रह्मचारी पुरुष सब इन्द्रियों को वश में कर और आत्मा के साथ मन को संयुक्त करके योगाभ्यास से शरीर को किञ्चित् किञ्चित् पीड़ा देता हुआ अपने सब प्रयोजनों को सिद्ध करे॥ ७॥

यमान् सेवेत सततं न नित्यं नियमान् बुधः।
यमान् पतत्य कुर्वाणो नियमान् केवलान् भजन्॥ ८॥

(मनु० ४। २०४)॥

अर्थ—बुद्धिमान् ब्रह्मचारी को चाहिये यमों का सेवन नित्य करे केवल नियमों का नहीं, क्योंकि यमों को सेवन न करता हुआ और केवल नियमों का सेवन करता हुआ भी अपने कर्त्तव्य से पतित हो जाता है, इसलिये यम सेवन पूर्वक नियम सेवन नित्य किया करे॥ ८॥

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारितस्यवर्द्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्॥ ९॥

(मनु० २। १२१)॥

अर्थ—अभिवादन करने का जिसका स्वभाव और विद्या वा अवस्था में वृद्ध पुरुषों का जो नित्य सेवन करता है, उसकी अवस्था, विद्या, कीर्ति और बल इन चारों की नित्य उन्नति हुआ करती है। इसलिये ब्रह्मचारी को चाहिये कि आचार्य, माता, पिता और अतिथि महात्मा आदि अपने बड़ों को नित्य नमस्कार और सेवन किया करे॥ ९॥

अज्ञो भवति वै बालः पिता भवति मन्त्रदः।
अज्ञं हि बालमित्याहुः पितेत्येवतु मन्त्रदम्॥ १०॥

अर्थ—अज्ञ अर्थात् जो कुछ नहीं पढ़ा, वह निश्चय करके बालक होता और जो मन्त्रद अर्थात् दूसरे को विचार देने वाला, विद्या पढ़ा विद्या विचार में निपुण है पितास्थानीय होता है, क्योंकि जिस कारण सत्पुरुषों ने अज्ञ जन को बालक कहा और मन्त्रद को पिता ही कहा है, इससे प्रथम ब्रह्मचर्याश्रम सम्पन्न होकर, ज्ञानवान् और विद्यावान् अवश्य होना चाहिये॥ १०॥

न हायनैर्न पलितैर्न वित्तेन न बन्धुभिः।
ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योऽनूचानः स नो महान्॥ ११॥

अर्थ—धर्मवेत्ता ऋषियों ने न वर्षों, न पके केशों वा झूलते हुए अङ्गों, न धन और न बन्धुजनों से बड़प्पन माना किन्तु यही धर्म निश्चय किया कि जो हम लोगों में वाद विवाद में उत्तर देने वाला अर्थात् वक्ता हो वह बड़ा है। इससे ब्रह्मचर्याश्रम सम्पन्न होकर विद्यावान् होना चाहिये जिससे कि संसार में बड़प्पन प्रतिष्ठा पावें और दूसरों को उत्तर देने में अति निपुण हों॥ ११॥

न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः।
यो वैयुवाप्यधीयानस्तं देवा स्थविरं विदुः॥ १२॥

अर्थ—उस कारण से वृद्ध नहीं होता कि जिससे इसका शिर झूल जाए, केश पक जायें। किन्तु जो तरुण भी पढ़ा हुआ विद्वान् है, उसको विद्वानों ने वृद्ध जाना और माना है। इससे ब्रह्मचर्याश्रम-सम्पन्न होकर विद्या पढ़नी चाहिये॥ १२॥

यथा काष्ठमयोहस्ती यथा चर्ममयो मृगः।
यश्चविप्रोऽनधीया नस्त्रयस्ते नाम बिभ्रति॥ १३॥

अर्थ—जैसे काष्ठ का हाथी, जैसे चमड़े का बनाया हुआ कृत्रिम मृग हो वैसे बिना पढ़ा हुआ विप्र अर्थात् ब्राह्मण वा बुद्धिमान् जन होता है। इससे उक्त वे हाथी, मृग और विप्र तीनों नाम मात्र धारण करते हैं। इस कारण ब्रह्मचर्याश्रम-सम्पन्न होकर विद्या पढ़नी चाहिये॥ १३॥

संमानाद् ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव।
अमृतस्येव चाकाङ्क्षेदवमानस्य सर्वदा॥ १४॥

अर्थ—ब्राह्मण विष के समान उत्तम मान से सदा उदासीनता रक्खे और अमृत के समान अपमान की आकांक्षा सदा करे, अर्थात् ब्रह्मचर्यादि आश्रमों के लिये भिक्षा मात्र मांगते भी कभी मान की इच्छा न करे॥ १४॥

वेदमेव सदाभ्यस्येत्तपस्तप्स्यन् द्विजोत्तमः।
वेदाभ्यासो हि विप्रस्य तपः परमिहोच्यते॥ १५॥

अर्थ—द्विजोत्तम अर्थात् ब्राह्मणादिकों में उत्तम सज्जन पुरुष सर्वकाल तपश्चर्या करता हुआ वेद ही का अभ्यास करे। जिसका कारण ब्राह्मण वा बुद्धिमान् जन को वेदाभ्यास करना इस संसार में परम तप कहा है, इससे ब्रह्मचर्याश्रम-सम्पन्न होकर अवश्य वेद विद्याध्ययन करें॥ १५॥

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः॥ १६॥

अर्थ—जो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वेद को न पढ़ कर अन्य शास्त्र में श्रम करता है, वह जीवित ही अपने वंश के सहित शूद्रपन को प्राप्त होता है। इससे ब्रह्मचर्याश्रम-सम्पन्न होकर वेद विद्या अवश्य पढ़े॥ १६॥

यथा खनिन् खनित्रेण नरोवार्यधिगच्छति।
तथा गुरु गतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति॥ १७॥

अर्थ—जैसे फावड़े से खोदता हुआ मनुष्य जल को प्राप्त होता है, वैसे गुरु की सेवा करने वाला पुरुष गुरुजनों ने जो पाई हुई विद्या है, उसको प्राप्त होता है। इस कारण ब्रह्मचर्याश्रम-सम्पन्न होकर गुरुजन की सेवा करते हुए उनसे उपदेश सुने और अध्ययन करते हुए वेद पढ़े॥ १७॥

श्रद्दधानः शुभां विद्यामाददीतावरादपि।
अन्त्यादपि परं धर्मं स्त्रीरत्नंदुष्कुलादपि॥ १८॥

(मनु० अ० २। १५३, १५४, १५६, १५७, १६२, १६६, १६८, १६९, २१८, २३८।)

अर्थ—उत्तम विद्या की श्रद्धा करता हुआ मनुष्य अपने से न्यून भी उससे उस विद्या को ग्रहण करे। नीच जाति से भी उत्तम धर्म का ग्रहण करे और निन्दित कुल से भी स्त्रियों में उत्तम स्त्री का ग्रहण करे, यह नीति है। इससे गृहस्थाश्रम से पूर्व-पूर्व ब्रह्मचर्याश्रम-सम्पन्न होकर कहीं से न कहीं से उत्तम विद्या पढ़े, उत्तम धर्म सीखे और ब्रह्मचर्य के अनन्तर गृहाश्रम में उत्तम स्त्री से विवाह करे॥ १८॥

विषादप्यमृतं ग्राह्यं बालादपि सुभाषितम्।

अर्थ—विष से भी अमृत का ग्रहण करना चाहिये, बालक से भी उत्तम वचन को लेना चाहिये॥ (मनु० अ० २/ २३९, पूर्वार्द्धः)

विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः॥ १९॥

(मनु० अ० २। २४० उत्तरार्द्धः)॥

अर्थ—नाना प्रकार के शिल्प कार्य सबसे अच्छे प्रकार ग्रहण करने चाहियें। इस कारण ब्रह्मचर्याश्रम-सम्पन्न होकर देश-देश का पर्यटन कर उत्तम गुण सीखे॥ १९॥

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह यम हैं।
शौच, सन्तोष, तप स्वाध्याय तथा ईश्वर प्राणिधान नियम हैं।
यान्यनवद्यानि कर्माणि। तानि सेवितानि। नो इतराणि। यान्यस्माक ँ सुचरितानि। तानि त्वयो पास्यानि। नो इतराणि। ये के चास्मच्छ्रेया ँ्सो ब्राह्मणः। तेषां त्वयासनेन प्रश्वसि तव्यम्॥ १॥ *(तैत्तिरीय० प्रपा० ७। अनु० ११)*

अर्थ—हे शिष्य ! जो अनिन्दित, पापरहित अर्थात् अन्याय अधर्माचरण रहित, न्याय धर्माचरण सहित कर्म हैं, उन्हीं का सेवन तू किया करना इनसे विरुद्ध अधर्माचरण कभी मत करना। हे शिष्य ! जो तेरे माता पिता आचार्य आदि हम लोगों के अच्छे धर्म युक्त उत्तम कर्म हैं, उन्हीं का आचरण तू कर और जो हमारे दुष्ट कर्म हों उनका आचरण कभी मत कर। हे ब्रह्मचारिन् ! जो हमारे मध्य में धर्मात्मा श्रेष्ठजन ब्रह्मवित् विद्वान् हैं उन्हीं के समीप बैठना, सङ्ग करना और उन्हीं का विश्वास किया कर॥ १॥

ऋतं तपः, सत्यं तपः, श्रुतं तपः, शान्तं तपो दमस्तप श्शमश्तपो दानं तपो, यज्ञस्तपो ब्रह्म भू र्भुवः सुवर्ब्रह्मैतदु पास्वैतत्तपः॥ २॥

(तैत्तिरीय० प्रपा० १० । अनु० ८)

अर्थ—हे शिष्य ! तू जो यथार्थ का ग्रहण, सत्य का मानना, वेदादि सत्य शास्त्रों का सुनना अपने मन को अधर्माचरण में न जाने देना श्रोत्रादि इन्द्रियों को दुष्टाचार से रोक श्रेष्ठाचार में लगाना, क्रोधादि के त्याग से शान्त रहना, विद्या आदि शुभ गुणों का दान करना, अग्नि होत्रादि और विद्वानों का सङ्ग कर जितने भूमि अन्तरिक्ष और सूर्यादि लोगों में पदार्थ हैं, उनका यथा शक्ति ज्ञान कर और योगाभ्यास, प्राणायाम, एक ब्रह्म परमात्मा की उपासना किया कर, ये सब करना तप है॥ २॥

ऋतञ्च स्वाध्याय प्रवचने च। सत्यञ्च स्वाध्याय प्रवचने च। तपश्च स्वाध्याय प्रवचनेच। दमश्च स्वाध्याय प्रवचने च। शमश्च स्वाध्याय प्रवचने च। अग्न्यश्च स्वाध्याय प्रवचने च। अग्निहोत्रं च स्वाध्याय प्रवचने च। सत्यमिति सत्यवचा राथीतर तप इति तपो नित्यः पौरुशिष्टिः। स्वाध्याय प्रवचने एवेति नाको मौद्गल्यः। तद्धि तपस्तद्धि तपः॥ ३॥ *(तैत्तिरीय० प्रपा० ७ । अनु० ९)॥*

अर्थ—हे ब्रह्मचारिन् ! तू सत्य धारण कर पढ़ और पढ़ाया कर। सत्योपदेश करना कभी मत छोड़, सदा सत्य बोल, पढ़ और पढ़ाया कर। हर्ष शोकादि छोड़, प्राणायाम और योगाभ्यास कर तथा पढ़ और पढ़ाया भी कर। अपनी इन्द्रियों को बुरे कामों से हटा अच्छे कामों में चला, विद्या का ग्रहण कर और कराया कर। अपने अन्तःकरण और आत्मा को अन्यायाचरण से हटा न्यायाचरण में प्रवृत्त कर और कराया कर तथा पढ़ और सदा पढ़ाया कर। अग्नि विद्या के सेवन पूर्वक विद्या को पढ़ और पढ़ाया कर। अग्नि होत्र करता हुआ पढ़ और पढ़ाया कर। सत्यवादी होना तप है यह सत्यवचा राथीतर आचार्य का, न्यायाचरण में कष्ट सहना तप है, यह तपोनित्य पौरुशिष्टि आचार्य का और धर्म में चल के पढ़ना पढ़ाना और सत्योपदेश करना ही तप है, यह

नाक मौद्गल्य आचार्य का मत है और सब आचार्यों के मत में यही पूर्वोक्त तप है, यही पूर्वोक्त तप है, ऐसा तू जान॥ ३॥

इत्यादि उपदेश तीन दिन के भीतर आचार्य वा बालक का पिता करे।

तत्पश्चात् घर को छोड़ गुरुकुल में जावें। यदि पुत्र हो तो पुरुषों की पाठशाला और कन्या हो तो स्त्रियों की पाठशाला में भेंजे। यदि घर में वर्णोच्चारण की शिक्षा यथावत् न हुई हो तो आचार्य बालकों को और कन्याओं को स्त्री, पाणिनि मुनि कृत शिक्षा वर्णोच्चारण शिक्षा एक माह के भीतर पढ़ा देवें। पुनः पाणिनि मुनि कृत अष्टाध्यायी का पाठ पदच्छेद अर्थ सहित आठ महिने में अथवा एक वर्ष में पढ़ाकर धातु पाठ और दश लकारों के रूप सधवाना तथा दश प्रक्रिया भी सधवानी। पुनः पाणिनि मुनि कृत लिङ्गानुशासन और उणादि गणपाठ तथा अष्टाध्यायीस्थण्बुल् और तृच प्रत्ययाद्यन्त सुवन्तरूप छः महीने के भीतर सधवा देवे। तत्पश्चात् पुनः दूसरी बार अष्टाध्यायी, पदार्थोक्ति, समास, शङ्का समाधान, उत्सर्ग, अपवाद अन्वयपूर्वक पढ़ावें और संस्कृत भाषण का भी अभ्यास कराते जायें। आठ महिने के भीतर इतना पढ़ना पढ़ाना चाहिये।

जिस सूत्र का अधिक विषय हो वह उत्सर्ग और जो किसी सूत्र के बड़े विषय में से थोड़े विषय में प्रवृत्त हो वह अपवाद कहाता है।

तत्पश्चात् पतञ्जलि मुनि कृत महाभाष्य, जिसमें वर्णोच्चारण शिक्षा, अष्टाध्यायी, धातुपाठ, गण पाठ, उणादि गण, लिङ्गानुशासन इन छः ग्रन्थों की व्याख्या यथावत् लिखी है, डेढ़ वर्ष में अर्थात् अठारह महीने में इसको पढ़ना पढ़ाना। इस प्रकार शिक्षा और व्याकरण शास्त्र को तीन वर्ष पांच महीने वा नौ महीने अथवा चार वर्ष के भीतर पूरा कर सब संस्कृत विद्या के मर्म स्थलों को समझने के योग्य होवे।

तत्पश्चात् यास्क मुनि कृत निघण्टु, निरूक्त तथा कात्यायनादि मुनि कृत कोश डेढ़ वर्ष के भीतर पढ़ के, अव्ययार्थ, आप्त मुनि कृत वाच्य वाचक सम्बन्ध रूप यौगिक योगरूढ़ि और रूढ़ि तीन प्रकार के शब्दों के अर्थ यथावत् जाने। तत्पश्चात् पिङ्गलाचार्य कृत पिङ्गल सूत्र छन्दोग्रन्थ भाष्य सहित तीन महीने

में पढ़ और तीन महीने में श्लोकादि रचन विद्या को सीखे। पुनः यास्क मुनि कृत काव्यालङ्कार सूत्र वात्स्यायन मुनि कृत भाष्य सहित, आकांक्षा, योग्यता और आसत्ति और तात्पर्यार्थ, अन्वय सहित पढ़ के इसी के साथ मनुस्मृति, विदुरनीति और किसी प्रकरण में के दश सर्ग वाल्मीकीय रामायण के ये सब एक वर्ष के भीतर पढ़ें और पढ़ावें।

यौगिक जो क्रिया के साथ सम्बन्ध रक्खे जैसे पाचक, याजकादि। योगरूढ़ि जैसे पङ्कजादि। रूढ़ि जैसे धन, वन इत्यादि।

तथा एक वर्ष में सूर्य सिद्धान्तादि में से कोई एक सिद्धान्त से गणित विद्या जिसमें बीजगणित रेखागणित और पट्टीगणित भी कहते हैं, पढ़े और पढ़ावें। निघण्टु से लेकर ज्योतिष पर्यन्त वेदाङ्गों को चार वर्ष के भीतर पढ़ें। तत्पश्चात् जैमिनि मुनि कृत सूत्र पूर्व मीमांसा को व्यास मुनि कृत व्याख्या सहित, कणाद मुनि कृत वैशेषिक सूत्र रूप शास्त्र को गोतम मुनि कृत प्रशस्त पाद भाष्य सहित, वात्स्यायन मुनि कृत भाष्य सहित, गोतम मुनि कृत सूत्र रूप न्यायशास्त्र, व्यास मुनि कृत भाष्य सहित पतञ्जलि मुनि कृत योग सूत्र रूप योग शास्त्र, भागुरि मुनि कृत भाष्य युक्त कपिलाचार्य कृत सूत्र रूप सांख्य शास्त्र, जैमिनि वा बौधायन आदि मुनि कृत व्याख्या सहित व्यास मुनि कृत शारीरिक सूत्र रूप वेदान्त दर्शन तथा ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य तथा बृहदारण्यक दश उपनिषद् व्यास आदि मुनि कृत व्याख्या सहित वेदान्त शास्त्र। इन छः शास्त्रों को दो वर्ष के भीतर पढ़ लेवें।

तत्पश्चात् वहवृच, ऐतरेय, ऋग्वेद का ब्राह्मण, आश्वालयन कृत श्रौत तथा गृह्य सूत्र और कल्पसूत्र पद क्रम और व्याकरणादि के सहाय से छन्दः, स्वर, पदार्थ, अन्वय तथा भाषार्थ सहित ऋग्वेद का पठन तीन वर्ष के भीतर करें, इसी प्रकार यजुर्वेद को शतपथ ब्राह्मण और पदादि के सहित दो वर्ष तथा साम ब्राह्मण और पदादि तथा गान सब संहित सामवेद को दो वर्ष तथा गोपथ ब्राह्मण और पदादि सहित अथर्ववेद दो वर्ष के भीतर पढ़ें और पढ़ावें। सब

मिलकर नौ वर्षों के भीतर चारों वेदों को पढ़ना और पढ़ाना चाहिये। पुनः ऋग्वेद का उपवेद आयुर्वेद, जिसको वैद्यक शास्त्र कहते हैं जिसमें धन्वन्तरि जी कृत सुश्रुत और निघण्टु तथा पतञ्जलि मुनि कृत चरक आदि आर्ष ग्रन्थ हैं, उनको तीन वर्ष के भीतर पढ़ें। जैसे सुश्रुत में शस्त्र लिखे हैं, वैसे बनवाकर शरीर के सब अवयवों को चीर के देखे तथा जो उसमें शारीरिकादि विद्या लिखी हैं, उसे साक्षात् करें।

तत्पश्चात् यजुर्वेद का उपवेद धनुर्वेद, जिसको शस्त्रास्त्र विद्या कहते हैं, जिसमें अङ्गिरा आदि ऋषि कृत ग्रन्थ हैं, जो इस समय बहुधा नहीं मिलते, तीन वर्ष में पढ़ें और पढ़ावें। पुनः सामवेद का उपवेद गांधर्व वेद, नारद संहितादि ग्रन्थ हैं, उनको पढ़ के स्वर राग रागिणी, समय, वादित्र, ग्राम, ताल, मूर्च्छना, आदि का यथावत् अभ्यास तीन वर्ष के भीतर करें। तत्पश्चात् अथर्ववेद का उपवेद अर्थवेद जिसको शिल्प शास्त्र कहते हैं, जिसमें विश्वकर्मा त्वष्टा और मयकृत संहिता ग्रन्थ हैं, उनको छः वर्ष के भीतर पढ़ के विमान, तार तथा भूगर्भादि विद्याओं को साक्षात् करें। ये शिक्षा से लेकर आयुर्वेद पर्यन्त चौदह विद्याओं को इकत्तीस वर्षों में पढ़ के महाविद्वान् होकर अपने और सब जगत् के कल्याण और उन्नति करने में सदा प्रयत्न किया करें।

ब्राह्मण वा जो सूत्र वेद विरुद्ध हिंसापरक हों, उसका प्रमाण कभी न करना।

॥इति वेदारम्भ प्रकरणम्॥

समावर्त्तन संस्कारः।

समावर्त्तन संस्कारः उसको कहते हैं कि जो ब्रह्मचर्य्य व्रत साङ्गोपाङ्ग वेद विद्या, उत्तम शिक्षा और पदार्थ विज्ञान को पूर्णरीति से प्राप्त होके विधिपूर्वक विवाह कर गृहाश्रम को ग्रहण करने के लिये विद्यालय को छोड़ कर घर को आना। इसमें प्रमाण—

वेद समाप्तिं वाचयीत। कल्याणैः सह सम्प्रयोगः। स्नातका योपस्थिताय। राज्ञे च। आचार्य श्वसुर पितृव्य मातुलानी च। दधाति मध्वानीय। सर्पिर्वा मध्वलाभे। विष्टरः पाद्यमर्घ्यमाचमनीयं मधुषर्कः॥ १॥

(आश्वला० गृ० सू० अ० १। कं० २०। सू० १, कं० २३। सू० २०, कं० २४, २—७)

अर्थ—जब वेदों की समाप्ति हो, तब समावर्त्तन संस्कार करें। पुण्यात्मा पुरुषों के सब व्यवहारों में सदा साझा रक्खे। निम्नलिखित पुरुषों को जब अपूर्वागमन हो तब, स्नातक अर्थात् विद्या ब्रह्मचर्य पूर्ण करके ब्रह्मचारी घर को आवे, तब राजा आचार्य, श्वशुर, पिता के भाई आदि, चाचा, मामा जब आवें तब प्रथम पाद्यम् अर्थात् पैर धोने को जल अर्घ्यम् अर्थात् मुख प्रक्षालन के लिये जल और आचमन अर्थात् पीने के लिये जल देके, शुभासन पर बैठा दही में मधु अथवा शहद न मिले तो घृत मिला कर एक अच्छे पात्र में रख इनको मधु पर्क देना होता है॥ १॥

वेदँ समाप्य स्नायाद्। ब्रह्मचर्य व ऽष्टाचत्वारिँशकम्॥ त्रय एव स्नातका भूवन्ति। विद्या स्नातको व्रत स्नातको विद्या व्रत स्नातकश्चेति॥ *(पार० गृ० सू० कां० २। क० ५। सू० ३२)*

अर्थ—विद्या स्नातक, व्रत स्नातक तथा विद्या व्रत स्नातक ये तीन प्रकार के स्नातक होते हैं। इस कारण वेद की समाप्ति और अड़तालीस वर्ष का ब्रह्मचर्य समाप्त करके ब्रह्मचारी विद्याव्रत स्नान करे॥ २॥

जो केवल विद्या को समाप्त तथा ब्रह्मचर्य को न समाप्त करके स्नान करता है वह विद्या स्नातक, जो ब्रह्म चर्यवत्त को समाप्त तथा विद्या को न समाप्त

करके स्नान करता है, वह व्रत स्नातक, और जो विद्या तथा ब्रह्मचर्य व्रत दोनों को समाप्त करके स्नान करता है, वह विद्या व्रत स्नातक कहाता है।

बारह तोले दही में चार तोले शहद अथवा शहद न मिलने पर घी मिलाने से मधु पर्क बनता है। मधु पर्क कांस्य पात्र में दिया जाना चाहिये।

तं प्रतोतं स्वधर्मेण धर्मदायहरं पितृः।
स्नन्विणं तल्प आसीनमर्हयेत् प्रथमंगवा॥ ३॥ *(मनु० ३। ३)॥*

अर्थ—जो विद्वान् माता पिता का पुत्र शिष्य ब्रह्मचारी हो वह स्वधर्म से ही यथावत् युक्त पितृ स्थानी उस आचार्य को उत्तम आसन पर बैठा, पुष्पमाला पहिना कर आचार्य को प्रथम गोदान देवे, यथा शक्ति वस्त्र तथा धनादि भी देकर सत्कार करे।

ब्रह्मा ऋषिः। ब्रह्मचारी देवताः। मध्य ज्योतिरुष्णिग् गर्भा त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः।
तानि कल्पद ब्रह्मचारी सलिलस्य पृष्ठे तपोऽतिष्ठत्तप्यमानः समुद्रे।
स स्नातो बभ्रुः पिङ्गलः पृथिव्यां बहु रोचते॥ ४॥

(अथर्व० कां० ११। सू० ५। मं० २६)॥

अर्थ—जो ब्रह्मचारी समुद्र के समान गम्भीर, बड़े उत्तम व्रत ब्रह्मचर्य में निवास कर महातप करता हुआ, वेद पठन, वीर्यनिग्रह, आचार्य के प्रिय आचरणादि कर्मों को पूरा कर "स्नान विधि" करके पूर्ण विद्याओं को धारण किये, सुन्दर वर्ण युक्त होके पृथिवी में अनेक प्रकार से अपने शुभ गुण, कर्म और स्वभाव से प्रकाशमान होता है, वही धन्यवाद के योग्य है।

समावर्त्तन संस्कार का समय—वेदाध्ययन कर विद्यास्नातक होने, ब्रह्मचर्य व्रत समाप्त होने तथा विद्याध्ययन समाप्त न होने पर व्रत स्नातक होने, अथवा ब्रह्मचर्य व्रत तथा विद्याध्ययन समाप्त होने पर विद्याव्रत स्नातक होने तथा विद्या, हस्त क्रिया, ब्रह्मचर्य व्रत पूरा होने पर ही गृहाश्रम की इच्छा स्त्री और पुरुष करें। विवाह के दो स्थान हैं, एक आचार्य का घर, दूसरा अपना घर। दोनों स्थानों में से किसी एक स्थान पर विवाह संस्कार में लिखे प्रमाणे, समावर्त्तन संस्कार सम्पन्न होने के पश्चात् विवाह करे।

विधि—जो शुभ दिन समावर्त्तन का नियत करे उससे पूर्व दिन आचार्य के घर में यज्ञ प्रकरण में लिखे प्रमाणे यज्ञ वेदि बना रङ्ग आदि से अलङ्कृत कर, शाकल्य समिधा तथा सामग्री एकत्रित कर रक्खे। संस्कार वाले दिन स्थाली पाक बनाकर स्थाली पाक, घृत, समिधा तथा सामग्री यज्ञ वेदि के समीप रक्खे। यज्ञ वेदि के उत्तर में जल से पूरित आठ घड़े ढक कर रक्खे। वेदि के चारों ओर आसन बिछा, वेदि के पश्चिम में आचार्य के उत्तर में, आचार्य सहित पूर्वाभिमुख बैठें। तत्पश्चात् यज्ञ प्रकरण में लिखे प्रमाणे अर्थ सहित ईश्वर स्तुति प्रार्थनोपासना, स्वस्तिवाचन तथा शान्तिकरण के मन्त्रों का पाठ करें। जितने पुरुषादि वहाँ आये हुए हों, वे सब भी एकाग्र चित्त से ईश्वर का ध्यान करें। तत्पश्चात् सङ्कल्पोच्चारण कर, आचमन तथा अङ्गस्पर्श कर अग्न्याधान, अग्नि प्रज्ज्वलन, समिधादान, पञ्च घृताहुति तथा उदक सेचन करके, घृत की चार आघारावाज्यभागाहुति, घृत की चार व्याहृति आहुति, आठ अष्टाज्याहुति देकर घृत, भात अथवा अन्य स्थालीपाक की "ओम् यदस्य कर्मणो" मन्त्र से स्विष्टकृत आहुति दें। प्राजापत्याहुति देकर, सब मिलाकर अठारह आज्याहुति देनी। तत्पश्चात् ब्रह्मचारी—

ओम् अग्ने सुश्रवः सुश्रवसं मा कुरु।
ओम् यथा त्वमग्ने सुश्रवः सुश्रवा असि।
ओम् एवं मा सुश्रवः सौश्रवसं कुरु।
ओम् यथा त्वमग्ने देवानां यज्ञस्य निधिपा असि।
ओम् एवमहं मनुष्याणां वेदस्यनिधिपोभूयासम्।

(पार० गृ० सू० कां० २। कं० ४। २)॥

इस मन्त्र का उच्चारण कर वेदी की अग्नि को इकट्ठाए करे। तत्पश्चात् ब्रह्मचारी तीन समिधाऐं घृत में भिगोकर हाथ में ले—

ओम् अग्नये समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे। यथा त्वमग्ने समिधा समिध्यस एवमहमायुषा मेधया वर्चसाप्रजया पशुभि र्ब्रह्मवर्चसेन समिन्धे जीवपुत्रो ममाचार्यो मेधाव्यहम सान्य निराकरिष्णुर्यशस्वी तेजस्वी ब्रह्म वर्चस्मन्नादो भूयासँ स्वाहा॥

(पार० गृ० सू० कां० २। कं० ४। ३)॥

इस मन्त्र का उच्चारण कर एक समिधा अग्नि में चढ़ा दे। पुनः दूसरी बार इसी मन्त्र का उच्चारण दूसरी समिधा अग्नि में चढ़ावे। पुनः तीसरी बार इसी मन्त्र का उच्चारण कर तीसरी समिधा अग्नि में चढ़ावे। तत्पश्चात् पूर्णाहुति करें। इसके पश्चात् दोनों हथेली अग्नि पर किञ्चित् तपा थोड़ा जल लगा—

ओम् तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाहि॥ १॥
ओम् आयुर्दा अग्नेऽसि आयुर्मे देहि॥ २॥
ओम् वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि॥ ३॥
ओम् अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्म आपृण॥ ४॥
ओम् मेधां मे देवः सविता आदधातु॥ ५॥
ओम् मेधां मे देवी सरस्वती आदधातु॥ ६॥
ओम् मेधां मे अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्कर स्रजौ॥ ७॥

इन सात मन्त्रों का उच्चारण कर मुख का स्पर्श करे। पुनः हथेली अग्नि पर किंचित् तपा थोड़ा जल लगा—

ओम् वाक् च म आप्यायताम्॥ १॥ *इस मन्त्र से मुख।*
ओम् प्राणश्च म आप्यायताम्॥ २॥ *इस मन्त्र से नासिका द्वार।*
ओम् चक्षुश्च म आप्यायताम्॥ ३॥ *इस मन्त्र से दोनों नेत्र।*
ओम् श्रोत्रश्च म आप्यायताम्॥ ४॥ *इस मन्त्र से दोनों कान।*
ओम् यशो बलश्च म आप्यायताम्॥ ५॥

इस मन्त्र से दोनों बाहुओं का स्पर्श करके॥ (परिशिष्ट, पार० गृ० सू० २। ४। ८)॥

वाम देव्य गान करके वेदि के उत्तर भाग में रक्खे जलपूरित आठ घड़ों में से—

ओम् ये अप्स्वन्तरग्नयः प्रविष्टा गोह्य उपगोह्यो मयूषो मनोहास्खलो विरूजस्तनूदु पुरिन्द्रियहा तान् बिजहामि यो रोचनस्तमिह गृह्णामि॥ *(पार० गृ० सू० २। ४। १०)॥*

अर्थ—(गोह्य) जो ढका हुआ हो (उपगोह्यः) जो अधिक ढका हुआ हो (मयुषः) जो नाशक हो (मनोहा) जो मानसिक उत्साह को भंग करने वाला हो

(अस्खलः) अजीर्ण करने वाला, (विरूजः) विविध प्रकार से पीड़ा पहुँचाने वाला (तनुदूषुः) शरीर को दूषित करने वाला (इन्द्रियहा) इन्द्रिय बलनाशक, ये आठ प्रकार के अग्नि हैं जो कि (अप्सु अन्तः) क्रियाओं में भीतर घुसे हुये हैं (तान्) उन सब अग्नियों को (विजहामि) छोड़ता हूँ (इह) यहाँ (यः रोचनः) जो पवित्र मङ्गलकारक है (तम्) उसी अग्नि को (गृहणामि) ग्रहण करता हूँ।

इस मन्त्र का उच्चारण कर, एक घड़े को ग्रहण करके उस घड़े में से जल लेकर

ओम् तेन मामभिषञ्चामि श्रियै यशसे ब्रह्मणे ब्रह्मवर्चसाय ॥

(पार० गृ० सू० २ । ६ । ११) ॥

इस मन्त्र का उच्चारण कर स्नान करना।

अर्थ—(श्रियै) शोभा वृद्धि के लिये, (यशसे) यश प्राप्ति के लिये (ब्रह्मणे) वेद ज्ञान के लिये (ब्रह्म वर्चसाय) तथा ब्रह्म तेज के लिये (तेन) इस जल से (माम्) स्वयं को (अभिषिञ्चामि) अभिषिञ्चिन अर्थात् स्नान करता हूँ।

तत्पश्चात् पुनः "ओम् ये अप्स्वन्तर" मन्त्र का उच्चारण कर दूसरे घड़े से पात्र से जल लेकर—

ओम् येन श्रियमकृणुतां येना व मृशता थ्ं सुराम्।
येनाक्ष्या वभ्य सिञ्चतां यद्वां तदश्विना यशः॥

(सा० मं० ब्रा० १ । ७ । ५), (पार० गृ० सू० कां० २ । कं० ६ । सू० १२) ॥

अर्थ—(अश्विना) हे विद्वान् वैद्यो ! (येन) जिस जल से आपने (सुरान्) देवताओं के प्रति (श्रियम्) शोभा (अकृणुताम्) सम्पन्न किया है (येन) जिस जल से (अव मृशताम्) देवताओं को सुख पहुँचाया है (वेन) जिस जल से (अक्षौ) नेत्रों को भी (अभि अषिञ्चताम्) अभिषिञ्चित किया है (याम्) तुम दोनों का (यत्) जो (यशः) यश है (तत्) वही यश मुझे प्राप्त हो।

इस मन्त्र का उच्चारण कर स्नान करें। तत्पश्चात् "ओम् ये अप्स्वन्तर" मन्त्र का उच्चारण कर उत्तर में रक्खे तीन घड़ों को लेकर—

ओम् आपो हिष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्ज्जे दधातन।

महे रणाय चक्षसे ॥ १ ॥
ओम् यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः।
उशतीरिव मातरः ॥ २ ॥
ओम् तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ।
आपो जनयथा च नः ॥ ३ ॥

(ऋ० म० १० । सू० ९ । मं० १-३, पार० गृ० सू० २ । २ । १४) ॥

इन तीन मन्त्रों का उच्चारण कर घड़ों के जल से स्नान करें। तत्पश्चात् आठ घड़ों में से शेष रहे तीन घड़ों को लेकर—

"ओम् आपो हि ष्ठा"० "ओम् यो वः शिवतमो"० तथा "ओम् तस्मा अरं गमाम"० इन तीन मन्त्रों को मन में बोलकर घड़ों के जल से स्नान करे। पुनः—

ओम् उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं विमध्यमँ श्रथाय।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो ऽअदितये स्याम ॥

(यजु० १२ । १२) ॥

इस मन्त्र का उच्चारण कर ब्रह्मचारी अपनी मेखला और दण्ड को छोड़ दे। तत्पश्चात् वह स्नातक ब्रह्मचारी सूर्य के सन्मुख खड़ा रह कर—

ओम् उद्यन् भ्राज भृष्णुरिन्द्रो मरुद्भिरस्थात् प्रातर्याभिरस्याद्दश सनि रसि दशसनिं मा कुर्वाविदन् मा गमय। उद्यन् भ्राज भृष्णुरिन्द्रो मरुद्भिरस्याद्दिवा यावभिरस्याच्छत सनि रसि शत सनिं मा कुर्वाविदन् मा गमय। उद्यन् भ्राज भृष्णुरिन्द्रो मरूद्भिरस्यात् सायं या वभि रस्थात् सहस्र सनिरसि सहस्र सनिं मा कुर्वा विदन् मा गमय ॥

(पार० गृ० सू० कां० २ । कं० ६ । १६) ॥

अर्थ—हे परमात्मन् ! (उद्यन्) आप सर्वत्र प्रकाशित होते हुए (भ्राजजिष्णुः) अपने प्रकाश से सब प्रकाशितों को आच्छादित करने वाले (इन्द्रः) ऐश्वर्यवन् (मरूद्भिः) बलवानों और विद्वानों द्वारा सेवित (अस्थात्) स्थित हो (प्रातः) प्रातःकाल (यावभिः) ऋषियों द्वारा उपास्य (अस्यात्) हो (दश सनि असि) आप दशों दिशाओं में सेव्य हो (दश सनिं मा) मुझे भी दशों दिशाओं में सेवनीय

अर्थात् यशस्वी बनाओ (आ विदन्) आप सर्वज्ञ हैं (मा गमय) मुझे अपनी प्राप्ति कराओ।

हे परमात्मन् ! आप सर्वत्र प्रकाशित होते हुए सब प्रकाशितों के प्रकाश को आच्छादित करने वाले हैं। ऐश्वयवंन् ! बलवानों एवम् ज्ञानियों द्वारा सेवित हो, आप (दिवा) दिन में (शतसनिं) नाना पदार्थों द्वारा सेवनीय हो (मा कुर्वा) मुझे पदार्थों को प्राप्त कराओ, आप सर्वज्ञ हैं, आप मुझे अपनी प्राप्ति कराओ।

हे परमात्मन् ! आप सर्वत्र प्रकाशित होते हुए सब प्रकाशितों के प्रकाश को आच्छादित करने वाले हैं, ऐश्वर्यवन् आप बलवानों और ज्ञानियों द्वारा सेवित हो आप (सायं यावभिः अस्थात्) सायंकाल में भी उपासनीय हो (सहस्र सनिः असि) आप सहस्रों पदार्थों द्वारा सेवनीय हैं (मा सहस्र सनिं) मुझे भी सहस्रों पदार्थों से युक्त कर अपनी प्राप्ति कराइये।

इस मन्त्र से परमात्मा का उपस्थान रूप स्तुति करके, दही वा तिल प्राशन करके, जटा, लोम और नख छेदन कराके—

ओम् अन्नाद्याय व्यूहध्वँ सोमो राजाऽयमागमत्।
स मे मुखं प्रमार्क्ष्यते यशसा च भगेन च॥

(पार० गृ० सू० २। ६। १७)॥

अर्थ—(अन्नाद्याय) अन्न भक्षण के लिये (व्यूहध्वम्) दांत आदि का शोधन करके निर्मल बनो (सोमो राजा अयम् आगमत्) यह शोभन् जल लाया गया है (सः) वह जल (मे मुखं) मेरे मुख की (प्र मार्क्ष्यते) शुद्धि करेगा (च यशसा भगेन) तथा यश और ऐश्वर्य से युक्त करेगा।

इस मन्त्र का उच्चारण कर ब्रह्मचारी उदुम्बर की लकड़ी से दन्तधावन करे।

तत्पश्चात् सुगन्धित द्रव्य से शरीर पर उद्वर्त्तन कर अर्थात् शरीर पर मल कर सुगन्धित जल से स्नान कर शरीर को पोंछ अधोवस्त्र धोती वा पीताम्बर धारण करके सुगन्ध युक्त चन्दन का अनुलेपन करे। तत्पश्चात् चक्षु, मुख तथा नासिका के छिद्रों का—

ओम् प्राणापानौ मे तर्पय, चक्षुर्मे तर्पय, श्रोत्रं मे तर्पय॥

(पार० गृ० सू० कां० २। कं० ६। १८)

अर्थ—हे परमात्मन्! आप (प्राणापानौ मे) मेरे प्राण तथा अपान को (तर्पय) तृप्त करो, (चक्षुः मे) मेरे नेत्रों को तृप्त करो, (श्रोत्रं मे) मेरे कानों को (तर्पय) तृप्त करो।

इस मन्त्र का उच्चारण कर स्पर्श करके, हाथ में जल ले अपसव्य और दक्षिणाभि मुख होके—

ओम् पितरः शुन्धध्वम्॥ *(पार० गृ० सू० का० २। कं० ६। १८)*

अर्थ—(पितरः) पितृ गण (शुन्धध्वम्) मेरे दिये जल से प्रसन्न हों।

इस मन्त्र का उच्चारण कर जल को भूमि पर छोड़ कर सव्य होके—

ओम् सुक्षणा अहमक्षीभ्यां भूयासँ सुवर्चा मुखेन।
सुश्रुत्कर्णाभ्यां भूयासम्॥

(पार० गृ० सू० कां० २। कं० ६। १९)

अर्थ—हे परमात्मन्! (अहम्) मैं (अक्षीभ्याम्) नेत्रों से (सुक्षाः) अच्छे प्रकार देखने वाला (भूया सम्) होऊँ (मुखेन सुवर्चा) मुख से तेजस्वी वाणी वाला होऊं (कर्णाभ्यां) कानों से (सुश्रुत) भली भांति सुनने वाला होऊँ।

इस मन्त्र का जप करके—

ओम् परिधास्यै यशोधास्यै दीर्घायुत्वाय जरदष्टिरस्मि।
शतं च जीवामि शरदः पुरुची रायस्पोषमभि सं व्ययिष्यै॥

(पार० गृ० सू० कां० २। कं० ६। २०)॥

अर्थ—(परिधास्यै) अपने शरीर को आच्छादित करने के लिये (यशोधास्यै) और यशस्वी (दीर्घायुत्वाय) दीर्घ जीवन के लिये (रायस्पोषाय) शरीर को पोषण करने वाले सुन्दर वस्त्रों (अभि संव्ययिष्यै) मैं समावृत अर्थात् अच्छे प्रकार धारण किया करूंगा क्योंकि (पुरुची) विपुल धनादि से संयुक्त होकर मैं (जरदष्टिः अस्मि) वृद्धावस्था पर्यन्त (शतं शरदः जीवामि) अर्थात् सौ वर्ष तक जीवित रहूं।

इस मन्त्र का उच्चारण कर सुन्दर एवम् श्रेष्ठ वस्त्र धारण करके—

ओम् यशसा मा द्यावा पृथिवी यशसेन्द्रा बृहस्पती ।
यशो भगश्च मा विन्दद्यशो मा प्रतिपद्यताम् ।।

(पार० गृ० सू० कां० २ । कं० ६ । २३)

अर्थ—(द्यावा पृथिवी) द्यौ लोक तथा पृथिवी (मा यशसा) मुझे यशस्वी करें (यशसः इन्द्रा) बृहस्पती इन्द्र तथा बृहस्पति मुझे यशस्वी करें (चभगः) तथा भग (मा यशो) मुझे यशस्वी (आंविन्दत्) करें (मा प्रतिपद्यताम् यशः) मुझे यश प्राप्त हो ।

इस मन्त्र का उच्चारण कर उत्तम उपवस्त्र धारण करके—

ओम् या आहरज्जमदग्निः श्रद्धायै मेधायै कामायेन्द्रियाय ।
ता अहं प्रति गृह्णामि यशसा च भगेन च ।।

(पार० गृ० सू० कां० २ । कं० ६ । २४) ।।

अर्थ—(जमदग्नि) अग्निहोत्र के रक्षक अग्नि ! (या) जिन पुष्पों को (श्रद्धायै) श्रद्धा की वृद्धि के लिये (मेधायै) मेधा वृद्धि के लिये (कामाय) इच्छा पूर्त्ति के लिये (इन्द्रियाय) इन्द्रियों की प्रफुल्लता के लिये (आहरत्) ग्रहण किया है (ताः) वैसे ही (यशसा) पुष्पों को यश के साथ (च भगेन) तथा ऐश्वर्य के साथ (अहं प्रति गृह्णमि) मैं गृहण करता हूँ ।

इस मन्त्र का उच्चारण कर सुगन्धित पुष्पों की माला लेकर—

ओम् यद्यशोऽप्सरामिन्द्रश्चकार विपुलं पृथु ।
तेन सङ्ग्रथिताः सुमनस आबध्नामि यशो मयि ।।

अर्थ—(इन्द्रः) ऐश्वर्य सम्पन्न राजा ने (अप्सरसाम्) योग्य कर्मचारियों को (यद् विपुलं पृथु यशः) जिस महान् यश को पुष्पमाला तथा धनादि से सम्मानित कर (चकार) प्राप्त किया है, मैं भी महा कठिन ब्रह्मचर्य व्रत को पूरा करके (तेन) वैसे ही यज्ञ आदि श्रेष्ठ कर्मों के साथ (सङ्ग्रथिताः सुमनसः) मनोयोग के साथ ग्रथित इस माला को (आबध्नामि) पहनता हूँ (मयि यशः) मुझे यशस्वी करे ।

इस मन्त्र का उच्चारण कर माला पहने। पुनः शिरोवेष्टन अर्थात् पगड़ी, दुपट्टा, टोपी अथवा मुकुट हाथ में लेकर--

ओम् युवा सुवासाः परिवीत् आगा॒त्स उ श्रेयान् भवति॒ जायमानः ॥

(ऋ० मं० ३। सू० ८। मं० ४, आश्वला १। २०। ८)॥

इस मन्त्र का उच्चारण कर धारण करे। उसके पश्चात् अलङ्कार, आभूषणादि लेकर—

ओम् अलङ्करणमसि भूयोऽलङ्करणं भूयात्॥

(पार० गृ० सू० कां० २। कं० ६। २६)॥

अर्थ—हे अलङ्कार ! (अलङ्करणम् असि) तू शोभास्पद है, मेरे पास (भूयः) भी (अलङ्करणाम् भूयाः) रत्नादि अलङ्कार हों।

इस मन्त्र का उच्चारण कर अलङ्कार धारण करें।

ओम् वृत्रस्यासि कनीनकश्चक्षुर्दा असि चक्षुर्मे देहि।

(यजु०अ० ४। मं० ३, पार० गृ० सू० कां० २। कं० ६। २७)

अर्थ—हे परमात्मन् ! आप (वृत्रस्य) मेघ के तुल्य नेत्रों को आनन्ददायक (कनीनकः असि) प्रकाश कर्त्ता हो और (चक्षुः दा) नेत्रदाता (असि) हो (मे) मुझे (चक्षुः) दर्शन शक्ति (देहि) दीजिये।

इस मन्त्र का उच्चारण कर नेत्रों में अञ्जन लगावे। तत्पश्चात्—

ओम् रोचिष्णुरसि ॥ *पार० गृ० सू० कां० ४। कं० ६। २८)*

अर्थ—हे दर्पण ! तू (रोचिष्णुः असि) मुखादि का प्रकाशक है।

इस मन्त्र का उच्चारण कर दर्पण में मुख अवलोकन करें। तत्पश्चात्—

ओम् बृहस्पतेश्छदिरसि पाप्मनो मामन्तर्धेहि तेजसो यशसो माऽन्तर्धेहि ॥ *(पार० गृ० सू० २। ६। २९)॥*

अर्थ—हे छत्र ! तू (बृहस्पतेः) बड़े राजा एवम् विद्वानों का (छदिः असि) आच्छादक है (माम्) मुझे (पाप्मनः) शारीरिक क्लेश रूपी पापों से (अन्तः धेहि) व्यवहित करो, हटाओ परन्तु (तेजसः) पुरुषार्थ और पुरुषार्थ जन्य (यशसः) यश से (मा अन्तर्धेहि) मत हटओ। इस मन्त्र का उच्चारण कर छत्र (छाता) धारण करे। पुनः

ओम् प्रतिष्ठे स्थोविश्वतो मा पातम्॥

पार० गृ० सू० कां० २। कं० ६। ३०)

अर्थ—हे उपानह ! तुम (प्रतिष्ठे स्थः) कांटे आदि से रक्षा कर पैरों को ठीक रखने वाले हो (विश्वतः) सब ओर से (मा पातम्) मेरी रक्षा करो।

इस मन्त्र का उच्चारण कर, उपानह्, पादपेष्ठन वा पाद रक्षक धारण करे। तत्पश्चात्—

ओम् विश्वाभ्यो मा नाष्ट्राभ्य स्परिपाहि सर्वतः॥

अर्थ—हे दण्ड ! (विश्वाभ्यः नाष्ट्राभ्यः) सब दुष्ट प्राणियों से (सर्वतः) सब प्रकार से सर्वथा (मा परि पाहि) मेरी रक्षा कर।

इस मन्त्र का उच्चारण कर बांसादि का सुन्दर दण्ड हाथ में धारण करें।

तत्पश्चात् ब्रह्मचारी के माता पिता आदि जब वह आचार्य कुल से अपने घर को आवे, उसको बड़े मान प्रतिष्ठा, उत्सव तथा उत्साह से घर में लाकर उसको पाद्यं अर्थात् पग प्रक्षालन तथा अर्घ्य अर्थात् मुख धोने के लिये जल देवें। तत्पश्चात् आचमनीयम् अर्थात् पीने को जल प्रदान कर पश्चात् मधुपर्क दें। स्नातक मधुपर्क ग्रहण कर तीन भाग कर, भूतादिक प्राणियों को अर्पित कर मधुपर्क प्राशन करें। तत्पश्चात् संस्कार में आये आचार्य आदिकों को उत्तम अन्नपानादि से आदर पूर्वक भोजन कराके, ब्रह्मचारी और उसके माता पितादि आचार्य को उत्तम आसन पर बैठा मधुपर्क आदि देकर पुष्पमाला से अलङ्कृत कर, वस्त्र, गौदान तथा धनादि की दक्षिणा यथा शक्ति देके सब के सामने आचार्य के उत्तम गुणों की प्रशंसा कर विद्यादान की कृतज्ञता सबको सुनावे—

हे भद्रजनों ! सुनो इन उदारमना आचार्य ने मेरे ऊपर बड़ा उपकार किया है, मुझको पशुता से छुड़ा कर उत्तम विद्वान् बनाया है। उसका प्रत्युपकार मैं कुछ भी नहीं कर सकता हूँ, इसके बदले में अपने आचार्य को कोटिशः धन्यवाद दे, नमस्कार कर प्रार्थना करता हूँ कि जैसे आपने मुझको उत्तम शिक्षा और विद्यादान दे के, कृतकृत्य किया उसी प्रकार अन्य विद्यार्थियों को भी कृत कृत्य

करेंगे। और जैसे आपने मुझको उत्तम विद्या दे के आनन्दित किया है, वैसे मैं भी अन्य विद्यार्थियों को आनन्दित करता रहूँगा, आपके द्वारा किये उपकार को कभी न भूलूंगा।

सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर की कृपा से आप मुझ औरसब पढ़ने पढ़ाने हारे तथा सब संसार पर अपनी कृपा दृष्टि से सबको सभ्य, विद्वान्, शरीर और आत्मा के बल से युक्त और परोपकार आदि कर्मों की सिद्धि करने कराने में चिरायु स्वस्थ, पुरुषार्थी तथा उत्साही करें कि जिससे इस परमात्मा की सृष्टि में उसके गुण कर्म तथा स्वभाव के अनुकूल, अपने गुण कर्म स्वभावों को करके धर्म अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि कर कराके सदा आनन्द में रहें।

॥इति समावर्त्तन प्रकरणम्॥